

नीराजन



पं० दीनदयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय
'कानपुर

1988-89

हमारा साध्य

प्रचण्ड तेजोमय शारीरिक बल, प्रबल
आत्म-विश्वास-युक्त बौद्धिक क्षमता एवं
निस्सीम भाव सम्पन्ना मनः शक्ति
का अर्जन कर, अपने
जीवन को निस्पृह भाव
से भारत माँ के चरणों
में अर्पित करना ही
हमारा परम
साध्य है ।

पं० दीनदयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय
कानपुर

नीराजन

वार्षिक पत्रिका

१९८८-८९

संरक्षक :

श्री ओम शङ्कर

प्रधान सम्पादक :

महेन्द्र प्रताप दुवे 'सुमन'

—: छात्र सम्पादक :-

अभिषेक 'एकादश क' राघवेन्द्र सिंह 'एकादश क'

स्वदेश कुमार 'एकादश-क' दिव्य मिश्र 'अष्टम क'

नीराजन के इस अंक में

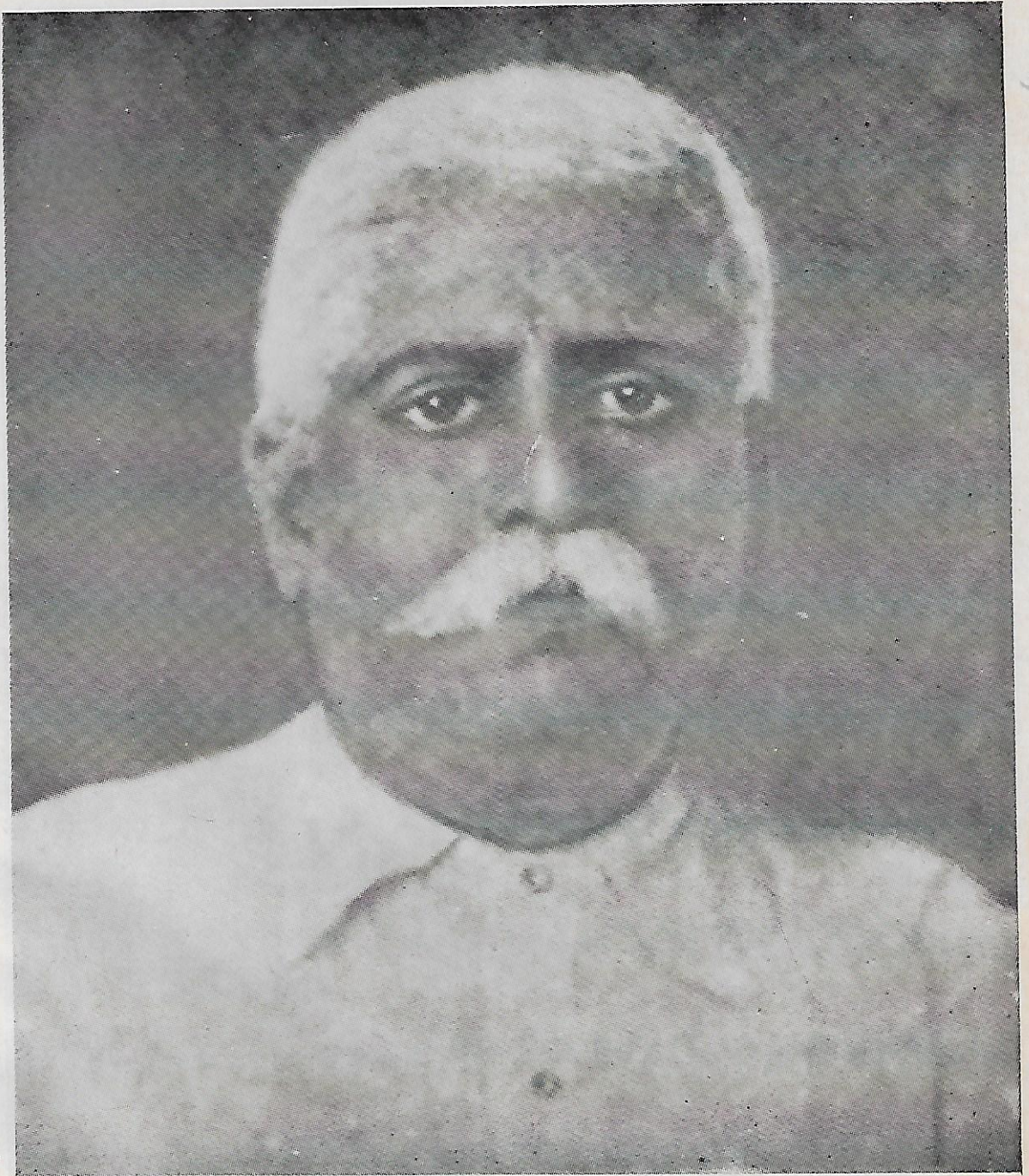
हिन्दी विभाग

रचना	रचनाकार	पृष्ठ
१- वन्दना		I
२- स्मरणीयाः श्लोकाः		
३- सम्पादकीय		III
४- नीराजको से	चन्द्रपाल सिंह (भूतपूर्व प्रधानाचार्य)	V
५- आदर्श विद्यालय	ओम शङ्कर प्राचार्य	VII
६- सन्त प्रवर देवादास जी महाराज	जे० पी० श्रीवास्तव आचार्य	१
७- बरसे अशान्ति इस भू पर	ओम शङ्कर प्राचार्य	४
८- उठो अब भी सबेरा है	ओम शङ्कर प्राचार्य	५
९- विनम्रता	राहुल तिवारी द्वादश-क	६
१०- मानव-धर्म	विशम्भर दयाल अष्टम-क	६
११- महान गणितज्ञ रामानुजन्	गौरव शुक्ल द्वादश-क	१०
१२- कुछ महत्व पूर्ण तथ्य	राघवेन्द्र गुप्त अष्टम-क	१३
१३- अनुभूति	अशीष कुमार एकादश-क	१४
१४- मेरे सपनों का भारत	वीरेन्द्र नाथ एकादश-क	१६
१५- पं० जवाहर लाल नेहरू	आशीष कुमार एकादश-क	१७
१६- एक साल बीत गया	यशवन्त देशमुख एकादश-ख	२१
१७- नव वर्ष किसका	पीयूष मालवीय द्वादश-ख	२३
१८- हमारे लहू का रंग	राजीव सक्सेना द्वादश-क	२४
१९- भारतीय स्थिति	विकास आनन्द द्वादश-क	२५
२०- मैं हिन्दुस्तानी इकबाल का चिन्ह	दुर्गेश बाजपेई सप्तम-क	२७
२१- गीत	राधेश्याम मिश्र आचार्य	२८
२२- ऐसे थे हमारे डाक्टर जी	श्री नारायण आचार्य	२६
२३- बजरंग वन्दना	सुभाष जी आचार्य	३२
२४- लोक नायक तुलसी	अशीष कुमार एकादश-क	३३
२५- मदद	अमित प्रकाश गुप्त अष्टम-क	३५
२६- कोमल हृदय	अभिषेक कुमार गुप्त अष्टम-क	३६
२७- परोपकार	गौरव आनन्द मिश्र सप्तम-क	३७
२८- जब वह बहुत रोया	भुतिरूप त्रिपाठी नवम-क	३९

२९-	क्रूरता	विनीत मिश्र नवम-क	४१
३०-	कथा लेखन	क्षितिज जयपुरिया नवम-ख	४२
३१-	भारत का प्रशासन	राजेश शुक्ल एकादश-क	४४
३२-	कहानी प्रतियोगिता मुकुल वर्ग द्वितीय	ज्योति कुमार गुप्त	४५
३३-	कहानी प्रतियोगिता मुकुल वर्ग तृतीय	मोहित श्रीवास्तव एकादश-क	४७
३४-	कविता लेखन प्रतियोगिता		
	अंकुर वर्ग प्रथम	आशुतोष तिवारी अष्टम-क	४९
	" " द्वितीय	कौशलेन्द्र मणि सप्तम-क	५०
	" " तृतीय	सत्येन्द्र मिश्र अष्टम-क	५१
	पल्लव वर्ग प्रथम	सतीश चन्द्र गुप्त दशम-क	५२
	" " द्वितीय	दिनेश प्रताप सिंह दशम-ख	५३
	" " तृतीय	अलोक दीक्षित नवम-क	५४
	मुकुल वर्ग प्रथम	आशीष मिश्र एकादश ख	५५
	द्वितीय	शुभेन्द्र सिंह परिहार द्वादश ख	५६
	तृतीया	आशीष कुमार सिंह एकादश क	५७
३५-	अनुभूति रंगों से घिरे पत्थर	राघवेन्द्र सिंह एकादश क	५९
३६-	पेशवा-नगरी पूणे	आशुतोष मिश्र नवम क	६२
३७-	गढ़ आला पर सिंह गोला	अविरल पान्डे नवम क	६३
३८-	प्रकृति दर्शन खण्डाला	गौरव गुप्त नवम-क	६५
३९-	अन्तिम पड़ाव, स्वप्न नगरी बम्बई	अजय कुमार एकादश ख	६६
४०-	देश दर्शन, एक झलक	स्वदेश कुमार एकादश क	६९
४१-	पं० जवाहर लाल नेहरू, कुछ स्मृतियाँ	सुनील निगम द्वादश क	७३
४२-	गीत	अनुराग तिवारी नवम ख	७५
४३-	दूर दर्शन धारावाहिक से	जितेन्द्र त्रिपाठी दशम ख	७६
४४-	कुर्सी तुमका शतशत प्रणाम	कौशलेन्द्र मणि सप्तम क	७७
४५-	भारत अपना देश	सुभाष शर्मा	७८
४६-	क्या लिखूँ	दिव्य मिश्र सप्तम क	८०
४७-	सामान्य ज्ञान	राजेश अवस्थी सप्तम क	८१
४८-	नकल-पथ पर	अनिल वर्मा दशम ख	८२
४९-	नारी और समाज (एकांकी)	सोमेश कुमार सिंह एकादश ख	८३
५०-	रहस्य मय त्रिभुज	वीरेन्द्र नाथ एकादश क	८६
५१-	मेरा एन० सी० सी० कैम्प (सीनियर डिवीजन)	गिरीश कुमार गुप्त एकादश क	८७
५२-	" " " (जूनियर डिवीजन)	अक्षय माथुर नवम ख	८९
५३-	कैसे सबका मन जीते ?	अक्षेसु अष्टम क	९२
५४-	देश की युवा पीढ़ी के नाम	सुमन दुबे आचार्य	९४
५५-	आचार्य-शिष्य-सम्बन्ध का स्वरूप	हरिनाम सिंह आचार्य	९६
५६-	हमारे पूर्व छात्रों के कुछ पत्र	सम्पादक	९७

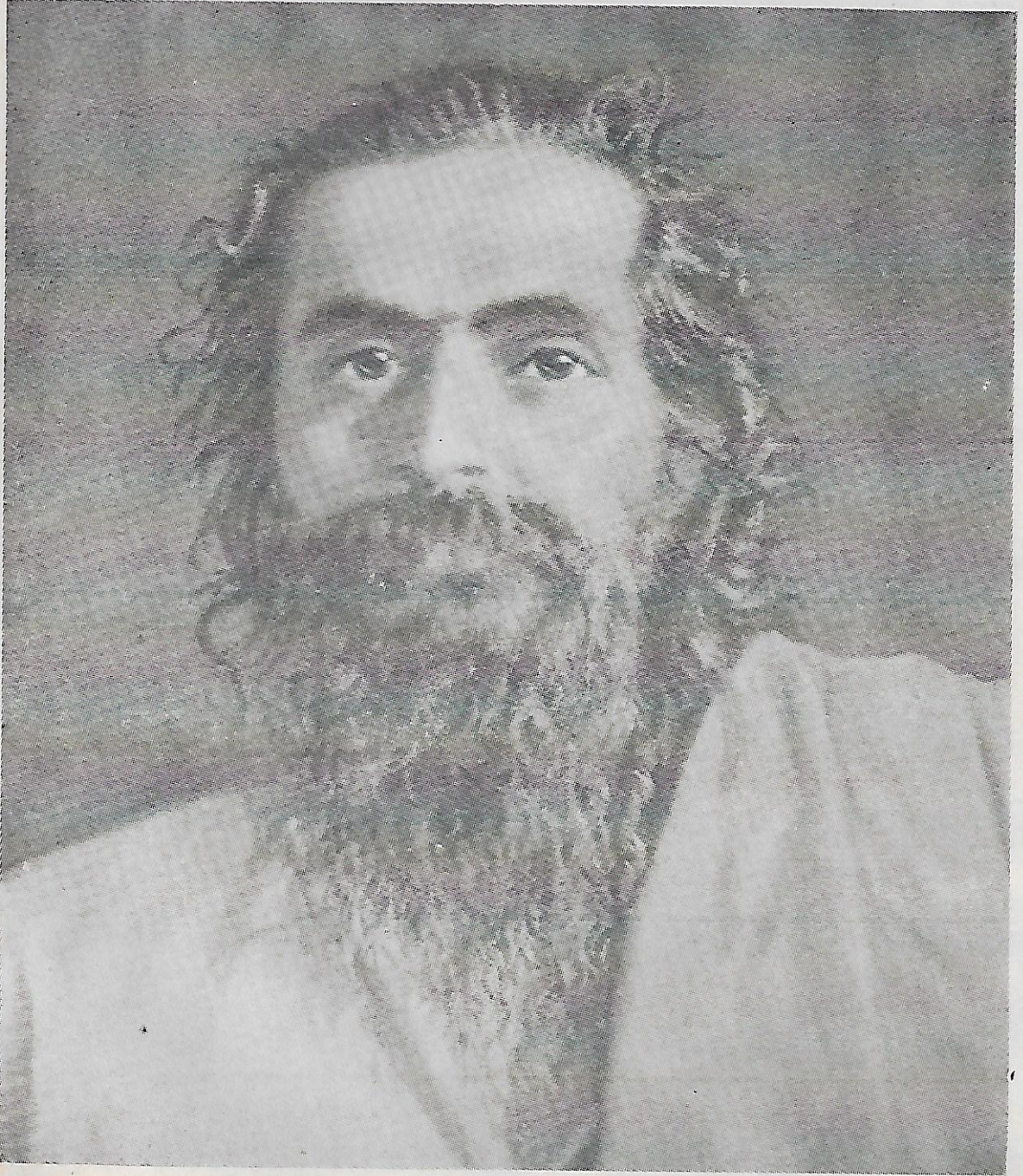
५७-	हमारे विद्यालय का वार्षिकोत्सव	गिरीश कुमार गुप्त एकादश क	१०१
५८-	वार्षिक आख्या १९८८-८९	विश्वदम्भर दयाल अष्टम क	१०४
५९-	जननी जन्मभूमिः च	Chandra Pal Singh Retd. Principal	१०८
६०-	पं० दीन दयाल उपाध्याय जयन्ती	Rahul Tiwari Class XII A	1
1-	My Pilgrimage to Nagpur	Anand Shukla	6
2-	Mr. Examination	Joyoti Kumar Gupta XI B	7
3-	Raman And His Effect	Gaya Prasap Verma M.A. B.ed.	10
4-	Dowry-The Curse Of Our Society	Arjun Pandey	1
5-	Work is Worship	N.C.C. Codet Saty Chandra Fouar IX A	13
6-	Real Education		15
7-	The Aims Of N.C.C.		16
8-	शिक्षक परिवार		17
9-	अनुक्रमांक इण्टर मीडिएट के परीक्षार्थी		19
10-	अनुक्रमांक हाईस्कूल के परीक्षार्थी		

लो शब्दांजलि, हे राष्ट्र पुरुष.....



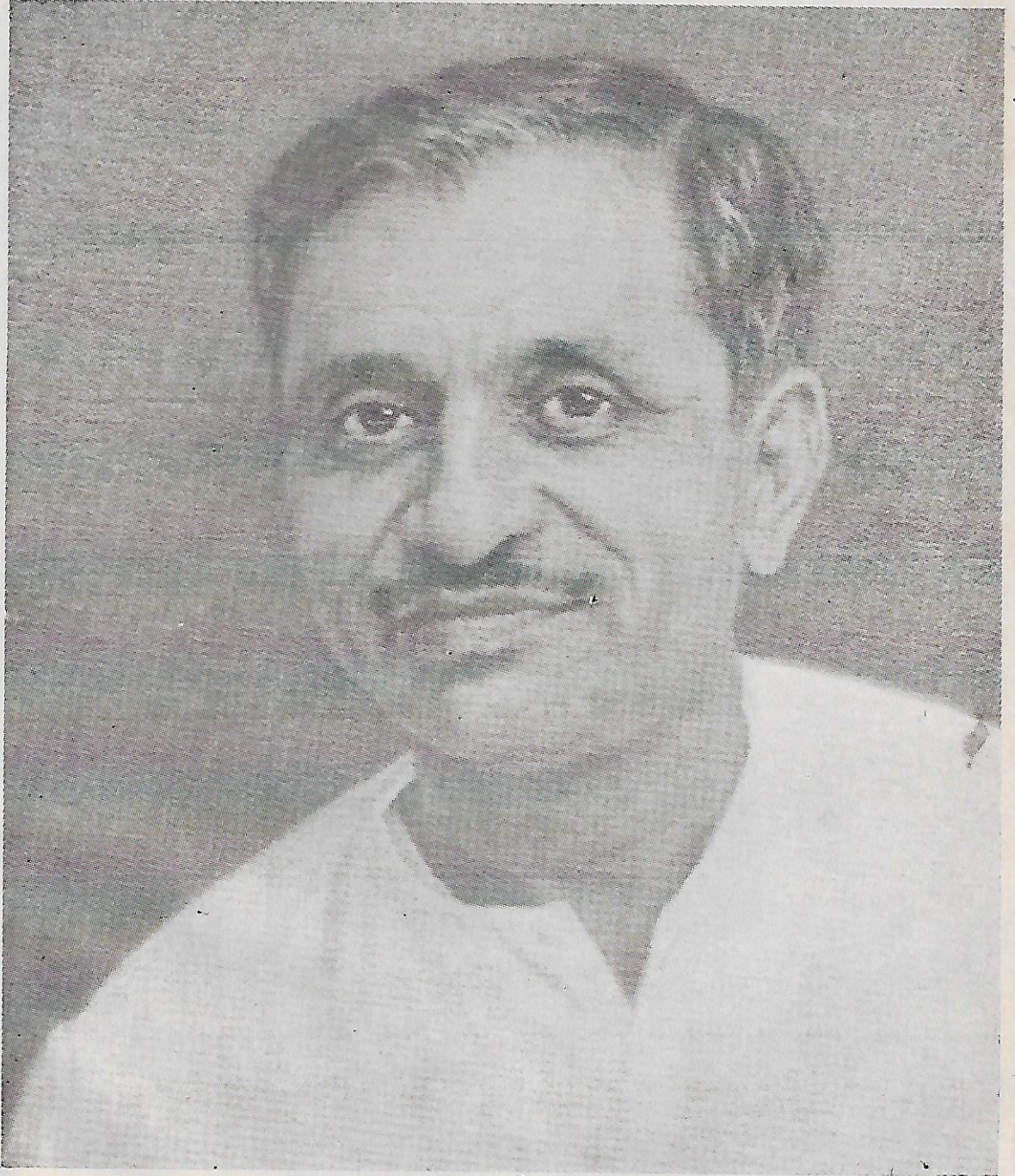
हिन्दू-राष्ट्र के मंत्र-द्रष्टा, शलाका-पुरुष डा० केशवराव बलिराम हेडगेवार
जिनका यह जन्म-शताब्दी वर्ष है ।

हे दिव्य ज्योति-धर महायती पद-वन्दन



महामनीषी उद्भट विद्वान, गहन चिन्तक एवम् हिन्दू-राष्ट्र के यशस्वी पुरोधा
पूज्य माधवराव सदाशिव गोलवलकर उपाख्य "श्री गुरु जी"

ओ यम-दधीचि स्वीकार करो नीराजन.....



प्रेरणा-स्रोत पण्डित दीन दयाल उपाध्याय, जिनकी स्मृति ही हमारा पाथेय है ।

दिव्य साधना निरत-निरंतर

राष्ट्र-यज्ञ की समिधा तुम



महिमामयी श्रीमती सुशीला नरेन्द्रजीत सिंह उपाख्या 'बूजी' जिनकी साधना
इस विद्यालय के रूप में प्रतिफलित हुई ।

ॐ

❖❖❖ वन्दना ❖❖❖

ॐ यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।

तथा मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु ॥

यजुर्वेदः ३२।१४

(तेजस्विता के धाम प्रभुवर ! दास नित यह माँगता ।
जिस बुद्धि मेधा के लिये नित ध्यानरत सब देवता ॥
अनुदिन पितर भी चिन्तना में व्यग्र जिसकी हैं विभो ।
उस बुद्धि मेधा से समन्वित तुम करो मुझको प्रभो ॥)

❖❖❖ सरस्वती स्तवनम् ❖❖❖

यस्याः कृपासमुदयश्च ददाति मेधां,

दैन्यादि दुःखशतशातनमातनोति ।

ब्रह्मादयश्छ विबुधाः समुपासते यां,

सा मे सदा भगवती रमतां हृदब्जे ॥

(जिनके अनुग्रह का उदय देता सुबुद्धि विचार है ।

दैन्यादि शत-शत दुःख का करता सदा संहार है ॥

ब्रह्मादि सुरपूजक प्रणत जिनके सदा पद कंज में ।

मेरे हृदय अरविन्द में वे भगवती सन्तत रमे ॥)



स्मरणीयाः श्लोकाः

(श्रीमद्भगवद् गीतायाः)

विश्व के धर्म-ग्रन्थों में गीता ही एक ऐसा धर्म ग्रंथ है, जो मनुष्य को सर्व गुण सम्पन्न बनाने हेतु पग-पग पर मार्ग दर्शन करता है। आइये, ऐसे सर्वश्रेष्ठ धर्म ग्रन्थ के तत्वरूप श्री कृष्ण के उपदेशों को आत्मसात् करें-

भगवान श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

हे भारत! जब-जब धर्म की कमी और अधर्म की बहुलता होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को धारण करता हूँ (मैं अवतरित होता हूँ) ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मं संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ॥

सज्जनों की रक्षा करने के लिए, आततायियों का विनाश करने के लिए तथा धर्म की स्थापना करने के लिए मैं प्रत्येक युग में प्रकट होता हूँ ।

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय ।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

इसलिये हे धनंजय! मुझसे अतिरिक्त किञ्चित् मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है, यह सम्पूर्ण संसार सूत्र में गुँथी मणियों के समान मेरे में गुँथा हुआ है ।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

जो पुरुष सम्पूर्ण प्राणियों में सबके आत्मरूप मुझको और सम्पूर्ण प्राणियों को मुझे में देखता है, उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता हूँ और वह मेरे लिए अदृश्य नहीं होता है, क्योंकि वह मेरे में एकरूप भाव से स्थित है ।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽंशसंभवम् ॥

इसलिए हे अर्जुन ! जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त एवं कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उसको तुम मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न समझो ।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।

तेषानित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

जो भक्तजन अनन्य भाव से मुझ परमेश्वर का चिन्तन करते हुए, निष्काम भाव से भजते हैं, उन नित्य एकीभाव से मेरे में स्थिति वाले पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ ।

❖❖❖ सम्पादकीय ❖❖❖

एक लम्बे समय से साहित्य से रचनात्मक स्तर पर जुड़ा हूँ। इस दौरान हिन्दी पत्रकारिता से भी जुड़ा रहा हूँ और तमाम पत्र-पत्रिकाओं से भी। कभी लेखक के रूप में, कभी परामर्शदाता के रूप में और कभी सम्पादक के रूप में। लेकिन, विद्यालय की पत्रिका का सम्पादन मेरी समझ में, बिल्कुल ही अलग ढंग का काम है, थोड़ा टेढ़ा भी। टेढ़ा तब न होता, यदि बच्चों से कहीं से भी, कौसी भी रचनाएँ लाने को कह दिया जाता और उन्हें चाहे जैसे भी पत्रिका में छाप दिया जाता। जैसा कि अधिकांशतः होता है कि अन्य औपचारिक गतिविधियों के साथ-साथ पत्रिका-प्रकाशन भी मात्र औपचारिक रूप में पूरा कर लिया जाता है। लेकिन हमारे विद्यालय में ऐसा नहीं है। प्रधानाचार्य श्री ओम शंकर जी, जो स्वयं भी सुधी रचनाकार और सूझ-बूझ वाले व्यक्ति हैं, भी पत्रिका को मात्र औपचारिक स्तर की पत्रिका रखने के पक्ष में नहीं हैं। पत्रिका के सम्बन्ध में विचार-विमर्श के दौरान उन्होंने एक उल्लेखनीय बात कही थी—“हम चाहते हैं कि हमारे विद्यालय की पत्रिका खाना पूरी मात्र न हो। इसके लिए हमें विद्यार्थियों में अभिरुचि उत्पन्न करनी पड़ेगी।”

यह बात मुझे सर्वथा उपयुक्त लगी थी। पूरे प्रदेश में अपना विशेष स्थान रखने वाले विद्यालय के प्रधानाचार्य का यह मोक्ष मुझे गरिमापूर्ण लगा था।

हम चाहते हैं कि हमारे विद्यालय की पत्रिका में विद्यार्थियों की भी रचनात्मक साझेदारी रहे। उनकी मौलिक प्रतिभा का सम्बर्द्धन तथा अवकलन भी हो सके। इसीलिये पत्रिका के सम्पादन की प्रक्रिया सहज रूप से सत्र के साथ ही प्रारम्भ हो जाती है और पूरे सत्रभर साथ-साथ ही चलती रहती है। इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत हमने अपने यहाँ “साहित्यिक प्रतिभा-खोज प्रतियोगिता” का आयोजन भी किया था। इसमें षष्ठ कक्षासे लेकर द्वादश तक के तमाम विद्यार्थियों ने बड़े उत्साह के साथ भाग लिया। यद्यपि उन सभी रचनाओं का उपयोग पत्रिका में नहीं हो सका है, लेकिन हमारा यह विश्वास और भी अधिक दृढ़ हुआ है कि हमारे विद्यार्थियों में साहित्यिक प्रतिभा है और उनमें ऐसे आयोजनों के लिये उत्साह भी खूब है। वस्तुतः हम विद्यार्थियों को अच्छा परीक्षाफल लाने के लिए तैयार करने के साथ-साथ उनकी रचनात्मक प्रतिभा के विकास के लिए भी उन्हें संस्कारित करते हैं। हम उनके व्यक्तित्व के हर सम्भव विकास के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। यद्यपि यहवैसा ही है जैसे कोई दूर-दूर तक फैले हुए रेगिस्तान के किसी कोने में फूल वाले कुछ पौधे उगाना चाहता हो। लेकिन हमारा दृष्टिकोण निराशावादी नहीं है। हमारा विश्वास है कि इस पूरे रेगिस्तान को हम हरीतिमा से भले ही न भर सकें, लेकिन बीच-बीच में कुछ नखलिस्तान तो उगा ही सकते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी तो हमारे प्रयास इसी तरह के हैं, यही हमारी पहिचान है। हम हर जगह बगीचे भले ही न उगा सकें लेकिन हमारे अपने बगीचे के फूलों की गन्ध दूर-दूर तक फैल रही है, फैलती रहेगी।

‘कर्म बीज संस्कार’ के अनुसार शिक्षा भी एक संस्कार है ‘ब्रह्म संस्कारों’ में यह सबसे महत्वपूर्ण संस्कार है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य या समाज संस्कारित होता है। किसी समाज की जैसी शिक्षा होगी वैसी ही संस्कृति भी होगी। आज की सरकारी शिक्षा औपचारिक शिक्षा है। इसे शिक्षा की औपचारिकता भी समझा जा सकता है और सरकार की मजदूरी भी यह शिक्षा तोतारामी जीवन-शैली को बढ़ावा देती है। वह ऐसे ‘तोता रामों’ को पैदा करती है जो रहने-बोलने की कला में तो माहिर होते हैं लेकिन उनमें विचारने की क्षमता नहीं होती। वे भाव-शून्य से होते हैं। संगीत, साहित्य और कला से उनका कुछ लेना-देना नहीं; क्योंकि इनसे जुड़ने के लिए मौलिक सूझ-बूझ और सात्विक भावना का ज्वार चाहिए, जो उनके पास है ही नहीं। परन्तु मानसिकता वाले इन ‘तोता-चश्म’ लोगों की दृष्टि में या तो पद का महत्व होता है या पैसे का। अपने छोटे से स्वार्थ के लिए ये किसी की भी ‘हाँ’ में ‘हाँ’ मिला सकते हैं। दिन को रात और रात को दिन बता सकते हैं। इनके लिए राष्ट्र की परिकल्पना एक सामान्य भू-खण्ड से अधिक नहीं, जिसमें वे दुर्भाग्य से पैदा हो गये हैं। राष्ट्र-प्रेम इनके लिए दलाली की राशि से अधिक मूल्यवान नहीं है। अपनी संस्कृति इन्हें विदेशी ‘टाई-पिन’ से अधिक कीमती नहीं लगती।

कभी-कभी लगता है कि सरकारी शिक्षा का यह खतरा अपनी पुरानी लीक से हट कर दल-दल में फँस गया है। इसीलिए वह गतिशील न होकर कुगतिशील हो रही है। इसमें अब भी “मैंकाली मार्की” घुना जुवाँ लगा है। यह प्रशासन के इकलौते पहिये के बल पर किसी तरह घिसट भी नहीं पा रहा है। इसमें ‘तुष्टीकरण’ का भारी ‘अटकना’ लगा है। दूसरा पहिया शायद टूट गया है या जानबूझ कर तोड़ दिया गया है। पुराने, वजनदार एवं मजबूत धुरे की जगह काम चलाऊ सड़ियल धुरा लगा दिया गया है।

ऐसे में हम अपने विद्यार्थियों को कुछ ऐसे संस्कार देना चाहते हैं जो उन्हें ‘तोता रामी’ संस्कृति से अलग, मौलिक प्रतिभा-सम्पन्न बना सकें। जो उनके अन्दर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की भावना जगा सके और आत्म-बोध (Self realization) की ओर उन्मुख कर सके। वे अपनी प्रतिभा को और अधिक धारदार बना सकें। स्वयं को पहिचान कर समाज में अपनी अलग पहिचान बना सकें। ‘नीराजन’ के प्रकाशन का उद्देश्य भी यही है। इस दृष्टि से यह एक शुभ अनुष्ठान है, जिसमें मेरी भूमिका सिर्फ समिधा एकत्रित करने वाले की है।

इस यज्ञ-कर्म में सहयोग सभी का रहा है—पूरे विद्यालय-परिवार का। किसी का किसी तरह से और किसी का किसी तरह से। किसी का रचनात्मक और किसी का भावनात्मक। आदरणीय चन्द्रपाल जी ने अंग्रेजी की रचनाओं को सूक्ष्मता से जाँच-परख कर अमूल्य सहयोग दिया है। श्री जे० पी० जी ने मेरे एक बार के आग्रह पर ही अपनी श्रेष्ठ रचना देकर उदार सहयोग दिया है। दीपक जी ने विद्यार्थियों को यात्रा-साहित्य लिखने के लिए प्रेरित किया। इसके अतिरिक्त सुभाष जी, श्री नारायण जी, हरिनाम जी, अजुन पाण्डेय तथा राधेश्याम जी ने अपनी रचनायें देकर पत्रिका को स्तरीय बनाने में सहयोग दिया है। गणेश जी, बिहारी लाल जी तथा गया प्रसाद जी भी इस काम में सक्रिय रहे हैं। अन्य आचार्य बन्धुओं की शुभ कामनाओं और सुझावों से भी मुझे काफी बल मिला है। इसीलिए नीराजन के इस अंक में जो कुछ भी अच्छा बन पड़ा है, उसका श्रेय इन्हीं सब लोगों को है जो कमियाँ रह गई हैं वे सभी मेरी अल्पज्ञता और प्रमाद के कारणों से।



नीराजकों से

चन्द्र पाल सिंह

पिछले वर्ष अर्थात् १९८८ की हाईस्कूल तथा इण्टर-मीडियट की परीक्षाओं के परिणाम से तुम सब लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई होगी। दोनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने का प्रतिशत १०० रहा तथा तृतीय श्रेणी में कोई नहीं आया। इण्टर में ८२ परीक्षार्थियों में से ७३ प्रथम श्रेणी में, ६ द्वितीय में तथा २८ ससम्मान उत्तीर्ण हुए। साथ ही उनमें से छः छात्रों को पूरे प्रदेश में द्वितीय, तृतीय, पष्ठ, नवम, एकादश तथा त्रयोदश स्थान प्राप्त हुए। इसी प्रकार हाईस्कूल में १०२ छात्रों में से ६८ प्रथम श्रेणी में, केवल ४ द्वितीय में तथा ६० ससम्मान उत्तीर्ण हुए और ७ ने पूरे प्रदेश में द्वितीय, तृतीय, सप्तम, दशम, द्वादश चतुर्दश तथा पचदश स्थान प्राप्त किये। वैसे तो किसी न किसी परीक्षा में प्रतिवर्ष दो-तीन जनों को प्रथम पन्द्रह छात्रों में स्थान आना ही था, परन्तु इतनी संख्या में दोनों परीक्षाओं में स्थान आना किसी भी विद्यालय के लिए बड़े गौरव की बात है। जहाँ तक शैक्षिक उन्नति की बात है, हमारा विद्यालय अब अपने उच्चतम् शिखर पर आसीन है। अब प्रयत्न यह होना चाहिये कि हम इससे नीचे न जायें और यदि हम अर्थात् हमारे आचार्य और हमारे छात्रगण शिथिलता न आने दें तो इस स्थिति को लगातार बनाए रखना कठिन नहीं है।

परन्तु क्या हम केवल शैक्षिक क्षेत्र की उपलब्धियों से सन्तुष्ट हो जाएँगे? क्या जिस उद्देश्य से परम पूजनीय गुरु जी ने इस विद्यालय के भवन का शिलान्यास किया था, जिस स्वप्न को लेकर महीयसी बूजी ने इस विद्यालय की स्थापना का संकल्प लिया था वह पूरा हुआ? वह उद्देश्य, वह स्वप्न समय-समय पर दुहराया जाता रहा है। वह है उस महामानव का नाम जो इस विद्यालय के नाम से जुड़ा हुआ है। उसी के समान अर्थात् पं० दीनदयाल उपाध्याय जैसे निस्पृही त्यागी, राष्ट्रभक्त, सेवान्वती युवक तैयार करना। क्या इन १८-१९ वर्षों में कोई दीनदयाल जैसे गुणों से युक्त नवयुवक अपने पुराने छात्रों में दिखाई पड़ा है? अभी तक तो शायद नहीं। यह तो ठीक है कि किसी भी महामानव की बिल्कुल बंसी ही अनुकृति प्रकृति पैदा नहीं करती जैसे राम जैसा दूसरा राम नहीं हुआ और न कृष्ण जैसा दूसरा कृष्ण ही हुआ। इसी प्रकार शङ्कर, दयानन्द और विवेकानन्द जैसा दूसरा संन्यासी कोई नहीं हुआ और न हो सकता है, परन्तु उनके जीवन की प्रेरणा से हम अपने में अपनी प्रकृति के अनुसार उन जैसे गुणों का विकास तो अवश्य ही कर सकते हैं। इसी प्रकार दीनदयाल जैसे हूबहू हमारे विद्यार्थी चाहे न बनें, परन्तु उनके समान सब कुछ राष्ट्र की सेवा में समर्पित तो अवश्य कर सकते हैं।

शैक्षिक उपलब्धियों के फलस्वरूप हम अपने पूर्व छात्रों में कुछ ऐसे युवकों को गिना सकते हैं जो

विदेश में इंजिनियरिंग की उच्च शिक्षा पा रहे हैं, वाम्बे-हाई में समुद्र से तेल निकलवाने में संलग्न हैं, उच्च मेडिकल शिक्षा पा रहे हैं अथवा पुलिस, सेना या प्रशासन में अधिकारी हैं। इनमें उच्च चारित्रिक गुणों की कमी नहीं होगी यह भी हमें विश्वास है। हम यह भी जानते हैं कि किसी भी दीनदयाल के उजागर होने में समय लगता है। क्या पता हमारे इन्हीं मेधावी छात्रों में से कोई दीनदयाल के गुणों वाला व्यक्ति छिपा हो जो आगे चलकर चमके। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि जहाँ हमने अपने छात्रों के बौद्धिक विकास की उपयुक्त व्यवस्था कर रखी है वहीं उनके चारित्रिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक गुणों के विकास के लिये भी उपयुक्त व्यवस्था एवं वातावरण के सृजन की चिन्ता करें। उदाहरण के लिये हम अपने छात्रों में सामाजिक संवेदन-शीलता जाग्रत करने के लिये कोई कार्यक्रम हाथ में ले सकते हैं। कोरे उपदेश देकर हम किसी को राष्ट्रभक्त, समाज सेवी, परदुःख कातर नहीं बना सकते। हम बच्चों को उपयुक्त परिस्थितियों में रखकर, उनसे सामाजिक सेवा के कार्य करवाकर ही उनमें समाजोन्मुखता का भाव विकसित कर सकते हैं। आइये हम सभी माँ भारती के नीराजक-आचार्य एवं छात्र-मिलकर इस प्रकार की योजना अगले सत्र के लिए तैयार करें।

आवश्यकता है कि अपने 'स्व' का परिचय किया जाए। बिना उसके स्वराज्य का कोई अर्थ नहीं है, स्वतन्त्रता हमारे विकास और सुख का साधन नहीं बन सकती। जब तक हमें अपनी असलियत का पता नहीं, तब तक हमें अपनी शक्तियों का ज्ञान नहीं हो सकता और न उनका विकास ही सम्भव है। परतन्त्रता में समाज का 'स्व' दब जाता है, इसीलिए राष्ट्र स्वराज्य की कामना करते हैं, जिससे वे अपनी प्रकृति और गुण-धर्म के अनुसार प्रयत्न करते हुए सुख की अनुभूति कर सकें। प्रकृति बलवती होती है। उससे प्रतिकूल काम करने से अथवा उसकी ओर दुर्लक्ष करने से कष्ट होते हैं। प्रकृति का उन्नयन कर उसे 'संस्कृति' बनाया जा सकता है, पर उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। आधुनिक मनोविज्ञान बताता है कि किस प्रकार मानव-प्रकृति एवं भावों की अवहेलना से व्यक्ति के जीवन में अनेक रोग पैदा हो जाते हैं ऐसा व्यक्ति प्रायः उदासीन एवं अनमना रहता है। उसकी कर्मशक्ति क्षीण हो जाती है अथवा विकृत होकर विषयगामिनी बन जाती है। व्यक्ति के समान राष्ट्र भी प्रकृति के प्रतिकूल चलने पर अनेक व्यथाओं का शिकार बनता है। आज भारत की अनेक समस्याओं का यही कारण है।

शिक्षकों का स्वधर्म

महादेवी वर्मा

हमारी संस्कृति सदा से ही शासन और समाज, दोनों की मार्गदर्शिका रही है, किन्तु पिछले २०० सालों से, जबसे शासकों ने शिक्षा पर काबू करने का प्रयोग किया, तबसे हमारा मनोबल गिरने लगा और शिक्षा शासनपरक बनती गयी। आज जीवन के हर क्षेत्र में और शिक्षा में भी राष्ट्रीयकरण का नारा व्याप्त है, किन्तु इस राष्ट्रीयकरण का अर्थ केवल "सरकारीकरण" है। यह शाश्वत दासता की मांग है। जब बन्दी खुद ही कहने लगे कि मेरे पैरों में बेड़ियाँ डाल दो, तब उसका उद्धार कौन कर सकता है ?

हम आज भी अंग्रेजों के द्वारा चालू की गयी शिक्षा पद्धति को चला रहे हैं। स्वतन्त्रता के बाद शिक्षा नहीं बदली। पुराना चौखटा आज भी कायम है। नतीजा यह हुआ है कि आज स्वतन्त्र भारत का तरुण हमसे कुछ प्राप्त नहीं कर पा रहा है। वह बुद्धि से बौना और जीवन के सम्बल से वंचित होता जा रहा है। हमारी प्राचीन शिक्षा पद्धति न शासनपरक थी, न समाजपरक थी। हमारी परम्परा में गुरु तथा शिष्य दोनों का लक्ष्य आत्मशोधन के लिये विद्या देना तथा विद्या प्राप्त करना था और यही कारण था कि उस वक्त का तरुण आत्मविश्वास से भरा होता था।

आज का तरुण विक्षुब्ध है। वह अपने जीवन की विक्षुब्धता को भरने आता है, लेकिन शिक्षक के आने से, जाने से, उसके होने से या न होने से विद्यार्थी के जीवन पर कोई असर नहीं पड़ता। आज तरुण प्यार और सम्बेदना का प्यासा है, उस अमृत के लिये प्यासा है, जिसे केवल आचार्य ही दे सकता है। हम मेघ बनकर बरस जायें, सब दरारें, सब विषमताएं पार दें। समाधान अगर नहीं हुआ, तो ध्वंस होगा और तब नयी पीढ़ी हमें क्षमा नहीं करेगी।

यदि आज का छात्र विध्वंस के मार्ग पर जाता है, तो उसका दायित्व हम शिक्षकों पर है। तरुण के आवेश को विवेक की शक्ति देकर उसका सर्जनात्मक विकास करना शिक्षकों का कर्तव्य है, लेकिन इस ओर शिक्षकों का ध्यान नहीं गया है। उनके संगठन अधिक वेतन तथा ग्रेड आदि की मांग तक सीमित है। समस्याओं का समाधान हो, शिक्षा सरकार से मुक्त हो, शिक्षकों का बर्चस्व अखंडित रहे, ऐसी मांग कोई नहीं करता। विनोबा जी ने जब आचार्यकुल का विचार सुझाया, तो उनके मन में शिक्षा की स्वायत्तता शिक्षकों के अखंडित बर्चस्व की ही बात थी। आचार्यकुल का काम आत्मशोधन तथा आत्ममंथन को प्रेरणा देना है। अपने मनोबल और तपस्या के द्वारा नागरिक तथा समाज के बर्चस्व को कायम रखना तथा नयी पीढ़ी के मार्ग को आलोकित करना हम शिक्षकों का कर्तव्य होना चाहिये। यह हम तभी कर सकेंगे, जब हमारा चरित्र उज्ज्वल हो, भावनाएं उदात्त हों और हम आज के राजनैतिक दलदल से बचे रहें। हमारी राजनीति तो विक्षिप्तों का एक मेला है। विक्षिप्तों के इस मेले में, जहाँ सांझ-सवेरे सत्ता के लिये दलबदल होता है, कुसियां खींची और उल्टी जाती हैं, कोई यह नहीं जानता कि कल क्या होगा ? इस राजनीति ने शिक्षकों का मनोबल दुर्बल किया है और समाज को तोड़ा है।

इतने बड़े समृद्ध ज्ञान के इस समृद्ध देश में शिक्षक क्या यन्त्र बनकर ही रह जाना चाहता है ? वास्तव में ज्ञान के सम्प्रेषण में ही हम अपनी कीमत बना सकते हैं। शिक्षकों का काम अतिदान का नहीं, आहमदान का सौदा है।

आज पश्चिम की दुनिया में साधनों का वैभव है, लेकिन अन्दर से वे खाली हैं जब बुद्धि का वैभव अपनी मर्यादा छोड़ देता है, तब जीवन का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। हमारी संस्कृति के कुछ तत्व शाश्वत हैं। इस देश के चिन्तन में कुछ मूल्य हैं, जो सनातन हैं।

विचार एक यज्ञ है, संकल्प भी एक यज्ञ है। आचार्यकुल का हर सदस्य संकल्प करे और स्वयं दीपक बनकर जले, तभी वह नयी पीढ़ी को, समाज को आलोकित कर सकेगा। आज एक आंधी आयी है। अगर आचार्यकुल तरुणी को, समाज को प्राणदायिनी सांस दे सके, तो आंधी और झंझावात गुजर जायेंगे, लेकिन जीवन कायम रहेगा। शिक्षकों का स्थान समाजरूपी वृक्ष की जड़ों में है, इसीलिये शिक्षकों को शाश्वत मूल्यों और तत्वों से युक्त होना है।

विनोबा ने आचार्यकुल की स्थापना इसलिये की, कि शिक्षक भौतिक और आर्थिक स्तर पर ही संघर्ष न करें, वह जीवन के मूल्यों के लिए आत्म-शोधन-मंथन करे। यदि शिक्षक आत्मशोधन में लगे, तो वह परमुखापेक्षी नहीं रहेगा। उसका वर्चस्व, उसकी स्वायत्तता अखण्डित रहेगी।

हम विनोबा के इस स्वप्न को सार्थक कर दें, अपने आपको सार्थक कर दें, जीवन को सार्थक कर दें वह शिक्षक भी क्या है, जो तपे और धरती में दरारें पड़ जायें। हम मेघ की तरह उमड़ें और बरस जायें, धरती को तृप्त कर दें ! आकाश की बातें जानें और धरती पर पांव धरकर चलें ! !”

शिक्षा-शिक्षक और शिक्षार्थी

आचार्य विनोबा भावे

(प्रस्तुति विनय भाई)

आज विद्यार्थियों में प्रचण्ड असन्तोष है। लेकिन आज उन्हें जैसी रही शिक्षा दी जाती है, उसे देखते हुए उनमें इतना कम असन्तोष है, इसी का मुझे आश्चर्य है। आज की शिक्षा से विद्यार्थी श्रम ही क्या, अपनी आत्मा की भी प्रतिष्ठा खो बैठता है।”

जहाँ गुरु-शिष्य भाव नहीं है, त्याग या सेवा-वृत्ति का नामों-निशान नहीं है नैतिक वातावरण नहीं है, स्वधर्म का अभ्यास नहीं है, मातृ-भाषा के प्रति सम्मान नहीं है, श्रम की कोई कीमत नहीं है और स्वतन्त्र विचारों का कोई मूल्य नहीं, उन शिक्षण संस्थाओं में जाकर लाभ किस बात का उठाया जाय ?”

“समय का तकाजा है कि शिक्षक राजनीति से मुक्त होकर लोकनीति को जाग्रत करें। लोकनीति लोगों की अपनी शक्ति है। आपके हाथ में दूसरा महत्वपूर्ण कार्य यह होना चाहिये कि शिक्षा क्या और कैसी दी जायें, यह भी आप सब विद्वान मिलकर तय करें।

“देश में दो शक्तियाँ संगठित करनी हैं। (१) ग्राम-शक्ति यानी ग्रामीण जनता की शक्ति और (२) आचार्य-शक्ति यानी शिक्षक, विद्वज्जन, सज्जनों की शक्ति निर्भय, निष्पक्ष, निर्वैर आचार्य-शक्ति, खड़ी करने के लिये ‘आचार्य कुल’ की संकल्पना आई है।”

विनयभाई, अध्यक्ष,

उत्तर-प्रदेश सर्वोदय मण्डल, सिविल लाइन्स, कानपुर, प्रसारित



अ० शा० पत्रांक सी० ।

हरिशंकर शुक्ल

/८८-८६

जिला विद्यालय निरीक्षक,

कानपुर

दिनांक २७ फरवरी, १९८६

प्रिय महोदय,

अतीव प्रसन्नता हुई यह जानकर कि आपका विद्यालय वार्षिक पत्रिका "नीराजन" के १५ वें अंक का प्रकाशन करने जा रहा है ।

आपका विद्यालय न केवल जनपद कानपुर नगर में वरन् सम्पूर्ण प्रदेश में प्रतिष्ठा-प्राप्त विद्यालय है । माध्यमिक शिक्षा परिषद की वर्ष १९८८ की सम्मिलित श्रेष्ठता सूची में आपके छात्रों ने हाई स्कूल परीक्षा में सात स्थान तथा इण्टरमीडिएट में छः स्थान प्राप्त कर अप्रतिम कीर्तिमान स्थापित किया है । छात्रों की इस उपलब्धि से हम सभी गौरवान्वित हैं ।

आपकी तथा आपके सहयोगी अध्यापक छात्रों के शारीरिक बौद्धिक एवं मानसिक विकास में समर्पित भाव से लगे हुए हैं । निश्चय ही ये सुसंस्कारित भावी नागरिक भविष्य की संवेदनशील परिस्थितियों से जूझने तथा मार्ग निर्देशित करने में सक्षम हो सकेंगे । आपका तथा आपके सहयोगी अध्यापकों का यह समर्पित प्रयास स्तुत्य है ।

पत्रिका के माध्यम से छात्रों को ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा के विकास तथा भाषा एवं शैली के परिमार्जन का सुअवसर प्राप्त होगा । छात्रों तथा अध्यापकों की रचनायें विश्व बन्धुत्व की भावनाओं को प्रस्फुटित एवं विकसित करने में सहायक सिद्ध होंगी ।

मुझे विश्वास है कि आपके विद्यालय की पत्रिका विद्यालय के स्तर एवं गरिमा तथा भारतीय संस्कृति के अनुरूप होगी ।

मैं पत्रिका के सफल प्रकाशन की मंगल कामना करता हूँ ।

सद्भावनाओं सहित,

भवदीय

हरिशंकर शुक्ल

श्री ओम शंकर त्रिपाठी

प्रधानाचार्य

पं० दीन दयाल उपाध्याय सनातन धर्म

विद्यालय, नबावगंज, कानपुर ।



माननीय

बैरिस्टर नरेन्द्र जीत सिंह

से विशेष साक्षात्कार

साम्प्रदायिक सद्भाव

दोषपूर्ण चिन्तन का

शिकार

जागरूक विचारक समाज की प्रत्येक गतिविधि पर अपनी दृष्टि रखते हैं। वे व्यक्ति या कुछ व्यक्तियोंके समूह के लिये नहीं, सम्पूर्ण राष्ट्र के लिये चिन्तन करते हैं। इसीलिये उनका चिन्तन बहुमुखी होता है। वे किसी भी सद्बिचार को क्रियात्मक रूप देने का प्रयत्न करते हैं, क्योंकि सही चिन्तन की सही प्रक्रिया यही है। ऐसे ही बहुमुखी चिन्तन के धनी बैरिस्टर नरेन्द्र जीत सिंह हैं। दैनिक जागरण के साथ उनके एक साक्षात्कार को हम अविकल रूप से पत्रिका में प्रस्तुत कर रहे हैं—

सम्पादक

साम्प्रदायिक सद्भाव की बिगड़ी स्थिति के कारण क्या है ?

स्वतन्त्रता संग्राम तक हम 'भारत एक राष्ट्र है', यह समझकर अंग्रेजों से संघर्ष करते रहे। जिन्ना साहब ने दो राष्ट्रों की 'थ्योरी' चलायी, देश का बंटवारा कराया। बंटवारे के बाद दुर्भाग्यवश हम देश में समान नागरिक, समान अधिकार की स्थिति नहीं रख सके। हमने अल्पसंख्यक बहुसंख्यक की दृष्टि से सोचना नहीं छोड़ा। अल्पसंख्यकों को विशेष अधिकार दिये। देश में धर्म निरपेक्षता को मानने के बाद भी सभी धर्मों को

प्रसार तथा धर्म परिवर्तन की छूट दी। जिसके कारण बिखराव तथा टकराव की स्थिति आ गई है। सम्प्रदाय विशेष का नेतृत्व प्राप्त करने के लिए लोग साम्प्रदायिक कट्टरता, उग्रवाद का सहारा लेते हैं। यही कारण मुझे साम्प्रदायिक सद्भाव की स्थिति बिगड़ने के लगते हैं।

इसके लिए जिम्मेदार कौन है ?

हमारा दोषपूर्ण चिन्तन जिम्मेदार है। जब हमने संविधान बनाया तो हमने कहा कि धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है 'सब धर्मों का पालन', अभिव्यक्ति तो ठीक थी

किन्तु प्रसार व धर्म परिवर्तन की छूट धर्म निरपेक्षता के अनुकूल नहीं की जा सकती, जिस ढंग से आज विदेशों से पैसा लाकर विदेशी मिशनरी तथा अन्य धार्मिक कट्टरपन्थी सामूहिक धर्म परिवर्तन कर रहे हैं, उससे टकराव स्वाभाविक है। सबको समान समझा जायेगा, यह कहने के बाद भी हमने अल्पसंख्यकों को विशेष अधिकार दिये, जो बहुसंख्यकों को प्राप्त नहीं हैं। नतीजा यह हुआ कि आज नये-नये अल्पसंख्यक बन रहे हैं। बंगाल में रामकृष्ण मिशन तथा बिहार व पंजाब में आर्य समाज को अल्पसंख्यक की मान्यता प्राप्त हुई है। यह सब विखराव हमारी राष्ट्रीयता की शुद्ध कल्पना न होने के कारण हो रहा है। यदि केवल मौलिक और मानवीय अधिकार समान रूप से दिये जाते तो एक राष्ट्रीयता का निर्माण होता।

साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए क्या किया जाना चाहिए ?

धर्म परिवर्तन पर प्रतिबन्ध होना चाहिए। अल्प-संख्यक बहुसंख्यक का भेदभाव न रख कर प्रत्येक को भारतीय समझा जाना चाहिए। 'हिन्दी हैं हम, वतन हिन्दोस्तां हमारा' की भावना ही रहनी चाहिए। मौलिक और मानवीय अधिकारों की रक्षा होनी चाहिए साम्प्रदायिकता से राजनीतिक गठबन्धन नहीं होना चाहिए।

साम्प्रदायिक सद्भाव में राजनीतिक दलों की क्या भूमिका है ?

सब राजनीतिक दल अवसरवादिता पर चलते हैं। उनका चिन्तन केवल वोट कैसे मिलेंगे पर आधारित होता है। अतः साम्प्रदायिकता, जातीयता, क्षेत्रवाद जहाँ जिससे लाभ मिले, उसको प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप

से प्रोत्साहन देते हैं जिससे आज एकता टूट रही है। लोकदल ने पिछड़े वर्ग का नारा दे दिया। कोई बहुजन समाज का नारा देता है। कहीं नीतियों का प्रश्न नहीं दिखता। केवल सत्ता में कैसे आया जा सकेगा यह दृष्टि सर्वोपरि है।

क्या अल्पसंख्यकों के लिए अलग बैयक्तिक कानून रहने चाहिये ?

मेरी दृष्टि तो मानवीय मूल्यों की स्थापना होनी चाहिए। व्यक्ति-व्यक्ति के व्यवहार में साम्प्रदायिक दृष्टिकोण का प्रश्न वास्तव में उठता ही नहीं। अतः एक सिविल कोड, जो मानवीय आधार पर निर्मित हो, वही सबको मान्य होना चाहिए। हाँ, जो व्यक्तिगत प्रश्न है- जैसे विवाह किस पद्धति से हो, हम पूजा किस प्रकार करें, इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

क्या भारतीय संस्कृति व परम्पराओं को न मानने वाले भारतीय नहीं हैं ?

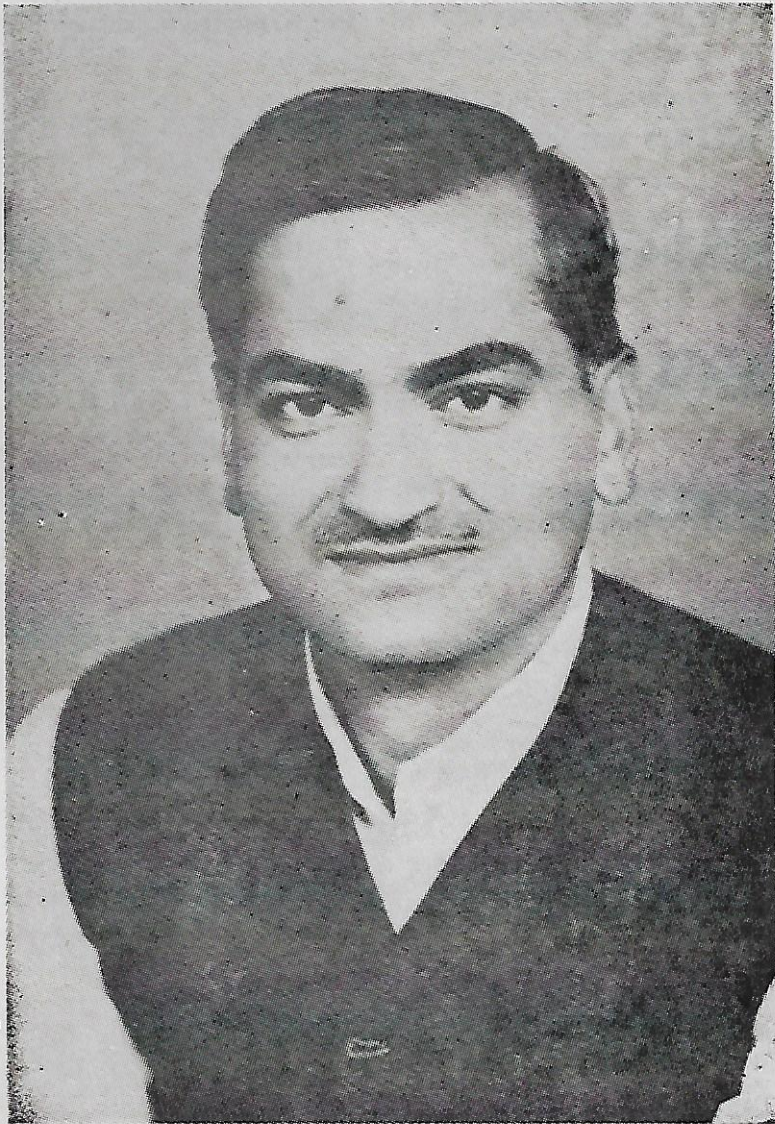
भारत के नागरिक तो हैं ही। किन्तु, भारतीय संस्कृति व परम्परा उन्हें मान्य नहीं है तो उनकी आत्मा भारतीय नहीं कही जा सकती। वास्तव में भारतीय जीवन मूल्य मानवीय हैं, साम्प्रदायिक नहीं हैं जो सबके लिए मान्य हो सकते हैं।

सच्चा भारतीय कौन है ?

जो भारत को मातृभूमि, पुण्यभूमि समझे, यहाँ के महापुरुषों में श्रद्धा रखे तथा यहाँ की मान्यताओं को सम्मान करे। हम प्रथमतः भारतीय हैं, यह जिनकी निष्ठा हो, उनको ही सच्चा भारतीय कहा जा सकता है।



निरंतर प्रगति की ओर



विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री ओम शङ्कर त्रिपाठी

शिक्षा हमारे देश की

ओमशंकर त्रिपाठी प्रधानाचार्य

प्रत्येक विचारकर्मी व्यक्ति प्रायः ही 'वेद' शब्द का प्रयोग किया करता है, चाहे उसने वेद के अध्ययन, मनन, निदिध्यासन की भूमिका भी न जानी हो। वास्तव में यह स्थिति हमारे जन्मजात संस्कारों और पर्यावरणीय प्रभाव के घालमेल के ही कारण है। फिर भी हमको समझना होगा कि वेद वास्तव में है क्या? तो उसका उत्तर तैत्तिरीय संहिता आपस्तम्ब धर्मसूत्र, मनुस्मृति, नाट्य-शास्त्र तथा अमरकोष आदि की व्याख्याओं से सरलीकृत रूप में इस प्रकार समझा जा सकता है, "जिनके माध्यम से सभी मनुष्य सत्य विद्या को विचार पूर्वक जानते, समझते और प्राप्त करते हैं, उनको 'वेद' कहते हैं।" इस परिचय को प्राप्त कर सहज ही मन में यह प्रश्न उठता है कि यह सत्य विद्या कौन सी है, जिसे जानने और प्राप्त करने के लिये मनुष्य जीवन भर लालायित रहता है। तो उसे सरल रूप में यों ही समझा जा सकता है कि हमको जो कुछ भी प्रत्यक्ष या परोक्ष इन्द्रियगम्य अथवा इन्द्रियातीत अनुभूतियाँ होती हैं, वे सभी विद्या के क्षेत्र में आती हैं। 'परा' और 'अपरा' के विभाग भी हम सुविधानुसार भले ही कर लें, किन्तु इन सबकी चरम परिणति एक ही स्थान पर होती है और वह है ज्ञान जिसे हम 'वेद' कहते हैं। हमारे जीवन की यह आदर्श परम्परा रही है कि हम किसी भी तत्व को रूपाकार देकर उसे सरलीकृत कर देते रहे हैं। इसलिये हमने वेदको भी एक सर्वाङ्गपूर्ण ज्ञान-विग्रह मानकर उसकी प्रस्तुति ऐसे की :-

वेद के प्रमुख ६ अंग हैं। यथा उनकी आँखें ज्योतिष, कान निरुक्त, नाक शिक्षा, मुख व्याकरण,

हाथ कल्प और पाँव छन्द हैं। (पाणिनीय शिक्षा ४१-४२)

इस प्रकार 'वेद' मानवता की एक प्रतिभ भावाभि-व्यक्ति और 'शिक्षा' उसका एक महत्वपूर्ण अंग। शिक्षा को वेद की नासिका कहा जाता है। यह शुद्ध उच्चारण (ध्वनि) का शास्त्र है। एक अनुश्रुति के अनुसार योग-वेत्ता जैगीषव्य के शिष्य बाभ्रव्य इस शास्त्र के प्रवर्तक थे। ऋग्वेद के क्रमपाठ की व्यवस्था भी इन्होंने की थी। महाभारत (शान्तिपर्व ३४२, १०४) के अनुसार आचार्य गालव ने एक शिक्षा शास्त्रीय ग्रन्थ का निर्माण किया था। इसका उल्लेख 'अष्टाध्यायी' में भी पाया जाता है। वास्तव में पांचाल बाभ्रव्य का ही दूसरा नाम गालव था। कलान्तर में 'भारद्वाज शिक्षा' चारायणी शिक्षा तथा 'पाणिनीय शिक्षा, तक हम शिक्षा के व्यवस्थित स्वरूप से परिचित हो गये थे। ऐसी अनेक विद्वानों की मान्यता है। शिक्षा के अपने इस प्राचीन स्वरूप को कुछ और स्पष्ट करने के लिए हम कह सकते हैं कि ध्वनि की आरोह-अवरोह, उच्चारण की शुद्धता उच्चरित ध्वनि की कालावधि का परिसीमन शिक्षा शास्त्र के मुख्य विषय हैं। इसके वर्ण विषयों में वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान ही प्रमुख हैं।

वर्ण अर्थात् 'अ' से लेकर 'ह' तक कण्ठ, तालु, मूर्धा (मूर्ध्दा), दन्त और ओष्ठ से उच्चरित अक्षर।

स्वर अर्थात् उदात्त अनुदात्त और स्वरित की स्पष्ट भेद सहित उच्चारण ध्वनियाँ।

मात्रा अर्थात् स्वरों को भाषा के योग्य बनाने

में सहायक आरोहावरो ही सहायिकाएँ यथा ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत ।

बल (प्रयत्न) अर्थात् जिसके आधार पर भाषा की प्रभावावृत्ति स्पष्ट होती है इसके भेद हैं अल्पप्राण और महाप्राण ।

साम (श्रुतिमधुर) अर्थात् कानों में मधुर लगने वाला पाठ । सन्तान अर्थात् सन्धिर्घा ।

शिक्षा के इन छः विषयों के ज्ञान से ही भाषा का शुद्ध उच्चारण और अर्थ बोध सम्भव है । भाषा भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम है और 'भाव' ही इस जागतिक प्रपंच का मूलाधार है । इस प्रकार शिक्षा के माध्यम से हम अपने अन्नमय कोष से आनन्दमय कोष तक की यात्रा सफलता पूर्वक करते चले जाते हैं ।

उपर्युक्त वेदाङ्गों के सहारे हम जिस तत्व को प्राप्त कर स्वयं तुष्ट हुए हैं और समग्र मानवता को आर्य बनाने की उदात्त संकल्पना को साकार स्वरूप प्रदान करते हुए 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का भाव प्रवण उद्घोष करने में सफल रहे हैं, उसकी वास्तविक प्रतिमा आज विखण्डित ही नहीं विदीर्ण हो रही है । तब और अधिक दुःख होता है, जब विद्वत्ता का चोगा पहने हुए अनेक मान्यता-प्राप्त लोग निराधार तर्कों के धुँवाधार प्रचार से मूल तत्व को अनेक कृत्रिम रङ्गों से रंगते हुए अपने उथले महत्व को ही बढ़ाने में लगे रहते हैं । इसी का परिणाम है कि आज 'धर्म और विज्ञान', 'साहित्य और कला' तथा 'सभ्यता और संस्कृति' जैसे व्यापक शब्द अपनी अर्थवत्ता खो चुके हैं । मानव की इस अंधी दौड़ को दिशा देने का गुस्तर दायित्व आज हमारे देश पर और आ पड़ा है, जिससे दो-चार होना हमारे पुरुषार्थ के लिए एक चुनौती है । वास्तव में इस अमर संस्कृति ने इस प्रकार की चुनौतियाँ अनेक युगों में सहर्ष स्वीकारी हैं और तभी उसने बड़े सहज ढंग से उद्भव, पालन और प्रलय की कहानी को लोरियों से लेकर जागरण-गीतों तक में सुना और सुनाया है ।

स्वातन्त्र्योत्तर युगीन भारत में जब प्रगति और विकास की चर्चा छिड़ी, तो केवल उद्योग और उत्पादन की सीमाओं में ही उसकी ध्वनियाँ टकराती रहीं । उत्पादन और उद्योग किसके लिए ? यदि इस पर हमारे नेतृत्व ने सोचा होता, तो कदाचित् आज विश्व-पटल पर कोई दूसरा ही भारत चमक रहा होता और इससे भी बड़ी विडम्बना यह रही कि जो कुछ सोचा भी गया वह पश्चिमी परिवेश में । इसके साथ ही हमारे राजनेताओं ने अपने विदेशी पूर्व शासकों से बड़ी ईमानदारी के साथ शासन-सत्ता को सुदृढ़ बनाये रखने के गुर तो सीखे, किन्तु राष्ट्रीय अस्मिता एवं चारित्र्य को स्वाभिमान-सम्पन्न और प्रखर बनाने की दिशा में सीखने की आवश्यकता न समझी । बड़ी हाय-तोबा के बाद शिक्षा-नीति पर अपनी आख्या (रिपोर्ट) देने के लिए प्रथम आयोग सन् १९४८ में बैठाया गया । उसकी आख्या फाइलों में दबी ही रही कि द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ आयोग ऐसे बिठाये जाते रहे जैसे यथाशीघ्र सम्पूर्ण विधि-निषेधों से युक्त संस्कारी शिक्षा का व्यवहारिक स्वरूप सर्वदूर प्रसारित कर दिया जायेगा । इन आयोगों की आख्याओं को पढ़कर एक बात और खलने वाली प्रतीत होती है कि डा० राधाकृष्णन के अतिरिक्त प्रायः सभी ने भारतीय संस्कृति और परम्पराओं की अक्षुण्णता की ओर विशेष ध्यान न देकर प्रायः अर्थकारी विद्या पर ही बल दिया है । साथ ही ऐसी सोच के साथ विषय-प्रवर्तन किया गया है कि मानों अपना यह कालजयी समाज और अमरीती ख़ाया हुआ राष्ट्र अभी-अभी जन्मा और जागा हो । दुर्भाग्य से हमारे राजनेता भी अंग्रेजों के समान यही कहते रहे कि 'राष्ट्र बन रहा है ।' कदाचित् इसीलिए हमारी प्रारम्भिक शिक्षा से उच्च शिक्षा तक अपना मूल आधार छोड़ती चली गयी । पाठ्यक्रम से लेकर भाषा और इतिहास तक की हमने उपेक्षा की । इसके कारण एक जो सबसे बड़ा दोष उभरा वह यह कि समग्र राष्ट्र की संचेतना पिछलगूपन का शिकार होकर राजनीति के आस-पास ही केन्द्रित हो गयी । इसी विकृति का ताण्डव आज सर्वत्र दिखाई दे रहा है ।

किन्तु इन सब आशा-निराशा की कराल पतों में भी हमारी अक्षय भावना मुस्कराती रही। इसी अजेय भावना के आधार पर बिना किसी राज्याश्रय अथवा पूँजीवादी सहारे के सन् १९५२ में कतिपय निरपेक्ष किन्तु कालजयी युवकों ने शिक्षा-शिक्षा की ओर ध्यान दिया। आज उमी प्रेरणा और कर्तव्य का परिणाम है कि सम्पूर्ण देश में फैले हुए प्रारम्भिक, पूर्व माध्यमिक और उच्च शिक्षा के विद्या-मन्दिर जहाँ सङ्कल्पों के दीप जलते हैं, उत्साह के गीत चलते हैं और योजना के स्वप्न पलते हैं। कालान्तर में विद्या भारती संस्था इन संस्कार केन्द्रों की घुरी बनी।

यद्यपि इस विशाल और समस्या-विगलित देश के लिए यह सिन्धु में बिन्दु का प्रयास था फिर भी निराश समाज ने इसे सिर आँखों पर लिया, किन्तु शनैः-शनैः योजना के पुरस्कर्ता आयु और शारीरिक शैथिल्य के कारण अपनी तूफानी गति को यथावत् बनाये रखने में समर्थ न रह सके। परिणाम स्वरूप इस को भी परिस्थितियों की छाया छूने लगी। यह स्वाभाविक है कि कोई भी व्यवस्था जब परम्परा बनने लगती है, तो उसकी गति को यथावत् बनाये रखने के लिए योजनाओं को परिस्थिति और पर्यावरण के थपेड़ों के प्रति पहले से भी अधिक सचेत रहना पड़ता है। अन्यथा परम्परा पहले रुढ़ि बनती है और यह सत्य है कि रुढ़ि में तुलनात्मक दृष्टि से बुराइयाँ ही अधिक होती हैं। फिर भी आज शिक्षा के गौर सरकारी प्रयासों में उपर्युक्त व्यवस्था ही सर्वोपरि है। यह निष्पक्ष रूप में स्वीकार करना पड़ता है कि यदि इस व्यवस्था का अस्तित्व आज के समाज में न होता तो सरकारी पीनक में ऊँघ रहे समग्र तन्त्र की नाक के नीचे हमारी भारतीयता को ईसाइयत सरे आम विश्व के बाजार में नीलाम कर देती।

इधर राजीव मन्त्रिमण्डल के पदारुह होने पर कुछ नया करने के जोश में शिक्षा जैसे उपेक्षित विषय पर भी ध्यान दिया गया। और बड़ी शीघ्रता में सभी समस्याओं का समाधान भी ढूँढ लिया गया। नयी

शिक्षा-नीति की पिपिहरी सरकारी हल्कों में गूँजे लगी। गोष्ठियाँ, परिसंवाद और कार्यशालाएँ गुलजार हो उठी। नयी शिक्षा के साथ नवोदय विद्यालय भी खुल चले, किन्तु इन सबको अन्जाम देने का बोझ उन्हीं कसेली सूरत वाले हतमानोवृत्ति के रुढ़िवादी अधिकारियों पर ही पड़ा। कदाचित् इसीलिए प्रारम्भ से पूर्व ही परिणाम की कुशङ्का से समाज सशङ्कित हो उठा है। सरकार की भी एक पुरानी मजबूरी है कि वह सरकार से अधिक पार्टी है और पार्टी से अधिक परिवार। खैर इस मनोयथा को बरबस दबाकर हम आगे बढ़े कतिपय व्यवहारिक मुझावों की ओर, जिनका मैंने वादा बिल्कुल प्रारम्भ में ही किया है।

मेरे विचार से शिक्षा मानवत्व की अनिवार्यता है और विद्यालय उस अनिवार्यता का मूल आधार। परिस्थितियाँ परिवेश और काल कोई भी रहा हो अथवा हो, उसमें शिक्षा-केन्द्रों की महत्ता कभी भी नकारी नहीं जा सकती है। अतः इसी शिक्षा केन्द्र अथवा विद्यालय की आदर्श परिकल्पना पर विचार करते हुए हम पाते हैं कि इसके प्रमुख रूप से तीन महत्वपूर्ण अंग हैं—पर्यावरण, परिवेश और प्राण।

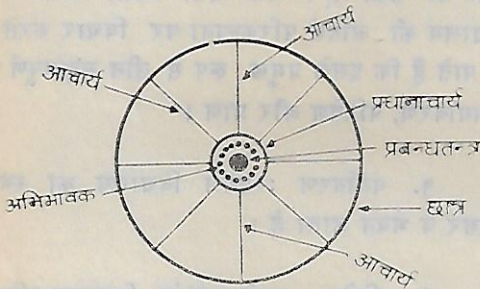
१. पर्यावरण :—इसमें विद्यालय का स्थान, परिसर व भवन आता है।

२. परिवेश :—इसके अन्तर्गत विद्यालय-परिवार का वेश व्यवस्था और सज्जा रखी जा सकती है।

३. प्राण :—इस अंग की सीमा में ज्ञान (शक्ति) शील तथा दृष्टिकोण माना जा सकता है। अर्थात् आचार्य और छात्र का समन्वित रूप से शीलवान रहकर ज्ञान की उपासना करते हुए राष्ट्रहितवादी दृष्टिकोण का परिपोषण।

उपर्युक्त इन तीनों अंगों के समुचित संचालन एवं प्रभावी परिणाम हेतु जिस विवेकपूर्ण नियमन की आवश्यकता होती है उसकी अपेक्षा हम समाज के

चिन्तकों से करते हैं। इन चिन्तकों का कार्य अपने सुदीर्घ अनुभव एवं गम्भीर अध्ययन के माध्यम से परिणामवती शिक्षा की प्रतिष्ठा कराना होता है। वास्तव में यदि देश में एक ऐसे अनुभवी चिन्तकों की शिक्षा अकादमी बना दी जाय तो उसका परिणाम अत्यन्त प्रभावी और कालजयी हो सकता है। फिलहाल इस अकादमी की चर्चा यहीं छोड़कर वर्तमान समय में चल रहे प्रबन्ध तन्त्रीय व्यवस्थाओं वाले विद्यालय की गुणवत्ता विकसित करने हेतु विचार कर लें। इस समय हमारे देश में जो शिक्षा-संस्थाएँ चल रही हैं, उनमें प्रायः प्रबन्ध-तन्त्र, अभिभावक, प्रधानाचार्य और आचार्य की ही प्रमुख भूमिका रहती है। इस चतुर्वर्गीय व्यवस्था के कार्य-कौशल का परिणाम संस्कारित छात्रों के माध्यम से सीधा समाज को प्राप्त होता है। और सन्तुलन यदि बिगड़ा तो परिणाम बड़ा पीड़ाकारक होता है। इस स्वरूप को स्पष्ट करने के लिये हम निम्नांकित गतिचक्र को देख सकते हैं।



प्रबन्ध-तन्त्र वह धुरी है, जिसके आधार पर सम्पूर्ण पहिये की स्थिति, गति और अस्तित्व निर्भर करता है। अभिभावक उस धुरी और प्रधानाचार्य के चक्के (बेरिंग) के मध्य स्नेह-सम्बन्ध, सारस्य एवं प्राण-शक्ति आपूर्ति का उत्तरदायी है। प्रधानाचार्य के चक्के (बेरिंग) से आचार्य रूपी सभी अरें (तीलियाँ) दृढ़ता पूर्वक अडिग रूप से जुड़ी रहकर छात्र रूपी चक्र परिधि को समाज रूपी राजमार्ग पर सही और सुव्यवस्थित चिह्न बनाते हुये चला सकते हैं, जो आगे आने वाली पीढ़ी को भी दिशा दे सके। स्वाभाविक है यदि धुरी जंग खायी या निर्बल होगी तो पहिया चलाते

ही बैठ जायेगा। बेरिंग के छरें यदि सूखे और कटे-फटे हुये तो पहिए की गति हाथ ठेले से भी कम रहेगी, यदि बेरिंग से तीली की पकड़ ढीली, असंयत, अविश्वसनीय और कम-अधिक रही तो पहिया ढचर-पचर चलेगा। अतः हम यदि इस छात्र रूपी सामाजिक गतिचक्र को प्रभावी और सुन्दर ढंग से चलाना चाहते हैं तो हमको उपर्युक्त सभी का सामंजस्य पूर्ण संतुलन बनाना ही होगा। एक दूसरे को दोष देने से काम नहीं चलेगा। वास्तव में यदि हम अपने को छोड़कर दूसरे की चिन्ता करने का स्वभाव बना लें तो समस्या ही दूर हो जाए। दुर्भाग्य से आज यह नहीं हो रहा है। कदाचित् इसीलिये आज समाज का हर व्यक्ति आशंकाओं के घेरे में साँस लेते हुये अपनी जिन्दगी काट रहा है इसके अतिरिक्त इन आधुनिक विद्यालयों की दशा सुधारने हेतु कतिपय और लोभ सुझाव देने का संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। यथा-

१. विद्यालय की संख्या अधिक हो किन्तु विद्यालय में छात्र उतने ही हों, जिन्हें कम से कम चेहरे से पहचान अवश्य लें अर्थात् अधिकतम ५००।

२. अध्यापक और विार्थी का अनुपात १:२० से अधिक न हो।

३. प्रारम्भिक शिक्षा के पूरा करते ही छात्र का मनोवैज्ञानिक रूप से परीक्षण करके उसे माध्यमिक शिक्षा हेतु बढ़ाया जाय।

४. शिक्षा में सिद्धान्त एवं व्यवहार का समन्वय हो।

५. श्रम के प्रति निष्ठा जगाने वाला पाठ्यक्रम बनाया जाये।

६. पाठ्यक्रम में गहराई अधिक हो विस्तार कम।

७. आचार्य के योग-क्षेम की चिन्ता, व्यवस्था करें और यह चिन्ता बड़ी गरिमापूर्ण हो। बेचारगी से भरा शिक्षक स्वाभिमानी छात्र नहीं तैयार कर सकता।

८. अध्यापक-चयन बड़ी गहराई से हो और अध्यापक को समाज का सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति माना जाये।

९. विद्यालयों में आचार्य कक्ष प्रत्येक आचार्य के लिये स्वतन्त्र हो ताकि वह अपने खाली समय का सदुपयोग अध्ययन, चिन्तन व छात्र के कार्य-मूल्यांकन हेतु कर सके।

इस प्रकार यदि हम आज भी सचेत होकर शिक्षा के सही अर्थ को समझते हुये अपनी इन्हीं व्यवस्थाओं को विवेक पूर्वक नियोजित कर लें तो अभी भी अंधकार से भयभीत होने का कोई कारण नहीं दिखता।

क्रांतदर्शी डाक्टर हेडगेवार

चन्द्रपाल सिंह

आज-कल हमारे देश में लगभग दो दर्जन महापुरुषों की जन्म-शताब्दियाँ मनाई जा रही हैं, जिनमें अधिकतर देश के स्वातन्त्र्य-युद्ध से सम्बन्धित राजनेता हैं, कुछ साहित्यिक हैं और कुछ वैज्ञानिक। कुछ को केन्द्रीय सरकार मना रही है, कुछ को प्रान्तीय सरकारों और कुछ को सार्वजनिक संगठन, जिनको सरकारी संरक्षण प्राप्त है। जैसे पं० जवाहरलाल नेहरू अथवा मौलाना आजाद की जन्म-शताब्दी। उनको दूरदर्शन तो प्रदर्शित करता ही है अन्य संस्थाएँ भी सरकार को प्रसन्न करने हेतु तत्सम्बन्धी आयोजन करती हैं, उनका सभी माध्यमों से प्रचार किया जा रहा है। परन्तु आश्चर्य है कि जिस महापुरुष ने देश की एकता, अखण्डता और स्वतन्त्रता के लिए अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया, जिसने राष्ट्रियता की शुद्ध अवधारणा को निरूपित किया, जिसने लाखों तरुणों को मातृभूमि पर बलिदान होने की प्रेरणा दी, जिसने भारतीय संस्कृति के प्रति गौरव की भावना लोगों के हृदयों में जागृत की उस महामानव की जन्म शताब्दी की ओर से क्षुद्र राजनीति से प्रेरित हमारी सरकार ने तो आँखें मूँद ही लीं, हमारे पत्रकारों, लेखकों और कवियों ने भी उसे जितना महत्व देना चाहिये था, नहीं दिया।

कौन है वह महामानव ? वह है राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, (जिसे आज सारा देश ही नहीं सारा संसार जानता है) का जन्म-दाता डा० केशवराव बलिराम हेडगेवार, जो सदैव प्रसिद्धि-पराङ्मुख रहे। वी० बी० सी० के अनुसार 'संसार के सबसे बड़े स्वयं सेवी संगठन' के जनक थे वह, परन्तु फिर भी आत्म-प्रचार से वे सदैव कोसों दूर रहे। वह संगठन भी कैसा ? सर्वथा मौलिक, अनूठा किसी अन्य संगठन की नकल नहीं है वह। उसका तन्त्र उनके स्वयं के चिन्तन की उपज था। वे जन्मजात देशभक्त थे। जब वे प्राथमिक पाठशाला के छात्र थे, मुश्किल से दस वर्ष के, जिस आयु में बच्चों को मिठाई की ललक होना स्वाभाविक होता है, उन्होंने अपने विद्यालय में महारानी विकटोरिया के राज्यकाल के स्वर्णजयन्ती समारोह के अवसर पर बाँटी गई मिठाई के दोने को यह कहकर कूड़े के ढेर पर फेंक दिया था कि 'विदेशी रानी के राज्य पर हम क्यों हर्ष मनाएँ ? जब और कुछ बड़े हुए तो पास के मराठा किले पर अंग्रेजी झण्डा 'यूनिशन जैक' को फहरते देखकर अपने साथियों से सलाह की कि क्यों न पास के बाड़े में से सुरंग खोदकर उस किले में पहुँचा जाय और उस विदेशी झण्डे को उतार कर उसके स्थान पर अपना भारतीय गैरिक ध्वज, जो कुछ दिन पूर्व स्वतन्त्र मराठा राज्य का ध्वज था, स्थापित कर दिया जाय ? सबने मिलकर सुरंग खोदना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु शीघ्र ही गुरुजनों को पता चल गया और इस बचकानी योजना को समाप्त कर दिया गया। पर इससे उनके नेतृत्व-गुण, संकल्प-शक्ति और देश-प्रेम का तो पता चलता ही है। जब वे किशोर हुए और कक्षा १० के छात्र थे तो उनके विद्यालय में अंग्रेज इंस्पेक्टर आया। उन दिनों देश में बंगाल में विभाजन के परिणाम स्वरूप आन्दोलन चल रहा था और 'वन्देमातरम्' बोलना राज-द्रोह माना जाता था। केशव ने अपने साथियों को तैयार कर लिया कि इंस्पेक्टर जिस कक्षा में भी जाय तो वहाँ

के सभी छात्र एक साथ वन्देमातरम् बोलें। यही हुआ। इस्पैक्टर बड़ा नाराज हुआ। पता लगाने की चेष्टा की गई कि इस पढ्यन्त्र का नेता कौन है। परन्तु किसी ने नहीं बताया। स्कूल बन्द कर दिया गया। जब केशव ने देखा कि उनके कारण सबको परेशान किया जा रहा है तो उन्होंने स्वीकार कर लिया कि उन्होंने ही उस प्रदर्शन का नेतृत्व किया था। उनसे क्षमा मांगने को कहा गया। परन्तु क्षमा वे कैसे माँग सकते थे? परिणामतः विद्यालय से निकाल दिये गये। एक दूसरे राष्ट्रीय विद्यालय से हाई स्कूल की परीक्षा दी और उत्तीर्ण हो गये।

केशव राव नागपुर के बहुत ही निर्धन ब्राह्मण परिवार के बालक थे। उनका जन्म १८८६ की चैत सुदी १ को हुआ था। अभी वे शिशु थे कि माता-पिता दोनों का ही प्लेग से देहान्त हो गया। बड़े भाई जी पढिताई करते थे, उनके अभिभावक हुए। वे चाहते थे कि केशव कोई नौकरी कर ले और विवाह करके गृहस्थी बसाये। पर यहाँ तो और ही लगन लगी थी। बंगाल के क्रान्तिकारी आन्दोलन के विषय में सुन चुके थे। कलकत्ते जाकर मेडिकल कालिज में प्रवेश लेकर क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आने का विचार किया। बड़े भाई पढ़ाई का भार उठाने में समर्थ नहीं थे। परन्तु केशव कुछ बड़े नेताओं की सहायता से तथा कुछ ट्यूशन आदि करके मेडिकल कालिज में प्रवेश पाने तथा वहाँ का कोर्स पूरा करने में सफल हुए। वहाँ पढ़ते हुए उन्होंने क्रान्तिकारी आन्दोलन के नेताओं से सम्पर्क किया, उनकी गुप्त संस्था अनुशीलन-समिति के सदस्य बने तथा उनके विश्वास-पात्र सहभागी बने। मेडिकल कोर्स पूरा करने पर उनके प्रिंसिपल उनको एक अच्छी नौकरी पर रंगून भेजना चाहते थे; परन्तु उन्होंने उनसे स्पष्ट कह दिया कि वे नौकरी नहीं करेंगे वरन् देश-सेवा में ही अपना सारा जीवन लगायेंगे। नागपुर लौटने पर भाई ने बहुत चाहा कि केशव नौकरी नहीं करना चाहता, तो प्रेक्टिस ही करे। परन्तु उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि न उन्हें विवाह करना है और न धन कमाना, उन्हें तो देश की आजादी की लड़ाई में भाग लेना है। नागपुर में रहते हुए भी वे प्रथम विश्व-युद्ध के समय के क्रान्तिकारी आन्दोलन के सम्पर्क में रहे। साथ ही लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में संचालित होमरूल आन्दोलन में भाग लेते रहे। १९२० में लोकमान्य के देहावसान के पश्चात् महात्मा गान्धी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन में भी उन्होंने सक्रिय भाग लिया और जेल यात्रा भी की। विदर्भ प्रान्तीय कांग्रेस के वे महासचिव भी रहे। परन्तु उन्होंने देखा कि जब तक देश का बहुजन समाज अर्थात् हिन्दू जागृत एवं संगठित नहीं होगा, तब तक विदेशी चंगुल से छुटकारा पाना कठिन होगा और यदि हुआ भी तो वह आजादी स्थायी न होगी। गान्धी जी के आन्दोलन की सबसे बड़ी कमजोरी थी कि वे कहते थे कि हिन्दू मुसलिम एकता के बिना स्वराज्य सम्भव नहीं। इसीलिए उन्होंने मुसलमानों के 'खिलाफत' आन्दोलन में उनका साथ दिया परन्तु जब तुर्की में 'कमालपाशा' के नेतृत्व में प्रजातन्त्र स्थापित हुआ और वहाँ के मुल्तान को जो संसार के मुसलमानों का खलीफा था, गद्दी से उतार दिया गया तो भारत के मुसलमान बड़े क्षुब्ध हुए और उन्होंने मलाबार में हिन्दुओं के विरुद्ध दंगे प्रारम्भ कर मन्दिरों को तोड़ना हिन्दू घरों को लूटना और असहाय हिन्दुओं का धर्मान्तरण करना प्रारम्भ कर दिया। मुसलमानों की इस मानसिकता ने केशव-राव को यह सोचने को बाध्य किया कि जब तक कि इस देश का बहुसंख्यक समुदाय हिन्दू संगठित नहीं होता, उसमें राष्ट्रीयता का भाव जागृत नहीं होता तब तक न क्रान्तिकारी आन्दोलन सफल हो सकता है, न कोई अहिंसक आन्दोलन और न हिन्दू-मुस्लिम एकता ही कार्यान्वित हो सकती है; क्योंकि कमजोर हिन्दू का साथ सबल और संगठित मुसलमान कभी नहीं देगा। दूसरा निष्कर्ष उनका था कि भारत प्राचीन राष्ट्र है, जिसका आधार उसकी प्राचीन संस्कृति है। मजहब या सम्प्रदाय विभिन्न हो सकते हैं, परन्तु भारत की संस्कृति एक है, उनके महापुरुष सभी भारतीयों के लिए श्रद्धा के पात्र हैं। मुसलमान ईसाई आदि विदेशी सम्प्रदायों के अनुयायी तभी सच्चे अर्थ में भारतीय हो सकते हैं, जब वे भारतीय संस्कृति और महापुरुषों के प्रति श्रद्धावान् हों। उनके अनुसार

हिन्दू का अर्थ किसी सम्प्रदाय विशेष का अनुयायी न होकर इस देश और यहाँ की संस्कृति से जो प्रेम करता है वही हिन्दू है। हिन्दू स्वभावतः उदार दृष्टिकोण का तथा सम्प्रदाय-निरपेक्ष Secular होता है। अत एव देश की स्वतन्त्रता के लिये हिन्दुओं को प्रखर राष्ट्रीय भावना से युक्त, संगठित, अनुशासित तथा चरित्र-सम्पन्न होने की आवश्यकता है। ये गुण केवल भाषणों और आन्दोलनात्मक कार्यक्रमों से नहीं आते। इनके लिए बाल्यावस्था से ही उचित संस्कार देने की आवश्यकता है। इसीलिये उन्होंने प्रतिदिन एक घण्टे एक स्थान पर एकत्र होकर नियमित रूप से लगातार अनुशासनवद्ध होकर कुछ शारीरिक एवं बौद्धिक कार्यक्रम करने की परिपाटी चलाई। इस प्रकार १९२५ की विजयादशमी को उन्होंने नागपुर में कुछ थोड़े से किशोरों को लेकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की नींव डाली। इस पद्धति से उन्होंने सहस्रों जीवनव्रती कार्यकर्ता तैयार किये, जो आज समाज के विभिन्न क्षेत्रों में जैसे शिक्षा, धर्म, वनवासी-कल्याण, मजदूर-किसान, आदि में कार्य कर सिद्धान्तों पर आधारित परिवर्तन करने का प्रस्ताव कर रहे हैं। आज वोटों की राजनीति ने जो समाज में स्वार्थपूर्ण विखण्डन और दुर्भाव पैदा कर दिया है, उससे उबरने के लिये समाजके हितैषी यदि किसी ओर आशा भरी दृष्टि से देखते हैं तो वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ही है। आज की सारी राजनैतिक एवं सामाजिक समस्याओं का निदान डा० हेडगेवार द्वारा प्रतिपादित शुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण ही है, जिसके अनुसार हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व है।

डा० हेडगेवार का शरीर ६ फुट लम्बा और पुष्ट था। परन्तु संघ के कार्य-प्रसार में रात-दिन लगे रहने के कारण धीरे-धीरे उनका शरीर खोखला हो गया। अपने १५ वर्ष के कार्यकाल में, जिसमें वे संघ के सर संघचालक के सर्वोच्च पद पर आसीन रहे, देश के लगभग सभी प्रान्तों में उन्होंने संघ की ज्योति प्रज्वलित कर दी थी। जून १९४० में अपना उत्तरदायित्व श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर उपाध्यक्ष गुरुजी को सौंपकर ५१ वर्ष की अवस्था में हमसे सदा के लिए विदा हो गये।

अपने चिन्तन एवं कार्य से राष्ट्रीयता का एक नवीन पथ आलोकित करने वाले इस युगचेता क्रान्त-दर्शी महापुरुष के हम भारतीय सदैव ऋणी रहेंगे।



“राष्ट्र केवल भौतिक निकाय नहीं हुआ करता। देश में रहने वाले लोगों के अन्तःकरण में अपनी भूमि के प्रति असीम श्रद्धा की भावना का होना राष्ट्रीयता की पहला आवश्यकता है। —पं० दीनदयाल उपाध्याय



नव-वर्ष

दीपक राजे, आचार्य

आता है प्रतिवर्ष नव वर्ष
ईसवी सन् पर होता है हर्ष
क्या यही है भारतवर्ष
पूर्व सन्ध्या पर होते हैं रंगारंग आयोजन
कई दिन पूर्व से बँटते हैं नव वर्ष अभिनंदन
इकतिस दिसम्बर की रात,
सजती है शिव की बारात
मध्य रात्रि से बज उठते हैं गाजे-बाजे
शिरक उठती है जवानी मद-मस्त होकर
वायुमण्डल गूँज उठता है पटाकों के घमाकों से
तब रह-रहकर मुझे आता है क्रोध
ऐसे समय ही प्रायः होता है आत्म-बोध
अक्षय है अपनी संस्कृति
फिर उसमें ऐसी क्यों विकृति
तभी अन्तरात्मा से निकली एक चीख
'क्यों अपनी अक्षय-निधि ठुकराकर माँगते हो भीख।'
मेरी अपनी आज तक वे पहचानी आवाज
सतत् प्रतिध्वनित हो रही है
कि हे देश की संस्कृति के ठेकेदार
त्यागो कर्म-हीन विचार,
करो आचार।
उस दिन से गुन लिया है
कि, कर्मण्येवाधिकारस्ते.....



संत - चरित्र

भक्ति के भाव जगत् में निरन्तर विचरण करने वाले

सन्त प्रवर देवादास जी महाराज

-जे० पी० श्रीवास्तव
(आचार्य)

बिठूर (ब्रह्मावर्त) की पावन भूमि पर अस्थायी निवास कर रहे सन्तहृदय स्वामी देवादास जी का मांगलिक नाम कानपुर महानगर के शतशः सहस्रशः आस्तिकों के लिये एक वन्दनीय नाम है। जिन्हें महाराज श्री के प्रवचन सुनने का सौभाग्य मिला है वे उनके भक्तिमय जीवन से यत्किञ्च सुप्रकाशित अवश्य हुए होंगे—कोई-कोई कम और कोई-कोई अधिक—सब अपनी-अपनी पात्रता के अनुसार। जब महाराज श्री बोलते हैं तो भक्ति की मन्दाकिनी बहने लगती है और श्रोता उसमें डूबकर भगवदानन्द की जो अनुभूति करते हैं वह केवल अनुभूति की वस्तु है, गुँगे की मिठाई है और इसीलिए वह शब्दातीत है। जैसे सूर्यदेव का उदय हो और अन्धकार न मिटे—यह असम्भव है ठीक उसी प्रकार महाराज जी के प्रवचनों को सुनने से भक्ति का अंकुरण न हो यह हो ही नहीं सकता।

महाराज जी को जंगम तीर्थराज कहना अत्युक्ति न होगी। उनके मुखश्री से भक्ति, वैराग्य और ज्ञान की त्रिवेणी झरती है। जब महाराज जी बोलते हैं और उपास्य भगवान् श्यामसुन्दर अथवा भगवान् श्रीराम की लीलाओं का विश्लेषण करते हैं तब श्रोता कभी हिमालय जैसी उदात्त ऊँचाइयों पर पहुँचकर धन्य बन जाते हैं, कभी अश्रुविगलित होकर भाव-समाधि जैसी स्थिति में आ जाते हैं, कभी लीलाधर की लीलाओं को सुनकर हँसते-मुसकराते हैं और कभी महाराज श्री के साथ पूर्ण रागात्मक तादात्म्य स्थापित करते हुए

ब्रह्मानन्द की अनुभूति करने लगते हैं। महाराज श्री के प्रवचन रोचक भी होते हैं, भावप्रवण भी, कथा-प्रसंगों की विविधता से अलंकृत भी और सूक्तियों से मण्डित भी। महाराजजी का ज्ञान वेदास्तियों का नीरस ज्ञान नहीं है! वह है, भक्ति की भाव-सरसता से सम्पृक्त भगवद्विषयक व्यापक शास्त्रीय ज्ञान जो श्रोताओं को अवाक कर देता है। उनका वैराग्य श्रोताओं में वैराग्य का स्फुरण करता है। कारण एक ही है कि वे केवल वाणी से नहीं बोलते अपनी वाणी में अपने जीवन का रस घोल देते हैं, हृदय उँडेल देते हैं। इसीलिए उनमें शुकदेवजी, याज्ञवल्क्यजी और तुलसीदास जी का प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है। सर्वाङ्गशुचिता का प्रतिफलन महाराज श्री में स्पष्ट रूप से झलकता रहता है।

आज जब कुछ बड़े प्रसिद्ध प्रवचनकार अपने प्रवचन बेचकर वाणी का व्यापार कर रहे हैं तो सन्त देवादास जी अपने प्रवचनों को मात्र अपने ठाकुर जी की पूजा मानकर दक्षिणा और चढ़ाती से पूर्णतया विरक्त रहते हैं। उन्हें सोने, चाँदी अथवा कागज की मुद्राओं से क्या सरोकार? वे तो राजाओं के भी राजा हैं क्योंकि कबीर के शब्दों में—

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिये, वे साहन के साह ॥

इसीलिए तो हजारों मस्तक उनके चरणों पर

अनायास झुक जाते हैं श्रद्धाप्लावित होकर ठीक उसी प्रकार जैसे पानी से भरे बादल स्वयमेव पृथ्वी की ओर झुक जाते हैं ।

गाँधी जी के प्यारे भजन 'वैष्णव जन तो तैंगे कहिए जे पीर पराई जाणै रे' में जिन वैष्णवी गुणों की विवेचना की गई है, महाराज श्री उन सब के जीवन्त स्वरूप हैं । क्रोध उन्हें स्पर्श नहीं कर पाता, वे सरल इतने हैं कि आवालवृद्ध नरनारी उनके पास तक निस्संकोच पहुँच सकते हैं और अपनेपन का अनुभव कर सकते हैं । कभी-कभी तो मुझे ऐसा लगने लगता है कि, उनकी अतिशय सरलता के कारण कुछ लोग उनकी उपेक्षा भी करने लगते हैं, पर उनका प्रेमसमय हृदय इस उपेक्षा को भी उसी सद्भाव से शिरोधार्य करता है जिस प्रकार अपने प्रति समर्पित श्रद्धा और आदर भाव को । ठीक ही तो है शिवत्व के प्रसारण में लगे हुए भगवान् शंकर ही तो विषपान कर सकते हैं । महाराज जी को दीनों की उपेक्षा सालती है । वे बहुधा कहते हैं कि ठाकुर जी को छुपन प्रकार के व्यंजन समर्पित करो—अच्छा है, पर ध्यान रहे कि यदि तुम्हारे पड़ोस का कोई निर्धन व्यक्ति अथवा द्वार पर आया हुआ याचक भूख से दम तोड़ दे तो तुम्हारे व्यंजन ठाकुर जी को स्वीकार्य नहीं होंगे । महाराज श्री को नास्तिक सर्वण से आस्तिक शूद्र कहीं अधिक प्रिय है ।

ब्रजरज, गंगाजल, गोमाता, तुलसीदल के प्रति महाराज जी के हृदय में भक्तिमय प्रेम है । इन्हीं से उन्हें वह शारीरिक बल प्राप्त होता है कि वे अत्यन्त अल्पाहारी होकर भी आश्चर्य चकित करने वाला बौद्धिक श्रम करते हैं । बिना क्षणमात्र के आसन बदले, जल आदि की आवश्यकता का तनिक भी अनुभव न करते हुए वे प्रसाद, माधुर्य और ओज के तीनों श्रेष्ठतम स्वरूपों से मण्डित वाणी में घण्टों बोल सकते हैं । अनेक वास्थावान हृदयों को इसमें देवी चमत्कार के दर्शन हांते हैं ।

भगवान् भाव के भूखे हैं वस्तु के नहीं । महाराज

श्री इस बात को अनेक कथा प्रसंगों के माध्यम से केवल बोलते ही नहीं हैं वरन् अपनी क्रिया-सिद्धि से उसे चरितार्थ भी करते हैं । केवल दो प्रसंग सुना रहा हूँ । मानस संस्था के छठवें वार्षिक उत्सव के उपलक्ष्य में जब महाराज जी श्री मद्भागवत सुना रहे थे तो मैंने प्रार्थना की किसी दिन मेरे निवास पर भोजन करने की कृपा कीजिए । महाराज जी ने कृपा पूर्वक एक दिन निश्चित कर दिया । जब निर्धारित बेला आई और मैंने रिक्शा से लाने का प्रस्ताव किया तो एक सज्जन ने मुझसे कहा, कि गाड़ी का प्रबन्ध करना चाहिए था । मैं सकुचा गया लेकिन तभी महाराज जी बोल पड़े कि मैं आपके यहाँ पैदल ही चलूँगा । यह अकिंचन तो सुनते ही धन्य हो गया । इसी प्रकार एक बार विश्व हिन्दू परिषद द्वारा आयोजित रामनवमी महोत्सव के लिए महाराज जी को सादर आमन्त्रित करने गया और उनसे अपनी कार की व्यवस्था कर पाने सम्बन्धी विवशता का निवेदन किया तो महाराज श्री ने एक ही वाक्य कहकर हमें समर्थ बना दिया कि आप जैसे ले जावेंगे मैं वैसे ही चलूँगा । भक्त वत्सल प्रभु अनाथों को संभवतः इसी प्रकार सनाथ बनाते रहते हैं ।

जो सन्त भारत की सांस्कृतिक धरोहर के सच्चे रक्षक हैं, सनातनधर्म के पुण्यश्लोक व्याख्याकार हैं, भौतिकता और नास्तिकता के झंझावातों से हमें बचाकर आस्तिकता का रक्षाकवच दे रहे हैं, आध्यात्मिकता की पावन गंगा को नितनूतन जलधारा के रूप में अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए देवतात्मा तपस्वी हिमालय की भूमिका अदा करते हैं, सनातनधर्म के माध्यम से हिन्दुओं को वह पावन जीवन जीने का सम्बल प्रदान करते हैं जिस जीवन को देखसुनकर मानवता का मस्तक उठ जाता है उन्हीं स्वनामधन्य सन्तों की श्रृंखला में से एक महाराज श्री हैं । यदि कोई शोधार्थी विद्वान आधुनिक सन्तों का इतिहास लिखे तो निस्सन्देह रूप से उसमें सन्त देवादास श्री का नाम एक देदीप्यमान नाम होगा । यदि किसी आधुनिक पुराण की रचना हो तो महाराज श्री भगवान् के अंशावतारों में से एक प्रतिष्ठापित होंगे ।

महात्मा व्यास ने सन्तों को हरि का सच्चा मन्दिर कहा है—साँचे मन्दिर हरि के सन्त, अपने विद्यालय का सौभाग्य है कि हमें उनकी कृपा प्राप्त है। मन्दिर जंगम बनकर दर्शन देने स्वयं आ जाय जो कुर्याँ प्यासे के पास आ गया जैसी बात होगी। कुछ ऐसा ही सौभाग्य है हमारा।

यह मेरी विनम्र प्रणामाञ्जलि है। कीर्तन करते

वाला अथवा भगवान का स्तवन करने वाला श्रद्धालु भक्त अशुद्ध उच्चारण भी कर दे तो अकारण करुणा बरुणा-लय प्रभु उसे क्षमा करते हुए उसके स्तवन को स्वीकार करते हैं; उसी प्रकार हमारी अकिंचनता एवं दुर्बलता की अनदेखी करके महाराज जी हमें क्षमा करते हुए हमारे इस श्रद्धा भरे शाब्दिक प्रणाम को स्वीकार करने की कृपा करेंगे—बोलिए गुरुदेव भगवान् की जय !



जो साकार हुए वे ही निराकार भी है। भक्त के निकट वे साकार रूप से प्रकट होकर दर्शन देते हैं। जैसे महासमुद्र है तो केवल अनन्त जलराशि,— हाँ कहीं कहीं पर अत्यन्त ठण्डक पड़ने के कारण उसका जल जम कर बरफ के रूप में दिखाई पड़ता है। उसी प्रकार भक्त की भक्ति रूपी ठण्डक से भगवान के साकार रूप का दर्शन-लाभ होता है एवं सूर्य निकलने पर जैसे बरफ गल जाता है और पहले की तरह जल हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञान रूपी सूर्य के उदय होने पर वही साकार रूप बरफ गलकर जल हो जाता है अर्थात् सब कुछ निराकार में बदल जाता है।

बरसे अशान्ति इस भू पर

ओम शङ्कर त्रिपाठी (प्राचार्य)

(कवि की पच्चीस वर्ष पुरानी रचना, जो आज भी प्रासंगिक हैं ।)

जर्जर देह व्यथा अन्तर में प्राण शेष हैं मन में
निर्धन तू असहाय बना करुणा पलती जीवन में
तेरे नयनों से जाने कितने दिन सावन बरसा
नयनों की सरिता के मग से तरलित जीवन सरसा
आज बरस कर सूख गये अन्तर के बादल रीते
करुणा के पलने में गाती गीत, नियति निज बीते
करुणा-सावन की वे बूँदें सोख चुकी वपु-धरती
बड़े यास पर छिपा सकी है अरमानों की अरथी
बरसा तो सावन पर उससे तृण तक सूख गये हैं
आज प्रकृति के रङ्गमहल के फिर दो टूक हुए हैं,
बना आज तू वह दलदल है जिसमें मारक बल है,
पर वह सब तेरे भीतर है बाहर तो निर्बल है
करुणा पीकर तू पनपा है बनी वेदना साथिनि
नित्य निराशा फेरे देती सिर सहलाती घातिनि
निर्धन ! तू निर्बल नितान्त है तेरे लिये न कोई
बन जाता मैं भी अनजाना शक्ति युक्ति सब खोई
तू जीवन के महाअतल में मैं उड़ रहा गगन में
तेरी आहों से भरते वातायन दिव्य भवन में
ओ ! समाज की कुत्सित कृति जलती आशा की झाँकी
मदोन्मत्त जीवन की ज्वाला प्रतिकृति काल-अमा की ।
अपने अन्तर की ज्वाला को भड़का दे धू-धू कर
जले आज अवनी-अन्बर बससे अशान्ति इस भू पर ॥

उठो अब भी सबेरा है.....

ओम शङ्कर त्रिपाठी (प्राचार्य)

राम का आदर्श गीता-ज्ञान का निष्कर्ष लेकर बह चलो साथी

अभी गहरा अँधेरा है।

विश्रवा का वंश अंधक-वृष्णि-कुल का अंश सुख से मुस्कराता है,

छिपा तम में सबेरा है।

हम उपासक ज्योति के फिर क्यों तिमिर से भय

हम विजय के गान हैं, फिर काल क्यों दुर्जय।

हम अमा की कोख से भी कृष्ण पाते हैं

भैरवी की छाँव में वंशी बजाते हैं।

फिर महासार मयेंगे आज यह निश्चय करो साथी

प्रभा को भा रहा मद का बसेरा है।

अभी गहरा अँधेरा है।

आज कुत्सा खिलखिलाती क्यों शिथिल संयम

खुल गयीं क्यों मुट्ठियाँ क्यों हार बैठा दम।

सावनी मल्हार में ये आह के स्वर क्यों

त्याग में विश्वास अब उपहास के घर क्यों।

उठो सारस्वत दधीची ढेर गूँजी फिर गगन में

सोह का हर ठौर डेरा है।

अभी गहरा अँधेरा है।

दीप यह शाश्वत चिरन्तन वर्तिका भी है

है अमावस और गहरी चर्चिता भी है।

फिर न जलने की शपथ कैसी कमी क्या है

क्यों मचलने की ललक लो सी गयी या है।

ओ अमा के दीप ज्वाला बन जगो जग में

पसरता जा रहा काला अँधेरा है।

अभी गहरा अँधेरा है।

हम उदय के गीत गति के स्वर प्रलय के शोर भी हैं

हम गगन के भीत हैं पाताल के प्रहरी कभी घनघोर भी हैं।

हम हलाहल पी हँसे हैं हर तिमिर काँपा यही इतिहास मेरा

मानवी जय की पताका हम प्रभा के तय धिक् यह लोभ घेरा।

बज उठे फिर शंख मंगल आरती के झाँझ और मृदङ्ग

भागे मुँह छिपा काला अँधेरा है

उठो साथी, उठो अब भी सबेरा है।

उठो अब सबेरा है ॥

विनम्रता

राहुल तिवारी द्वादश (क)

कहा जाता है 'विद्या ददाति विनयम्' विद्या से विनय या विनम्रता आती है। जो विद्या अविनयी बनाये वह विद्या नहीं है। अहं को संतों ने ईश्वर मिलन या मोक्ष मार्ग में सबसे बड़ी बाधा माना है। विनयशीलता इस अहं को समूल नष्ट कर देती है। भगवान ने गीता में कहा है—“सर्वं धर्मान् परिश्यज्य मामेकं शरणं ब्रज”, अर्थात् पूरी तरह निर्विशेष होकर मेरी शरण में आओ। “तू तू न रहे, मैं-मैं न रहूँ,” यही अहं के विसर्जन की चरम स्थिति है— जब ‘तू’ और ‘मैं’ का भेद नष्ट हो जाता है तभी आश्मा ‘अहं ब्रह्मास्मि’ की स्थिति को प्राप्त करती है। अहं के पूर्ण परिष्कार की स्थिति में ही विनम्रता भी बढ़ती है जैसे फलों के बोझ से वृक्ष झुक जाता है। अतः विनम्रता महानता का पर्याय है।

“प्रियं वाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।

तस्मात् प्रियं वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ॥

प्रिय वाक्य कहने से सभी प्राणी प्रसन्न हो जाते हैं इसलिए सदैव प्रिय वचन ही बोलने चाहिए। बोलने में दरिद्रता क्यों हो? अर्थात् किसी को कोई कितनी ही छोटी वस्तु दे, फिर भी उसका कुछ न कुछ आर्थिक मूल्य होता ही है। अतः ‘कुछ देने में अधिक न सही परन्तु कुछ तो आर्थिक हानि होने की संभावना को नकारा नहीं जा सकता। परन्तु बोलने में आर्थिक हानि होने की संभावना नहीं होती। फिर मीठे वचन बोलने में कृपणता कैसी?

चीन देश के प्रसिद्ध सन्त ‘कनफ्यूशियस’ का जब अन्तिम समय आ गया उन्होंने अपने सभी शिष्यों

को बुलाकर कहा “जरा देखकर बताओ मेरे मुँह में दाँत हैं कि नहीं?” शिष्यों को आश्चर्य हुआ इनके दाँत तो कभी के गिर गये हैं फिर भी अपने गुरु के प्रति प्रेम एवं आदर से वशीभूत हो उन्होंने पोपले मुँह में झाँककर देखा और आदर पूर्वक बोले—“गुरुदेव मुँह में तो एक भी दाँत नहीं है।” गुरुदेव ने फिर अपने शिष्यों से कहा “अच्छा, जरा फिर देखकर बताओ, मेरे मुँह में जीभ है या नहीं है”, शिष्यों ने फिर देखा और बतलाया, “जीभ तो अपनी जगह उपस्थित है।” शिष्यों का उत्तर सुनकर सन्त ने फिर पूछा—“अच्छा अब यह बतलाओ कि मुँह में जीभ पहले आई कि दाँत?” शिष्यों ने उत्तर दिया “जीभ तो मुँह में जन्म से ही होती है जबकि दाँत बाद में आते हैं।”

सन्तने धीमे से मुस्कराकर शिष्य से प्रश्न किया, “दाँत उम्र में जीभ से छोटे होते हुए भी पहले नष्ट हो गये जबकि जीभ अन्त समय तक भी अपना गौरवपूर्ण स्थान बनाये हुए है। आखिर क्यों? आप में से कोई भी इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है?” सभी शिष्य आपस में एक दूसरे का मुँह देखने लगे, सन्त ने शिष्यों को असमंजस में देखकर मुस्कराते हुए कहा—“दाँत को इसलिए नष्ट हो जाना पड़ा क्योंकि वे इतने कठोर थे।* और कर्कश ध्वनि करते थे परन्तु जीभ अभी तक मुँह में इसलिए बनी हुई है क्योंकि वह कोमल है कठोरता इसे स्पर्श तक न कर सकी परन्तु इसका सदुपयोग तभी है जब हम इससे मीठे वचन बोले।” इस प्रकार सन्त कनफ्यूशियस ने मानो सम्पूर्ण विश्व को अपने शिष्यों के माध्यम से विनम्रता का चिर नूतन

* ‘Flattering is telling the other's man precisely what he thinks about himself.’

संदेश दिया जो आज भी उतना ही सत्य एवं महत्त्वपूर्ण है जितना उस वक्त था, जब कहा गया था।

प्रायः यह देखने में आता है कि स्वार्थ पड़ने पर मनुष्य विनम्र हो जाता है परन्तु वह वास्तविक नम्रता व शालीनता नहीं होती— वह तो वस्तुतः नम्रता का दिखावा होता है। विनम्रता से तात्पर्य है कि वाणी में बड़ों के प्रति आदर एवं छोटों के प्रति बन्धुत्व भाव सदैव ही विद्यमान रहे। अगर वाणी में यह भाव निहित नहीं तो वे शब्द श्रोता के लिए प्रभावहीन सिद्ध होते हैं एवं केवल शब्दाडंबर मात्र ही रह जाते हैं। विनम्रता एक ऐसा अमोघ अस्त्र है जो न केवल सुनने वाले के मन का मूल धो देता है अपितु बोलने वाले के प्रति दुर्भावना को भी मिटा देता है। इससे बोलने वाला आत्मतुष्टि अनुभव करता है एवं सुनने वाला शांति एवं सुख। एक कवि ने सत्य ही कहा है—

“जिह्वा में अमृत बसे जो कोई जाने बोल।
विष वासुकि का ऊतरे जिह्वा काहि हिलोल ॥”

रहीम कठोर वचन के प्रति आगाह करते हुए बहुत ही मीठी चुटकी लेते हैं—

“रहिमन जिह्वा बावरी कर गई सरग पाताल।
आप बोल भीतर गई जूते खाय कपाल ॥”

इसीलिये शास्त्रकारों ने कहा है—

“सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् ना ब्रूयात् सत्यमप्रियं”

परन्तु इस उक्ति के बाद प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार क्या सत्य का गला घोट दिया जाय, फिर विनम्रता एवं चापलूसी में क्या अन्तर रह जायगा? सम्राट जार्ज पंचम ने प्रशंसा के सम्बन्ध में कहा है—

“कोई व्यक्ति अपने प्रति जो धारणा रखता है उसे संक्षेप में कहना प्रशंसा है।” किसी व्यक्ति में गुणों

का अभाव अनुभव करते हुए भी उन गुणों का उस व्यक्ति पर आरोप करना चापलूसी है। इसमें चापलूसी करने वाला स्वार्थपरता या लाभ की भावना के वशीभूत होकर दूसरे व्यक्ति से फलपूर्ण बातें करता है; सत्य तो यह है कि प्रशंसा किसी के गुणों का समादर है और चापलूसी गुणहीन व्यक्ति को गुणवान बताकर मूर्ख बनाने की चेष्टा। अतः प्रशंसा में विनम्रता एवं चापलूसी में घृष्टता है।

अन्य श्रेष्ठ आदतों को आत्मसात् करने की ही भांति विनम्रता के लिए भी सतत् प्रयास की आवश्यकता होती है। श्री जान रास्कन ने इस संदर्भ में कहा है—“किसी महान व्यक्ति की प्रथम परीक्षा उसकी विनम्रता ही है।” इसी उक्ति पर एक पौराणिक गाथा याद आती है—जिसमें महर्षि, भृगु सोए हुए भगवान विष्णु की छाती पर पद प्रहार करने के बावजूद भी भगवान से प्रेम भरा विनम्र व्यवहार पाते हैं—विष्णु कहते हैं—“महर्षि मेरी छाती तो बज्र की है कहीं आपके चरण कमलों में चोट तो नहीं आ गई?” इसके साथ ही वे अपनी पत्नी लक्ष्मी से कहते हैं, “जाओ गरम जल ले आओ जिससे मैं महर्षि के पद प्रक्षालन करके तेल मालिश ठीक से कर सकूँ।” विनम्रता का कितना महान उदाहरण।

विनम्रता के परिप्रेक्ष्य में ही महात्मा गांधी एवं ईसामसीह ने इसी से साम्य रखती बात कही है “अगर तुम्हारे एक गाल पर कोई चपत लगाये तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो।” यहाँ मैं यह स्पष्ट करना चाहूँगा कि विनम्रता से मेरा तात्पर्य यह नहीं कि किसी भी व्यक्ति के बेरोक-टोक, नियम विरुद्ध काम करने का अधिकार दे दिया जाय। परन्तु यहाँ यह भी प्रश्न उठता है कि यदि किसी व्यक्ति से नियम के अन्तर्गत रह कर कार्य करने को कहा जा सकता है, कभी नहीं। विनम्रता की हत्या तो तब होगी जब हम नियम विरुद्ध कार्य की क्रोध पूर्वक एवं तीक्ष्ण बाणों से करने की आज्ञा दें। परन्तु यदि हम निष्पक्ष-भाव से

शांति के साथ विनम्र शब्दों से न्यायोचित कार्य करें तो वह न्यायोचित विनम्रता होगी।

श्री इमरसन के शब्दों में, “जो व्यक्ति विनम्रता को अपनाना चाहता है, उसका दृष्टिकोण यह होना चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति जिससे वह मिलता है, उससे

महान है और वह मिलने वाले व्यक्ति के अच्छे गुणों को ग्रहण करे।” इस प्रकार की विचार धारा वाला व्यक्ति न केवल गुणग्राही होगा वरन् विनम्र भी होगा, जिस प्रकार दान मनुष्य के पापों को ईश्वर के समक्ष क्षमा करने योग्य बनाता है उसी प्रकार विनम्रता मनुष्य के समक्ष उसके अवगुणों को नगण्य बनाती है।



॥ समाज के लिए जीने वाले श्रेष्ठ ॥

देश के लिये मरने वाले लोग श्रेष्ठ हैं, पर उससे भी श्रेष्ठ है समाज के लिए जीने वाले। वास्तव में जो धर्म और समाज के लिए जीता है, वही धर्म और समाज के लिए मरता भी है। जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन धर्ममय बिताया है, समाजमय बिताया है, यही आखिरी समय पर समाज के लिए जीवन दे सकता है। उसके अन्दर एक ध्येयवाद, एक निःस्वाय सेवा का भाव और कर्तव्यपरायणता होनी है।

❖❖❖ मानव-धर्म ❖❖❖

विशम्भर दयाल अष्टम (क)

मनु महाराज ने धर्म के दस लक्षण बताये हैं—

“धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीविद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥”

‘धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शुचिता, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य अक्रोध—ये दस धर्म के लक्षण हैं ।

सत्य बात तो यह है यही मनुष्य जाति के स्वाभाविक धर्म हैं । मनुष्य में मनुष्यत्व का विकास इन्हीं गुणों से होता है अर्थात् इन्हीं धर्मों के आचरण से होता है । जिस समय मनुष्य अपने स्वभाव के विरुद्ध इन धर्मों का पालन करना छोड़ देता है उसी समय उसकी अधोगति होती है । जब मनुष्य जाति में इन धर्मों की प्रधानता थी, तब सम्पूर्ण जगत में सुख और अमान्ति का साम्राज्य था; ज्यों-ज्यों इन धर्मों के पालन से मनुष्य जाति विमुख होने लगी, त्यों-त्यों उसमें दुःख और अशांति का विस्तार होने लगा और आज जगत के मनुष्य प्राणी इन्हीं धर्मों का बहुत अंश में ह्रास हो जाने के कारण अपने-अपने क्षुद्र स्वार्थ-साधन के लिए एक दूसरे को ग्रस जाने के लिए तैयार हो रहे हैं ।

‘धर्म ही मनुष्य का आधार है, धर्म ही जीवन है और धर्म ही मरने पर साथ जाता है ।’

धृति—

मानव का सबसे पहला धर्म ‘धृति’ है जिसका अर्थ धैर्य, धारणा, सन्तोष या सहनशीलता से है । कहा भी गया है कि—

निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अथैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

(भर्तृहः नीतिशतकात्)

‘बुद्धिमान लोग निन्दा करें या स्तुति करें, लक्ष्मी जी आवे या प्रसन्नता से इच्छानुसार चली जायें, आज ही मृत्यु हो जाय या युगान्तर में हो, परन्तु धैर्यवान् लोग न्याय के पथ से कभी विचलित नहीं होते हैं ।’

प्रायः प्रत्येक कार्य की सफलता के लिये धैर्य की आवश्यकता हुआ करती है । धैर्य की परीक्षा संकटकाल में और इच्छित वस्तु की प्राप्ति में विलम्ब होने पर हुआ करती है ।

क्षमा—

दूसरा धर्म है क्षमा । अपना अपकार करने वाले से बदला लेने की पूरी सामर्थ्य रहते हुए भी बदला न लेकर उस अपकार को प्रसन्नता के साथ सहन कर लेना क्षमा है ।

“सत्यपि सामर्थ्ये अपकारसहनं क्षमा ।”

दम—

दम का अर्थ मन का निग्रह करना समझा जाता है । मनुष्य को वैराग्य और अभ्यास के द्वारा मन को वश में करने की चेष्टा करनी चाहिये ।

अस्तेय-

मानव धर्म का चौथा लक्षण है 'अस्तेय'। दूसरे के हक (स्वत्व) को ग्रहण करना चोरी कहलाती है। मन, वचन और कर्म से किसी की वस्तु को बिना उसकी जानकारी के लेना चोरी है। चोरी के लिये दण्ड का विधान भी है; परन्तु जितने ही अधिक कानून बनते हैं, उतनी ही चोरी की नयी-नयी क्रियाओं का आविष्कार होता है।

किसी के भी हक को किसी प्रकार से चोरी करने की इच्छा, चेष्टा या क्रिया नहीं होनी चाहिए। यही अस्तेय है।

शौच-

शौच मानव धर्म का पाँचवाँ लक्षण है। शौच वास्तव में पवित्रता को कहते हैं। साधारणतः पवित्रता दो प्रकार की होती है- बाह्य पवित्रता तथा आंतरिक पवित्रता।

इन्द्रियनिग्रह-

इन्द्रियनिग्रह से तात्पर्य है- इन्द्रियों को किसी भी बुरे विषय की ओर न जाने देना और सदा उनको अपने वश में रखकर कल्याणकारी विषयों में लगाये रखना।

धी अर्थात् बुद्धि-

बुद्धि छठा लक्षण है। मनुष्य के अन्दर बुद्धि ही एक ऐसी अद्भुत वस्तु है जिस पर उसका उत्थान पतन निर्भर है। बुद्धि विद्या से बड़ी है। कहा भी गया है-

वरं बुद्धिर्न सा विद्या, विद्यायाः बुद्धिरुत्तमा।

बुद्धिहीना वितश्यन्ति यथा ते सिंहकारकाः ॥

(पञ्चतन्त्रात्)

विद्या-

मानव धर्म का आठवाँ लक्षण है 'विद्या'। यहाँ पर विद्या से तात्पर्य अध्यात्म विद्या से है। विद्या वह है जो धर्म और सदाचार में श्रद्धा सम्पन्न कराती है, जो सम्पूर्ण विश्व में परमात्मा के स्वरूप का दर्शन कराती है। इसके अतिरिक्त विद्या का अत्यधिक महत्त्व है।

“विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं, विद्या भोगकरी, यशः सुखकरी, विद्या गुरुणां गुरुः। विद्या बंधुजनो विदेश गमने, विद्या परं देवतम्, विद्या राजसु पूजिता, न तु धनं, विद्या-विहीनः पशुः ॥

सत्य-

मानव धर्म का नवाँ लक्षण 'सत्य' है। सत्य के समान धर्म नहीं है और असत्य के समान पाप नहीं है। धर्म सत्य के आश्रय से टिकता है। श्रीराम ने मर्दाषि जाबालि से कहा था-

सत्यमेकेश्वरो लोके, सत्ये धर्मः सदाश्रितः।

सत्यमूलानि सर्वाणि, सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥

(भवभूतेः उत्तररामचरितात्)

“सत्यमेव जयते नानृतम्”

वह सत्व जिससे हिंसा होती है, नहीं है सत्य परन्तु जिस सत्य वचन में दया है वही सत्य है।

अक्रोध-

मानव धर्म का दसवाँ लक्षण अक्रोध अर्थात् क्रोध न करना है। क्रोध मनुष्य का नाश कर देता है। क्रोध वास्तव में बहुत से पापों का मूल है। इसलिये क्रोध नहीं करना चाहिये। लेकिन अक्रोध का अर्थ कायरता नहीं।



विद्यालय-रत्न, जिन्होंने अध्ययन-क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित किये ।

इण्टर मीडिएट परीक्षा १९८८



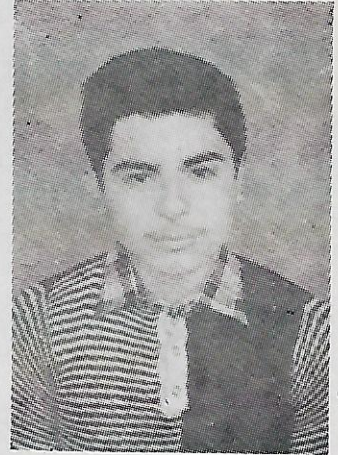
← रंजन खन्ना
द्वितीय स्थान



दिवस सनवाल →
चतुर्थ स्थान



← प्रवीण पाण्डेय
सप्तम स्थान



→ प्रवीण मेहरोत्रा
एकादश स्थान



← विजय सर्राफ
द्वादश स्थान



संदीप मेहरोत्रा →
चतुर्दश स्थान

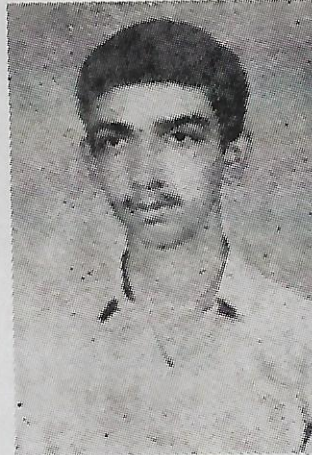
विद्यालय-रत्न, जिन्होंने अपनी भास्वरता से सभी को आनन्दित किया ।



← सन्तोष कुमार मल्ल
द्वितीय स्थान



अभिषेक →
तृतीय स्थान



मोम्य त्रिपाठी →
षष्ठ स्थान



← नारायण स्वरूप निगम
दशम स्थान



आशीष कुमार सिंह →
द्वादश स्थान

हाई स्कूल परीक्षा १९८८ में प्रदेश के स्थान-प्राप्तकर्ता होनहार छात्र

१९८८ की हाई स्कूल परीक्षा के प्रदेश में स्थान प्राप्तकर्ता



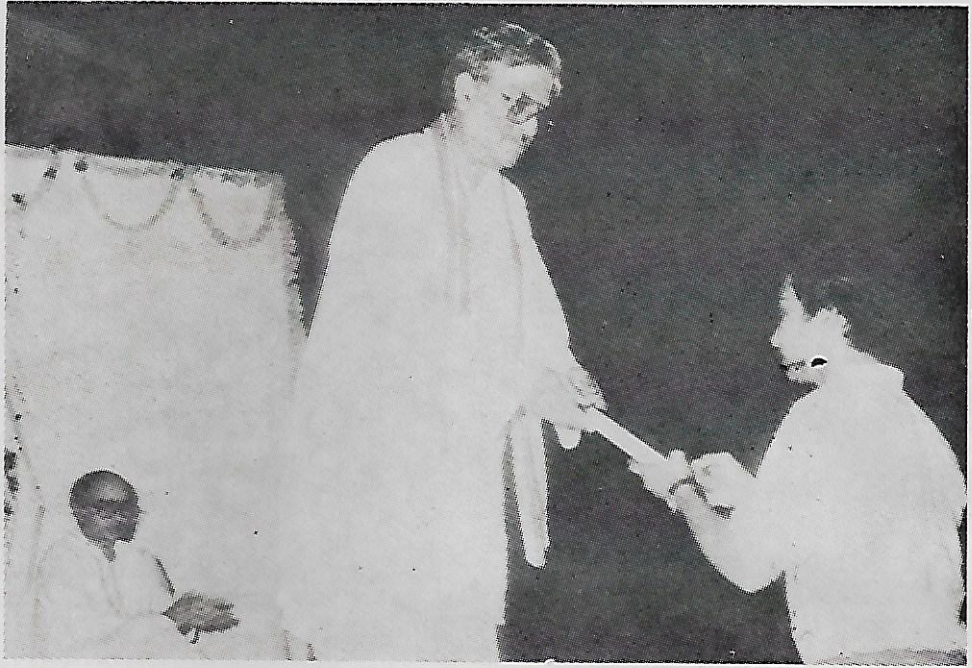
स्वदेश कुमार सक्सेना
चतुर्दश स्थान



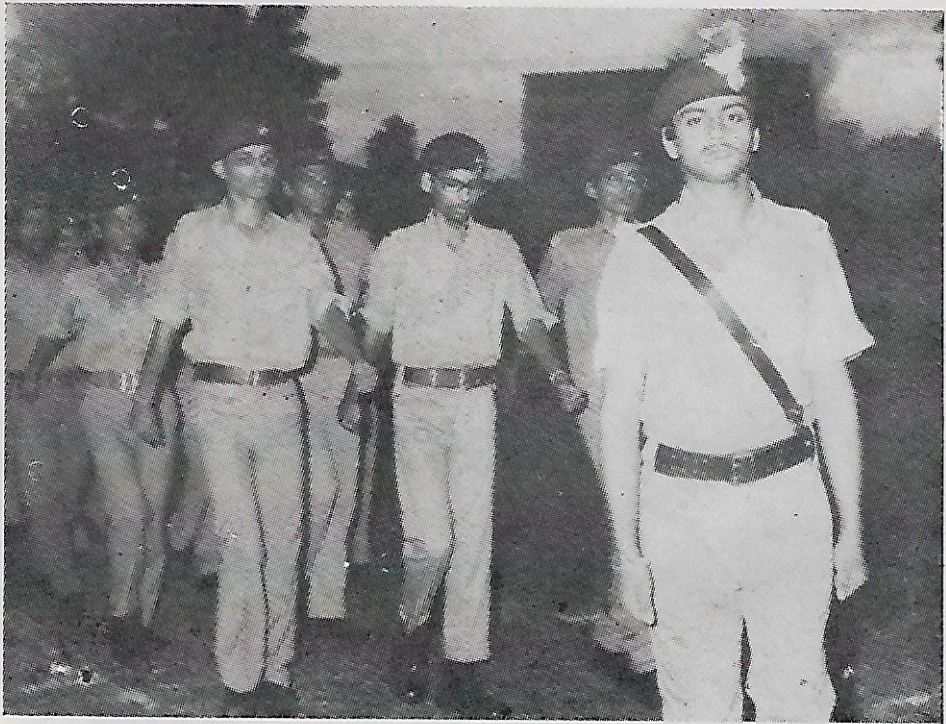
राघवेंद्र सिंह चौहान
पंचदश स्थान



वार्षिक खेल-कूद के अवसर पर दीप-प्रज्वलन करते हुए
माननीय वैरिस्टर साहब



विद्यालय की विभूति चि० रंजन खन्ना डा० मुरली मनोहर जोशी से पुरस्कार प्राप्त करते हुए।



कदम से कदम मिलाते हुये एन० सी० सी० के छात्र

हम लोग बहुत सौभाग्यशाली हैं क्योंकि यह वर्ष उन बारह कर्मठ मनीषियों, चिन्तकों, राष्ट्रनिर्माताओं का जन्म-शताब्दी वर्ष है, जिन्होंने राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर ले जाने हेतु बहुत कुछ किया है। हम इस वर्ष को उनके शताब्दी वर्ष के रूप में मना रहे हैं, यह सौभाग्य की बात है।

हमारी वर्तमान सरकार केवल कुछ ही गिने-चुने व्यक्तियों का जन्म-शताब्दी वर्ष मना रही है। उसे शेष विभूतियों को भी नहीं भूलना चाहिये।

इन्हीं महापुरुषों की शृंखला की एक कड़ी आधुनिक भारत के महान्तम् प्रतिभासम्पन्न गणितज्ञ श्री श्रीनिवास रामानुजन् हैं।

श्री रामानुजन् का जन्म २२ दिसम्बर १८८७ को तमिलनाडु प्रान्त के इरोड नामक ग्राम में एक ब्राह्मण वैष्णव परिवार में हुआ था। इनके पिता श्री कूपुरस्वामी श्रीनिवास कपड़ों का व्यवसाय करते थे, किन्तु माता श्रीमती कोमालता अम्माल घासिक एवं विदुषी महिला थीं। कुल मिलाकर घर की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी।

बाल्यकाल :

जब ये पाँच वर्ष के थे तब इनका प्रवेश प्राइमरी विद्यालय में हो गया। यहीं से इन्होंने सन् १८९७ में सम्पूर्ण जिले में प्रथम आकर प्राइमरी परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् कुभकोणम नामक कस्बे के टाउन हाई-

स्कूल में अपर प्राइमरी में प्रवेश लिया। यद्यपि उन्होंने अपर प्राइमरी की गणित परीक्षा में ६४ प्रतिशत अंक प्राप्त किये तथापि वे बहुत दुःखी हुए और बहुत देर तक रोते रहे। इसके पश्चात् गणित ही उनका मनोरंजन का साधन और मित्र बन गया।

रामानुजन् अंग्रेजी को बला मानते थे और उन्हें मातृभाषा तमिल से बहुत लगाव था वे अपनी नयी उपपत्तियाँ आदि भी तमिल में ही लिखते थे। सुनकर आश्चर्य होता है कि जब रामानुजन् आठवीं कक्षा में थे तब उन्होंने लोनी की त्रिकोणमिति (Part-2) को आधे से अधिक लगा लिया था, जिसे हम लोग अब लगाते हैं। १५ वर्ष की अवस्था में उन्होंने तृतीय व चतुर्थ घात के समीकरणों का हल खोज लिया था।

विलक्षण प्रतिभा (कुछ महत्वपूर्ण खोजें)

विद्यालय की वार्षिक उद्घोषणा में प्रधानाचार्य ने श्री रामानुजन् का परिचय देते हुए 'के. रंगनाथ राव पुरस्कार' दिया और कहा था "यह वह छात्र है जिसे गणित में शत-प्रतिशत से भी अधिक अंक मिलने चाहिये थे।" अगले वर्ष उन्होंने उसी जिले के गवर्नमेन्ट कालेज में फेलो आफ आर्ट्स के प्रथम वर्ष में प्रवेश लिया। अच्छे परीक्षाफलों के कारण उन्हें छात्रवृत्ति मिलती रही और मणित के प्रति प्रेम बढ़ता गया। अब श्री रामानुजन् क्विन्टिक इक्वेशन्स (पंचम घात समीकरण) हल करने लगे और इंफाइनाइट सीरीज (अनन्त श्रेणियों) की खोज करने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने बरनीली के अंकों का मान

दशमलव के पन्द्रह स्थानों तक निकाल दिया था। बहुत हताशा हुई जब उन्हें मालूम हुआ कि यह तो पहले ही ज्ञात किया जा चुका है। एफ.ए. की द्वितीय वर्ष परीक्षा में गणित के अतिरिक्त वे सभी में अनुत्तीर्ण थे। जब कि ऐसा समझा जाता है कि गणित में उत्तीर्ण होना एक टास्क है। अब उन्होंने लंदन से प्रकाशित होने वाली लंदन मैथेमेटिकल गजट नामक प्रसिद्ध पुस्तक की समस्यायें हल करना प्रारम्भ कर दी। इन्होंने अपनी गणित की सतत साधना से इलिप्टिकल फंक्शन (बीघ-वृत्तीय फलन) की खोज की, जिसे विश्व में बहुत सराहा गया। एफ.ए. की फाइनल परीक्षा में भी गणित के अतिरिक्त सभी में फेल हो जाने पर आपने पढ़ाई का ही त्याग कर दिया।

विवाह :

पुत्र के पास कोई काम-धन्धा न देखकर चिन्तित पिता ने श्री रामानुजन् का विवाह नौ वर्ष की कन्या जानकी श्रीवत्स से (१९०१ में) कर दिया। वे बीमार हो गए। कारण यह कि वे अभी गणित की ओर साधना करना चाहते थे और विवाह एक बाधा बन रहा था। इसके पश्चात् इन्होंने कुछ ऐसी नोट बुक्स तैयार की जिसके कुछ प्रश्न आज के दिग्गज अभी तक हल नहीं कर पाए हैं।

नौकरी मिल न सकी, भोजन व निवास की समस्या गहन हो गयी। सौभाग्य से उन्हें नैल्लूर जिले के गणित प्रेमी वह सुहृदय कलेक्टर दीवान बहादुर आर. रामचन्द्र राव ने एक वर्ष तक आर्थिक सहायता दी। लगनशील श्री रामानुजन् ने उसी अवधि में अपना पहला शोध पत्र 'सम प्रापर्टीज ऑफ बरतौली नम्बर्स' इंग्लैंड भेज दिया। यह शोध पत्र इतने उच्च स्तर का था कि सम्पादक गणितज्ञ को ही समझ में नहीं आया और उन्होंने इसे लौटा दिया। बाद में यह सन् १९११ में प्रकाशित हुआ।

१२ जनवरी सन् १९१२ को उन्हें २० रुपये

मासिक वेतन की नौकरी मिल गई थी किन्तु वह अस्थायी थी। कुछ समय बाद दीवान रामचन्द्र राव की सिफारिश पर मद्रास पोर्ट ट्रस्ट के डायरेक्टर फ्रांसिस स्प्रिग ने उन्हें अपने लेखा विभाग में ३० रुपये मासिक वेतन पर रख लिया।

वे मद्रास के ट्रिप्लीकेन मोहल्ले ने रहते हुए बड़ी-२ स्लेटों पर अपने प्रश्नों को हल करते उपपत्तियाँ खोजते थे। अक्सर रामानुजन् सोते-२ उठ बैठते और स्लेटों पर लिखने लगते और पृष्ठों पर उत्तर देने, "स्वप्न में मुझे जो हल सूझा है उसे लिख रहा हूँ।" वे अंग्रेजी में कमजोर थे और छोटे-मोटे पत्र भी आत्मविश्वास से न लिख पाते थे।

प्रो० हार्डी से सम्पर्क :

बहुत से गणितज्ञों व मित्रों के कहने पर उन्होंने १६ जनवरी १९१३ को कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी के महान् गणितज्ञ प्रो० जी०एच० हार्डी को प्रथम ऐतिहासिक पत्र लिखा। पत्र में १२० थ्योरमस और फामूले थे। प्रोफेसर हार्डी बहुत प्रभावित हुए। सन् १९१४ को रामानुजन् के इंग्लैंड पहुँचने पर उन्होंने अपने भाषण में कहा था—

“एक तरह से रामानुजन् की खोज मैंने की थी। मुझे गर्व है कि मैं ही पहला वह व्यक्ति था जो उनके कार्यों को सही तरीके से समझ सका। मुझे जब भी यह याद आता है कि रामानुजन् के रूप में मैंने कितनी अनमोल विभूति ढूँढ़ निकाली थी मेरा हृदय आनन्द से भर उठता है।”

—प्रो० जी०एच० हार्डी

अस्वस्थता :

बहुत अधिक कार्य करने और विरोधी जलवायु के कारण श्री रामानुजन् मार्च १९१७ में बीमार हो गए। एक बार प्रो० हार्डी उन्हें देखने आए और उनसे बोले, “मैं जिस टेबली से यहाँ आया हूँ उसका नम्बर १७२६ (१६ × १३ × ७) बड़ा अशुभ जान पड़ता है।” (यूरोपीय देशों में १३ वैसे ही अशुभ है जैसे भारत में ३) किन्तु लेटे-लेटे ही रामानुजन् ने उत्तर दिया

“नहीं हार्डी, यह बहुत अद्भुत संख्या है। यह वह छोटी से छोटी संख्या है जिसे दो संख्याओं के घनों का योग करके दो प्रकार से लिखा जा सकता है।” यथा—

$$9725 = 10^3 + 5^3 = 12^3 + 1^3$$

यह सुनकर हार्डी चकित रह गए। यह रामानुजन् की निजी खोज थी।

२८ फरवरी १९१८ को लंदन की रॉयल सोसायटी ने उन्हें अपना फेलो घोषित किया। वे दूसरे भारतीय थे जिन्हें यह सम्मान मिला।

२७ मार्च १९१६ को वे भारत लौटे। भारत में उनका भव्य स्वागत हुआ। इस समय भी वे बहुत बीमार थे। हर संभव प्रयास के बावजूद उनका स्वास्थ्य निरन्तर गिरता गया। आश्चर्य कि गणित की साधना जारी रही। बीमारी के दौरान उनकी पत्नी, माता, सम्बन्धियों आदि ने यथासंभव सेवा सुश्रूषा की। पर होनी को कौन टाल पाया? उन्होंने इस अवस्था में ही “मोक-थीटा फंक्शन” पर खोज की और २६ अप्रैल १९२० को इस

शताब्दी के महानतम गणितज्ञ रामानुजन् का स्वर्गवास हो गया।

यह बात भी जान लेनी चाहिये कि जिस प्रकार बरनोली की लगातार तीन पीढ़ियों के आठ गणितज्ञ, पास्कल के पिता प्रो० हार्डी के माता-पिता गणितानुरागी थे, उसके विपरीत रामानुजन् आनुवांशिक गणितज्ञ नहीं थे।

यदि श्रीनिवास रामानुजन् की जन्म शताब्दी के अवसर पर समाज पर गहन दृष्टिपात करें तो निश्चय ही एक दो नहीं सैकड़ों-हजारों रामानुजन् मिल जावेगे जिनके पास डिग्री नहीं योग्यता है, साधन नहीं, आर्काक्षा है ऊपर उठने की। परन्तु मेरा प्रश्न है—क्या हमारी सरकार ऐसी प्रतिभा को कभी पहचान पाएगी? हमारी शिक्षा प्रणाली ऐसी नहीं है कि ऐसे व्यक्तियों को कोई नौकरी दिला सके, उन्हें किसी शोध संस्थान में प्रवेश दिला सके। जब तक इस दिशा में कोई सुधार नहीं होगा, तब तक हमारे देश के अत्यन्त प्रतिभाशाली नागरिक हताश होते रहेंगे।



कुछ महत्पूर्ण तथ्य

—राघवेन्द्र गुप्त, अष्टम ‘क’

- विश्व में सबसे बड़ा तथा गहरा गर्त मलान्त महासागर में ‘जरीन ट्रेंच’ है जो कि ११५८६ मी. गहरा है।
- विश्व का सर्वप्रथम तेल कुआं संयुक्त राज्य अमेरिका में ‘कनलैंडक’ द्वारा २५ अगस्त १०५० ई० को खोदा गया था।
- संसार की सबसे लम्बी नदी ‘नील नदी’, ५७६४ कि०मी० लम्बी है।
- संसार का सबसे अमीर आदमी ‘पोलगेटी’ (अमेरिका) है।
- संसार का सबसे लम्बा रेलवे पुल ‘लोअरजेम्बसी’ (अफ्रीका) है।
- संसार की सबसे बड़ी सुरंग ‘ईस्ट फिचले’ है।
- संसार का सबसे बड़ा प्लेटफार्म ‘स्टरविक’ है जो स्वीडन में है।
- संसार की सबसे बड़ी घड़ी लन्दन में ‘विगवेन’ है।
- संसार का सबसे बड़ा पार्क लन्दन में है इसका नाम ‘यलो स्टोन पार्क’ है।

अनुभूति

(माननीय प्राचार्य जी की प्रेरणा से)

भाशीष कुमार
एकादश 'क'

कोई बता दे ! मृत्यु है कौन सी अनुभूति ?
सोख लेती है जो किसी के शरीर का रक्त ।
किसी के गाल पर रक्त के दो बूँद छोड़ देती,
किसकी प्रेरणा से है, यह इतनी अभिशप्त ॥

जीवन का यह है कौन सा भाग,
अज्ञात रहना ही है जिसकी नियति ।
शून्य बना हुआ है जिसका बोध,
किन्तु है जो अविचल रीति ॥

यदि यह मृत्यु ही है सत्य,
वास्तविक जिन्दगी है बिना साँस की ।
तो क्यों होता है भय इससे ?
क्यों है मोह 'जीवन-आभास' से ?

क्यों मौत रहती है छाया-सदृश ?
अंधकार आते ही होती जो अभिघ्न ।
'स्व-बोध' ही जब है दुष्कर अंधकार में,
तो छाया को स्वयं में समाहित न होने-
देना है और कठिन ॥

अतः मौत को टालना है असंभव,
किन्तु जीवन का क्यों ऐसा यथार्थ ?
शैशव, युवा व जरा तो हैं अस्तित्व के बोधक,
कभी द्रव रूप में, कभी वायु रूप में ॥
उसी प्रकार तो मैं भी "मैं" हूँ,

मुझमें तो है "अहं" सर्वदा ।
अतः मेरा भी अस्तित्व रहेगा सदैव ही ।

हर स्थूल सा सूक्ष्म रूप में ।
किन्तु न समझ सका मैं अब तक
ऐसे दो रूपों में क्यों अस्तित्व ?
मोम व पत्थर सदृश विपरीत-

ज्ञान जीवन व मृत्यु अज्ञातव्य ॥
जब कृष्ण ने तो स्वयं ही है कहा,
"कि जन्म भी वे ही, मृत्यु भी वे ही,
ठोस, द्रव, अग्नि, वायु, आकाश भी वे ही,"

मन, बुद्धि व अहं भी वे ही ॥
जब लय भी वे ही, प्रलय भी वे ही,
तो क्या है आवश्यकता उन्हें इनमें-
कराने की लुका-छिपी ?

किन्तु कृष्ण तो अनन्त 'सत्य' हैं,
अतः कहीं मेरे ही आँखों पर तो बँधी
नहीं है ध्रम की पट्टी ?
हाँ, सम्भवतः मैं हूँ तमसावृत्त,

किन्तु मरणोपरांत कहाँ गया अस्तित्व का अर्थ
ओस की बूँदें नित्य प्रातः हो वाष्पित,
रात्रि में नित्य गिरती तरु-पातों पर ।
अस्तित्व उनका है हमेशा,

क्योंकि मुझमें ब्रह्म की स्थिति है
अस्तित्व बोध से आवेष्ठित
वे हैं मायापति, मैं हूँ मायाधीन ॥
यह माया है क्या-जानकर भी रहना अज्ञान,

मिथ्या जीवन में सत्याभास-
मानता हर मानव जीवन में जो आलम्बन-विरान,
वही प्रमाद है मिथ्या-स्वयं ही स्वयं पर हास ॥
अतः जब आधीनता माया की,

पहुँचने लगती है पराकाष्ठा पर ।
तब विकृत होने लगती है-
मेरे अष्टबोधक तत्वों की लयबद्ध लहर ॥
मृत्युरूपी जीवन का प्रलय,

मेरे पंचतत्वों को उन्हीं में कर मुक्त ।
मन व बुद्धि को करती उनसे निर्मूल,
किन्तु अहं अर्थात् अस्तित्व मेरा है-
अमर-अत्यक्त ॥

अतः मैं बार-बार मर कर भी
बार-बार आऊँगा इस जीवन तक ।
और जन्म लेता रहूँगा,
माया पर विजय पाने तक ॥

जिस पल मुझे अपना बोध होगा,
समझूँगा जिस पल मैं माया को तुच्छ ।
उस क्षण ही मुझमें व ब्रह्म में भेद न होगा,
और होऊँगा मैं जन्म-मृत्यु से मुक्त ॥

जन्म-मरण का अर्थ तो अब समझा मैं,
किन्तु दुष्कर है इससे मुक्ति मुझ अधम की ।
सूर्य तो असम्भव, संध्या का दीपक ही बन
सकूँ मैं,

तो समझूँ किञ्चित् परिणति इस जीवन की ।
मार्ग तो दो हैं-विजित कर-
माया को, स्वयं की कर्म-बन्धनों से मुक्ति ।
या जूझना मायाजनित जीवन-समस्याओं से,

प्राप्त कर निष्काम-कर्म-शक्ति ॥
एक है मिथ्या को, मिथ्या कह त्यागना
और डुबोना स्वयं को अनन्त आनन्द पयोधि में ।
दूजा है-मिथ्या से ही लड़कर,

राहत देना भवकलांत मानवता को इस संसृति में ॥
जन्मता है पुष्प भी इस क्षिति पर,
किन्तु बिखेर कर अपने छविजाल को,
शुष्क पवन को बना सुवास,

पाता नित्य प्रतीची के सूर्य के साथ काल को,
उसे तो न अभिलाषा है मुक्ति की,
किन्तु है अवश्य उसमें असीम जीवन-शक्ति
प्रसारित कर जिसे मलयज के साथ ।

आनन्दित करता वह हर-व्यक्ति को ।
मैं भी यह जान कर कि,
परमार्थ है ईश्वरत्व की अनुभूति ।
चूँकि न तो बन सकता योगी,

न ही ऐसी कोई स्पृहा अन्तनिहित,
चाहूँगा कि ईश्वर रंगने दे,
मुझे आर्द्र मानवीय रंगों में ।
हर मौत पर मेरी पलकें भीगें,

हर जन्म मुझे खुशी दे,
जन्म लेता रहूँ मैं अनन्त बार,
किन्तु अपराजेय जीवन-शक्ति व जीवंतता के साथ ।
बन सकूँ मैं मानवीय गुणों का गायक,
ऐसा मृत्यु सा संस्पर्श देती यह अनुभूति ॥



मेरे सपनों का भारत !

—वीरेन्द्रनाथ एकादश 'क'

मेरे सपनों का भारत
राम राज्य जैसा,
कहा गाँधी जी ने,
सपना तो सपना ही है,
राज्य तो दीखता है,
पर राम कहीं भी नहीं है ।
नेहरू युग बीता, इन्दिरा युग आया,
युवा वर्ष से रूप में राजीव खिल आया ।
तरुणों का मन हुलसा,
पर यह क्या ?
यह तो धतूरे का फूल निकला
कैसा यह राम ? बना रावण का पुतला
भारत माँ कराह उठी,
क्योंकि
आज अराजकता है लूट है,
हर तरफ फूट ही फूट है ।
शोषण, भेदभाव, अत्याचार,
पग-पग पर हो रहा अनाचार ।
देश-सेवा का नारा है,
सिर्फ अपना ही पेट प्यारा है ॥
अभिशाप्त, मानव-जीवन,
मानवता पर हो रहा प्रहार ।
अरे देश वासियो !
जागो फिर एक बार ॥
भगत, चन्द्रशेखर, सुभाष की तरह,
इन सड़ी गली बेड़ियों को तोड़ दो ।
टूटे भारत को फिर से जोड़ दो
मानवता का हरो त्रास,
जन-जन में भरो विश्वास ॥
साँ भारती अबल है ! अजर है !! अमर है !!!

पं० जवाहर लाल नेहरू

आशीष कुमार, एकादश 'क'

२७ मई की सुबह उनकी तवीयत एकाएक बिगड़ गई। तत्काल पहुँचे डॉक्टरों ने पाया कि उन्हें जबर्दस्त दिल का दौरा पड़ा है। डा० घबराकर उनकी ओर लपके, किन्तु उन्होंने संयत स्वर में कहा, "अब कुछ भी करना बेकार है, "और यह कहते ही वे बेहोश हो गये। भारतीय समय के अनुसार दिन के दो बजे उनका देहावसान हो गया।

उनके बिस्तर के समीप मेज पर अमेरीकी कवि राबर्ट फॉस्ट की किताब खुली हुई थी जिसमें उन्होंने अपनी इन प्रिय पंक्तियों को रेखांकित किया हुआ था :

The woods are lovely, dark and deep
But I have promises to keep
And miles to go before I sleep...

पं० जवाहरलाल नेहरू, एक ऐसे व्यक्तित्व का नाम है, जिसने संभवतः आधुनिक भारत को सर्वाधिक प्रभावित किया है। उनकी मृत्यु को २५ वर्ष हो चुके हैं और यह उनका जन्म शताब्दी वर्ष है। किन्तु उनका जीवन मूल्यों के प्रति विश्वास, जीवन्त व्यक्तित्व, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नेतृत्व, गुरुशास्त्र व मातृभूमि पर समर्पण भाव उन्हें आज भी अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर उच्च आदर्श के रूप में स्थापित करता है।

नेहरू जी का जन्म एक ऐसे खानदान में हुआ था, जिसके पूर्वज प्रारम्भ में मुगल बादशाह फर्रुखसियर

के जागीरदार थे, बाद में मुगल दरवार के पतन पर कंपनी सरकार की सेवा में रहे। जवाहरलाल के परदादा दिल्ली दरबार में कम्पनी सरकार के पहले वकील रहे और उनके दादा गंगाधर नेहरू दिल्ली में कोतवाल थे। १८५७ की गदर के बाद नेहरू खानदान दिल्ली छोड़कर प्रारम्भ में आगरा और बाद में इलाहाबाद में बस गया।

पिता मोतीलाल नेहरू शान-शीकत पसंद व्यक्ति थे। उनके आरम्भ के विचार अनुदारवाद और विद्रोह परकता, जीवन सम्बन्धी आशावाद और राजनीतिक निराशावाद, राष्ट्रवाद और हर अंग्रेजी नकल की खिचड़ी थे। अतः जवाहरलाल नेहरू का पालन-पोषण उस अंग्रेजी वातावरण में हुआ था, जिसमें उनको अत्यंत घुटन, उलझन व घबड़ाहट की अनुभूति होती थी।

किन्तु माँ, चाची से सुनी रामायण-महाभारत की कथाएँ, रस्मी और त्योहारों पर प्रयाग की चहल-पहल उन्हें गौरवमय अतीत से चली आ रही परम्पराओं के उज्ज्वल चित्रों में परिचित कराती थी।

उन दिनों मोतीलाल की मेहमाननवाजी उच्च वर्गीय भारतीयों और यूरोपीय लोगों को उनकी ओर खींचती थी।

उन्हीं लोगों में एनी बेसेंट भी थीं। उनका भी नेहरू परिवार में आना-जाना था। उन्होंने बालक जवाहरलाल की शिक्षा के लिये फ्रेंच-आयरिश नस्ल के

फर्डिनेण्ड ब्रुक्स को नियुक्त करवाया। ब्रुक्स को भारतीय दर्शन और संस्कृति का बहुत अच्छा ज्ञान था। यद्यपि मोतीलाल को उनकी 'परम-आत्मा' और ईश्वर-ज्ञान' की बातें रास नहीं आयी, तथापि वेसेन्ट के अनुरोध को वह टाल न सके।

मोतीलाल को जवाहर पर ब्रुक्स का इतना प्रभाव अच्छा नहीं लगा, अतः उन्होंने जवाहर को लंदन भेजने का निश्चय किया।

इंग्लैण्ड में वे स्कूल में भर्ती हुये। यह वहाँ का सर्वाधिक प्रसिद्ध स्कूल था जिसने ब्रिटिश साम्राज्य को पिट, पामरस्टन, बील्डविन व चर्चिल जैसे प्रधानमंत्री दिये थे। संयोग से भावी स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान-मंत्री भी इसी स्कूल के विद्यार्थी रहे।

मोतीलाल जवाहरलाल को भारत की गति-विधियों से दूर, अंग्रेजी माहौल में रखना चाहते थे, किन्तु होनी कहीं टल सकती है? जवाहरलाल को अंग्रेजी लड़के भोदू व मट्ठर लगते, उन्होंने मोतीलाल से भारतीय अखबार नियमित रूप से मंगवाना प्रारम्भ प्रारम्भ किया। सहपाठी अंग्रेजी लड़कों से उनका सम्पर्क बहुत ही सीमित था। मोतीलाल को उनका यह दृष्टिकोण पसंद नहीं आया।

जवाहरलाल ने इटली के मुक्ति-आन्दोलन, ब्रिटिश प्रभुत्व के विरुद्ध अमेरिकी उपनिवेशों के युद्ध, फ्रेंच-क्रांति तथा आयरलैण्ड के स्वाधीनता संग्राम से संबंधित अनेकों पुस्तकें पढ़ीं। इसी दौरान ब्रिटेन में भारतीय देशभक्तों के एक संगठन द्वारा प्रकाशित 'इंडियन सोशल-लॉजिस्ट' पत्रिका पढ़ने पर जवाहरलाल समाजवादियों से जान-पहचान बढ़ाने को उन्मुख हुये।

इसी समय पहले लीड्स कर्जन की दमनात्मक व लांड मिन्टो की कूटनीतिक कार्यवाहियों से जवाहरलाल क्रुद्ध हो गये। किन्तु वे असमर्थ थे। उन्होंने गरम दल व तिलक का पक्ष लिया व नरम दल के लिये तीन 'प' वाली तिलक की व्यंग्योक्ति (प्रार्थना, प्रतिवाद व प्रस्ताव)

को सही ठहराया। उन्होंने माडरेटों को उखाड़ फेंकने को सार्थक कहा। मोतीलाल को, जो कि तथाकथित माडरेट नेताओं से भी ज्यादा स्वयं को माडरेट समझते थे, ये बातें बुरी लगीं। वे जवाहरलाल के प्रति चिन्तित हो गये। वे विद्रोही आयरिश शिनफिनियो से मिले। फलतः पिता व पुत्र में मतभेद बढ़ गये।

तत्पश्चात् ग्रेजुएशन के लिये जवाहरलाल ने कैंब्रिज के टिनिट्री कालेज में दाखिला लिया। कैंब्रिज के टिनिट्री काजिल में जवाहरलाल को नस्ली भेदभाव की कटुता झेलनी पड़ी।

दिसम्बर १९०७ के काँग्रेस के सूरत अधिवेशन में नरम दल व गरम दल के विभाजन व अधिवेशन के बारे में पिता के मूल्यांकन के विरोध व गरम दल के समर्थन में जवाहरलाल ने इतना उत्तेजनापूर्ण पत्र भेजा कि मोतीलाल बहुत दुखी हुये और बीमार भी पड़ गये।

दिसम्बर १९१२ में ही बाकीपुर के काँग्रेस अधिवेशन में वह पहली बार शामिल हुये। तिलक के जेल में होने से अधिकांशतः नरम दल के लोग, "इस्तरी किये कोट-पतलून पहने अंग्रेजी बोलते," अधिवेशन में हावी थे। जवाहरलाल जी को माडरेटों के बाहुल्य वाला यह अधिवेशन "उच्च श्रेणी के लोगों का उत्सव!" लगा। यद्यपि अभी जवाहरलाल के राजनीतिक विचार धुँधले थे, तथापि मोतीलाल पुत्र की उपरोक्त प्रतिक्रिया से अत्यन्त रुष्ट हुये।

इसी दौरान प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। "इंग्लैण्ड की शतरज की बिसात पर फर्जी" होने के नाते भारत भी इतिहास के सर्वाधिक वीभत्स युद्ध की चपेट में आ गया।

काँग्रेस के कुछ नरमपंथी नेताओं ने इस उम्मीद से कि राजभक्ति दिखाने पर इनाम मिलते देर न लगेगी, लोगों से युद्ध में इंग्लैण्ड का हाथ मजबूत करने की अपील की।

अप्रैल १९१६ में तिलक व एनीबेसेन्ट ने होमरूल लीग की स्थापना की। जवाहरलाल दोनों लीगों में शामिल हुये।

इसी वर्ष जवाहरलाल का अपने ही अनुरूप शांत, अल्पभाषी कमला से विवाह हुआ।

अक्टूबर १९१६ में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में ऐतिहासिक घटनाक्रम हुये। लगभग १० वर्ष बाद तिलक ने इसमें भाग लिया, तरम दल-गरम दल का विलय हुआ। मुस्लिम लीग ने भी इसमें भाग लिया।

इस अधिवेशन में पहली बार गाँधी जी की भेंट जवाहरलाल से हुई। इकलौते पुत्र के प्रभाव से धीरे-२ मोतीलाल माडरेटों से अलग होते गये। फरवरी, १९१६ में उन्होंने माडरेटों की पत्रिका 'लीडर' का प्रतिक्रिया में 'इन्डिपेन्डेन्ट' पत्रिका निकाली। जिसका सम्पादन स्वयं जवाहरलाल ने किया।

१८ मार्च, १९१६ को जब रीलेट एक्ट कानून बना, गाँधी जी के आह्वान पर ३० मार्च को देशव्यापी बंद रहा। नेहरू जी ने इसमें अति सक्रियता से हिस्सा लिया। मोतीलाल ने अपने पुत्र के जेल जाने व यातना सहने के डर से गाँधी जी के माध्यम से जवाहरलाल को रोकने का प्रयास किया। जलियाँवाला बाग में हुये हिंसा के ताण्डव ने जवाहरलाल को बौखला दिया। उन्होंने इस काण्ड की रिपोर्ट बनायी और ६०० अकाट्य गवाह प्रस्तुत किये।

.....और फिर बदल गयी नेहरूओं व आनन्द भवन की गतिविधियाँ,.....विधायती सूट-बूट के स्थान पर खादी-वस्त्र-अंग्रेजों की दावतों, घोड़े, बगियर्याँ शिकारी कुत्ते, बाग-बगीचे मानों जैसे कभी थे ही नहीं। आनन्द भवन की देहरी अब विरला ही कोई अंग्रेज लांघता था।

पिता-पुत्र दोनों दिलोजान मे असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। जवाहरलाल को ६ माह व १८ माह की दो जेल-यात्रायें करनी पड़ी। तभी तिलक के निधन ने उन्हें सर्वाधिक स्तब्ध कर दिया।

शीघ्र ही जवाहरलाल देशवासियों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय नेता के रूप में उभरने लगे।

१९२८ का कांग्रेसी वार्षिक अधिवेशन, जिसके सभापति मोतीलाल थे। जवाहर-सुभाष एवं मोतीलाल-गाँधी के दो गुटों में लगभग बँट गया। पिता-पुत्र दो शत्रुओं की भाँति संविधान के ऊपर तर्क-वितर्क करने लगे।

जवाहर व सुभाष स्वाधीनता के लिये किसी भी समझौते के विरुद्ध थे। अंततः नये खून ने प्रस्ताव को केवल इस शर्त पर माना कि सरकार ८ वर्ष के भीतर संविधान को मंजूर कर दे। फिर भी उन्होंने अधिवेशन का बहिष्कार किया।

...और फिर एक वर्ष तक अपने को रोके रहने के बाद दिसम्बर १९२६ में लाहौर अधिवेशन में सभापति नेहरू ने 'पूर्ण स्वाधीनता' का नारा दिया और २६ जनवरी को स्वाधीनता दिवस घोषित किया व सविनय अवज्ञा आन्दोलन के कार्यक्रम को तैयार किया। 'ढाण्डी-यात्रा' से इसका प्रारम्भ हुआ और फिर पूरा देश सत्याग्रह में कूद पड़ा। जवाहरलाल की जेल-यात्राओं का सिलसिला जारी रहा।

गाँधी जी के नेतृत्व में द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अगस्त १९४२ में नेताओं ने अन्तिम पुरजोर कोशिश करते हुए 'भारत छोड़ो आन्दोलन' प्रारम्भ किया। सभी नेतागण गिरफ्तार कर लिये गये। नेहरू जी अहमद नगर किले में बन्द किये गये। पूरा देश मानों धधक उठा। जून १९४५ तक सभी नेता द्वितीय विश्व युद्ध के समाप्त होते-२ बाहर आ गये।

तभी आजाद हिन्द फौज व सुभाषचन्द्र के निधन के बारे में समाचार आने लगे। सुभाष के निधन से नेहरू को बहुत गहरा सदमा लगा। नेहरू जी अपने मतभेद विस्मृत कर बोस की बच्चों सदृश, सुकुमारता, व संवेदनशीलता का, अंध देश-भक्ति का ख्याल करने लगे। 'इंग्लैण्ड के बादशाह व भारत के सम्राट' के विरुद्ध युद्ध चलाने के आरोप में बंदी आजाद हिन्द फौज के अफसरों के बचाव में नेहरू ने बहुत वर्षों बाद बकीलों का चोगा पहना।

इधर दूसरी ओर द्वि०वि०यु० के बाद यह स्पष्ट

होने लगा था, कि अंग्रेज अब साम्राज्य की रक्षा में सक्षम नहीं। किन्तु पैथिक-लॉरेंस मिशन आदि के माध्यम से अंग्रेजों ने एक ओर 'स्वशासन' में मदद का प्रोफंडा व दूसरी ओर जिन्ना को उकसाने का चक्रव्यूह रचा। नेहरू की पेनी निगाहों से यह सब छिपा न रह सका। उन्होंने कांग्रेस के संविधान सभा में ३ गुनी सीट जीतने के बाद कहा कि, "कांग्रेस किन्हीं भी समझौतों से बँधकर संविधान सभा में नहीं जायेगी और आवश्यकतानुसार प्रस्ताव में फेरबदल भी कर सकती है।"

किन्तु नेहरू के इस बयान से जिन्ना ने पृथकतावादी माँगों को तूल दे दिया। और भी निराशापूर्ण, आजाद व पटेल की नेहरू पर प्रतिक्रियायें रहीं। यद्यपि नेहरू भारत-एकता हेतु पूर्णतया ईमानदार व साफ-दिल थे।

किन्तु १६ अगस्त १९४६ की सुबह कलकत्ता शहर ... और हिंसा का ताण्डव। मुसलमानों की भीड़ द्वारा हिन्दुओं की दुकानों पर, फिर हिन्दू संगठनों के फ़ासीवादी गुण्डों द्वारा मुसलमानों पर हमला। इतने बड़े सद्मे व मुस्लिम लीग के वहशीपन के बावजूद नेहरू ने मुस्लिम लीग से कांग्रेस के साथ सरकार में शामिल होने का प्रस्ताव रखा, किन्तु इसके पश्चात् इंसानियत की दरिदगी के वहशी कारनामों का ताँता लग गया। ...और अन्त हुआ... देश के विभाजन से।

पं० नेहरू देश के प्रथम प्रधानमंत्री हुये। चारों ओर अव्यवस्था व षडयंत्र का माहौल था। देश में गरीबी, भुखमरी, शरणार्थियों का आगमन, उद्योगों का ब्रिटेन की स्टर्लिंग पर आधार व खस्ताहाल सर्वत्र मानो विनाश का ताण्डव था। उस पर महाशक्तियों द्वारा ब्लैकमेल व धमकियों से लेकर सभी हथकण्डों द्वारा विश्व के नवनिमित्त राष्ट्रों को भी वशीभूत करने का प्रयास।

किन्तु जवाहरलाल ने तन, मन, धन से जुटकर इन प्रहारों से हर संभव देश को बचाने का प्रयास किया। यह उनकी दूरदर्शिता व कुशल राजनीति का ही प्रभाव हिमायतियों की कूटनीतिक चालों से देश को मुक्त कराने में सफल हो गये।

गांधी जी, पटेल की मृत्यु से नेहरू के दुबले चेहरे पर झुर्रियाँ और घनी हो गयीं, दृष्टि कठोर बन गयी। किन्तु संयम व ओज नेहरू के उन विशिष्ट गुणों में से थे, कि उन्होंने परिस्थितियाँ और विषम न बनने दीं।

नेहरू देश में वर्गों और वर्ग-संघर्ष की मौजूदगी को समझते थे। किन्तु वे राज्य की राजनीति में बुनियादी स्थान इस प्रस्थापना को देते थे कि वर्ग सहयोग पर आधारित समझौतों द्वारा वर्ग-विरोधों को हल किया जा सकता है। वह विभिन्न वर्गों के बीच सहयोग के जरिये समाज के लयात्मक विकास के पक्ष में थे।

पं० नेहरू ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नवीन स्वतंत्र हो रहे राष्ट्रों को महाशक्तियों के चंगुल से मुक्त तटस्थता की नीति सिखाई।

संभवतः व्यावहारिक तौर पर नेहरू में एक अवगुण था, वे जिस आदर्श का पालन करते, वे समझते कि दूसरा भी उसे निभायेगा। उनके अतिशय शांति प्रयासों की चकाचौंध में राष्ट्र के सुरक्षा के प्रश्न धुँधले पड़ गये। उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में विश्वास, सौहार्द, मैत्री व शांति की जो भारतीय विदेश नीति बनाई दूसरों से उसके पालन की उनकी अंधी कल्पना दुर्भाग्य से, व्यावहारिक पटल पर खरी नहीं उतरी। भारत-चीन युद्ध में हमने बहुत कुछ खो दिया।

एक और गलत कदम जो नेहरू जी ने उठाया था, वह यह कि देश के तीव्रतर आर्थिक विकास के प्रयास में वह मूल से समस्याओं को उखाड़ फेंकना विस्मृत कर बैठे। आज वे समस्यायें बरगद की जड़ों के सदृश सघन व गहरी हो चली हैं।

किन्तु नेहरू की देशभक्ति, कर्मठता, मेधाविता, महानता पर रंच मात्र का संशय मानो भारत माँ को, काल को, इतिहास को धोखा देना है। एक व्यक्ति जिसने अपने आदर्शों से अपने पिता को ही नहीं वरन् इतिहास बदल डाला। जिसने भारत को अतीत के चलचित्रों से खोजा। वर्तमान के संघर्ष से समझा और भविष्य के सौन्दर्य हेतु जीवन अर्पित किया, उसे मेरा शत-२ नमन।

एक साल और बीत गया

यशवन्त देशमुख

एकादश (ख)

एक साल और बीत गया,
टूटा हुआ हर कोई और बूढ़ा हो गया ।

भटकती लहरों में किनारा मिलने की,
जिन आँखों में नई उम्मीदें थीं,
उन आँखों उन उम्मीदों से,
हालातों का दौर जीत गया ।

एक साल और.....

सफेद लवादा ओढ़े कुछ वगुला भगत,
हर जगह शोहरत बटोरते रहे,
सियासती शतरंज का माहील,
ईमान का गला घोट गया ।

एक साल और.....

मजहबी नासमझी-घोखों और-
मतलब साधने की चालों ने,
ऊपर से तो तोड़ा ही था
देश भीतर से और टूट गया ।

एक साल और.....

सियासती गन्दगी के ढेर पर,
लोग सिर्फ चिल्लाते रहे,
अमन-चैन की इस जमीं पर
आतंकवाद का अड्डा बन गया,

एक साल और.....

लोगों की भीड़ बढ़ती रही,
अन्यायों की कोई गिनती नहीं,
पर भीड़ को बचाने वालों का,
अन्याइयों से रिश्ता हो गया ।

एक साल और.....

कालाबाजारी का बाजारी बढ़ता रहा,
गोदामों का पेट भरता रहा,
लोग दो जून की रोटी को तरस गये,
गरीबी का दायरा और बढ़ गया ।

एक साल और.....

नाइन्साफी के बेहूदे डर से,
लोगों की रुहें काँपती रहीं,
“हमें देखना है और हम देखेंगे” का
सिर्फ नारा लगता रह गया ।

एक साल और.....

पंजाब में लोग मरते रहे,
दक्षिण में खून बहता रहा
कुछ अदद घिनौते लोगों के कारण,
आम आदमी का जीना हराम हो गया ।

एक साल और.....

उजड़ गई माँगों को क्या कोई—
उनका सिन्दूर लौटा पाया,
हर सुबह एक बाप ले गई
हर शाम एक बेटा खो गया ।

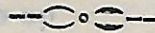
एक साल और.....

उजड़ी बस्ती की आबादी कौन देखे,
टूटे सपने, सहमे लोग, सूनी गोदें,
अनाथ बच्चे बता देंगे बीता वक्त,
क्या दे गया और क्या ले गया ।

एक साल और.....

हर तरह के बिगड़े हालातों को,
हर किसी ने हर तरह सहा,
न रुकने वाले समय के साथ,
हर कारवाँ भी आगे बढ़ गया ।

एक साल और.....



नव वर्ष किसका ?

पीयूष सालवीय
द्वादश (ख)

यह नव वर्ष किसका है ?
अश्रु से स्नात श्रमिकों का,
अथवा रक्त में नहाये आतंकवादियों का ?
सत्तापक्ष की आमदनी का,
या विपक्ष की एकता का ?
धर्म के ठेकेदारों का,
या 'रामायण' और 'महाभारत' का ?
बुद्धिजीवियों की परिचर्चा का,
या सिर उठाती नित नई समस्याओं का ?
केहर की न्यायिक हत्या का,
या दलाली (बोफोर्स सीदा) में कलंकित चेहरों का ?
अथवा विभिन्न स्तर के चुनावों का ?
और इन सबसे अलग,
पेट भरने में व्यस्त,
अपनी समस्याओं से त्रस्त,
जरा से आशवासनों से मस्त,
भारत की निरीह जनता का ?



हमारे लहू का रंग

राजीव सक्सेना 'विभोर'

द्वादश 'क'

धर्म अपना बेच चुके
ईमान अपना बेच चुके
चाहते हैं बेचना
माँ को भी,
हमारे रहते,
यह सम्भव नहीं ।
बेच सकता नहीं कोई इसे,
नहीं हिम्मत किसी में
जो लगा सके दाम ।
नहीं हिम्मत किसी में,
जो उठा सके आँख ।
बड़े-बड़े सूरमाओं ने,
चाहा है हमें हराना ।
लेकिन हम हारते नहीं ।
हमारी दया को
जो मानते हैं अपनी जीत,
उन्होंने देखा नहीं है
हमारे लहू का रंग,
जानते नहीं धार
इस लहू की;
देख लेंगे जिस दिन
उबाल लहू का,
सुक जाएँगी गर्दनें;
हो जायेंगे पानी-पानी ।

“भारतीय स्थिति : क्या वास्तव में निराशाजनक है ?”

विकास आनन्द
द्वादश 'क'

आज की वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए हमें पुनः स्मरण हो आती है, भारतीय दुर्दशा पर गुप्त जी की यह पंक्तियाँ—

“हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी आओ विचारें आज मिलकर ये समस्यायें सभी ॥”

आज हम सर्वत्र यह सुनते हैं कि भारत की वर्तमान स्थिति बहुत निराशाजनक है। क्या वास्तव में ऐसा है? क्या भारत की स्थिति सदैव से ऐसी ही रही है? ऐसे ही अनेक प्रश्न हमारे समाज के सम्मुख एक समस्या बनकर खड़े हो गए हैं। इन सभी प्रश्नों का कारण जानने हेतु यदि हम पुरातन काल से इसका अध्ययन एवं विश्लेषण करें तो अनेक तथ्य हमारे सामने प्रकट होते हैं।

इन सभी तथ्यों में हमें यह बात प्राचीन भारत-वर्ष के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से ज्ञात होती है कि प्राचीन काल में देवभूमि भारत को “सोने की चिड़िया” नाम से पुकारा जाता था। इसे इस नाम से क्यों पुकारा जाता था? अध्ययन करने पर हमें ज्ञात होता है कि—प्राचीन काल में भारत वर्ष में धन-धातु की कोई कमी न थी। हमारे समाज की स्थिति सुदृढ़ एवं सम्मान जनक थी। हमारे ऋषियों-मुनियों ने जन-मानस को उसका वास्तविक उद्देश्य पहचानने तथा उसमें सफलता प्राप्त करने की प्रेरणा दी थी। उन्होंने मनुष्य के जीवन को चार आश्रमों में बाँटा था—१-ब्रह्मचर्य २-गृहस्थ ३-वानप्रस्थ ४-सन्यास।

वास्तव में इस प्रकार जीवन को चार आश्रमों में बाँटकर उन्होंने अपनी दूरदृष्टि का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किया था—यह बात हमें वर्तमान परिवेश में बहुत महत्वपूर्ण प्रतीत होती है। क्योंकि यह निर्विवाद सत्य है कि जहाँ पर टकराव की स्थिति होती है, वहाँ उचित विकास नहीं हो सकता।

हमारे प्राचीन भारतीय समाज में किसी प्रकार की कोई टकराव की स्थिति नहीं थी। अर्थात् पुरानी पीढ़ी का नई पीढ़ी से किसी प्रकार का कोई टकराव न था। परिणाम स्वरूप उस समय के भारतीय समाज ने पर्याप्त विकास किया और उनका यह विकास जीवन के सभी क्षेत्रों में हुआ।

अतः इस प्रकार की एक निश्चित एवं सुनियोजित जीवन-पद्धति का अनुसरण करते हुए हमारा प्राचीन भारतीय समाज विकास के चरम शिखर पर जा पहुँचा। परन्तु प्राकृतिक सिद्धान्त रूप में हम जानते हैं कि जिस किसी भी वस्तु का विकास होता है, उसका ह्रास भी होता है।

इसी नियम के अनुसार आज भारत की वर्तमान स्थिति अत्यधिक शोचनीय हो गई है किन्तु वह निराशाजनक कदापि नहीं है क्योंकि इस सम्पूर्ण विश्व में सिर्फ भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जो ज्ञान (आध्यात्मिक) की दृष्टि से प्राचीन काल से वर्तमान स्थिति तक पूर्ण रहा है। इतिहास साक्षी है कि जब कभी सम्पूर्ण विश्व निराशा में डूबा है तो भारत से ही ज्ञान की एक ऐसी

लहर उत्पन्न हुई है जिसका अनुसरण करके सम्पूर्ण विश्व को संतोष का अनुभव हुआ है।

इसी भारत भूमि में समय-समय पर ऐसे अनेक महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने निरन्तर इस भटकते विश्व को जीवन जीने की एक नई प्रेरणा दी है।

हम प्रायः यह सुनते हैं कि भारत की वर्तमान स्थिति को कोई अकेला व्यक्ति नहीं सुधार सकता। यह कथन सर्वथा गलत है क्योंकि इसी भारतवर्ष में ऐसे-ऐसे भी दिग्गज महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने सिर्फ अपने ही बल पर सम्पूर्ण विश्व की चेतना को झकझोर दिया-जैसे स्वामी विवेकानन्द। हमारे मनीषियों ने भी कहा है कि मनुष्य के अन्दर अनंत शक्ति का भण्डार है। वह जो चाहे कर सकता है। सिर्फ उसके लिए उसे उचित प्रयास करने होंगे। स्वामी विवेकानन्द ने भी कहा है कि-“यदि इस सम्पूर्ण समाज में सिर्फ एक व्यक्ति ही ऐसा बने जो चारित्रिक दृष्टि से प्रबल हो, जिसकी प्रबल इच्छा शक्ति को प्रकृति भी हिला न सके, तथा जो दृढ़ संकल्पी हो तो वह अकेला ही प्रसुप्त भारतीय समाज की जागृति का मुख्य स्रोत होगा क्योंकि हिन्दुओं में ज्ञान की कमी नहीं है। परन्तु वह ज्ञान अब अज्ञान में बदल गया है, उसके अन्दर ताप तो अब भी है किन्तु अग्नि नहीं है। यदि उचित परिस्थितियाँ उत्पन्न की जायें तो वही राख फिर से ज्ञान का मुख्य स्रोत बन सकती है।”

भारत को वर्तमान स्थिति में लाने का मुख्य कारण यह है कि-हम यह कहते फिरते हैं कि अमुक व्यक्ति गलत है परन्तु अपने में विद्यमान दोषों को नहीं देखते। यदि दूसरा गलत करता है तो उस पर व्यंग्य कसते हैं, ताने देते हैं परन्तु स्वयं वही करते हैं।

अतः यदि सम्पूर्ण जन अपनी स्वयं की कमियों पर विचार करके उसे दूर करने का प्रयत्न करें तो निश्चय ही भारत की स्थिति में सुधार आयेगा और भारत वर्ष फिर एक बार अन्य देशों के लिए प्रेरणा स्रोत और अनुकरणीय हो जायेगा।

परन्तु कितने दुर्भाग्य की बात है कि हम भारतीयों ने पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में आकर अपनी जीवन-पद्धति ही बदल डाली है। आज सभी लोग अपना उद्देश्य भूलकर सिर्फ वही एक आयातित जीवन शैली जी रहे हैं। उनकी दृष्टि में जन्म लेना, वयस्क होना और वयस्क होकर धनोपार्जन करते हुए काल के गर्त में समा जाना ही जीवन है। परन्तु गंभीरता पूर्वक विचार करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि जीवन का यह उद्देश्य नहीं हो सकता। जो व्यक्ति इसे ही जीवन समझते हैं उनकी गिनती कपूतों की श्रेणी में की जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। क्योंकि कपूत की यही पहचान है कि दूसरा जैसा करता है, वह भी वैसा ही करता है, वह संघर्षपूर्ण जीवन नहीं जीना चाहता।

भारत की वर्तमान स्थिति का मुख्य कारण आज की दूषित शिक्षा-पद्धति को भी मान सकते हैं। आज की शिक्षा “मनुष्य निर्माणी” शिक्षा न होकर “व्यवसायिक शिक्षा” में बदल गई है। जहाँ प्राचीन काल का भारतीय विद्यार्थी ज्ञानार्जन के लिए अध्ययन करता था वहाँ आज शिक्षा का भवन, “नौकरी की चाह में, विद्यार्थियों का नीड़ है। भिक्षार्थियों की भीड़ है।”

अतः यदि हमें भारत की वर्तमान स्थिति को सुधारना है तो सबसे पहले हमें इस प्रकार की दोष-पूर्ण शिक्षा-पद्धति को सुधारना होगा एवं उसके महत्व को इस समाज में फैलाना होगा और जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्तव्य समझ जायेगा और अपने दायित्व को भली-भाँति निभायेगा तो एक बार हम पुनः—

“सभी सुखी हों, रोग रहित हों, मंगलमय दृश्यों को देखें।

कोई कष्ट न पाये जग में, मानव जब मानवता सीखे ॥”
की कल्पना को साकार देखेंगे। □

मैं हिन्दुस्तानी इंकलाब का चिह्न

दुर्गेश बाजपेयी

सप्तम "क"

[फांसी के एक दिन पहले २२ मार्च १९३१ को सेन्ट्रल जेल के वार्ड नं० १४ में रहने वाले लाहौर षड्यन्त्र केस के अन्य बन्दी क्रान्तिकारियों ने भगत सिंह के पास एक संदेश भेजा कि अगर आप फांसी से बचना चाहते हैं तो बताइये, इन अन्तिम घड़ियों में भी शायद कुछ किया जा सके। भगत सिंह का उत्तर कुछ इस प्रकार था।]

कैदी साथियों !

“जीवित रहने की इच्छा कुदरती तौर पर मुझे भी होनी चाहिये—मैं इसे छिपाना नहीं चाहता। लेकिन मेरा जिन्दा रहना एक शर्त पर है। मैं बन्दी होकर या पाबन्द होकर जिन्दा नहीं रहना चाहता हूँ।”

“मेरा नाम हिन्दुस्तानी इंकलाब का चिह्न बन चुका है और क्रान्तिकारी पार्टी के आदर्शों और कुर्बानियों ने मुझे बहुत ऊँचा उठा दिया है। इतना ऊँचा कि जिन्दा रहने की सूरत में इससे ऊँचा मैं कभी भी नहीं हो सकता।”

“आज मेरी कलाइयाँ लोगों के सामने नहीं हैं।

अगर मैं फांसी से बच गया तो वे जाहिर हो जायेंगी और इंकलाब का चिह्न घूमिल हो जायेगा या शायद मिट ही जाए। लेकिन बहादुरी के साथ हँसते-हँसते मेरे फांसी चढ़ जाने की सूरत में हिन्दुस्तानी माँ अपने बच्चों के भगत सिंह बनने की आरजू किया करेंगी और देश के लिए कुर्बान होने वालों की गिनती इतनी बढ़ जाएगी कि इंकलाब को रोक पाना साम्राज्यवाद की तमाम शैतानी शक्तियों के बस में भी न रहेगा।”

“हाँ एक खयाल आज भी आता है। देश और मानवता के लिए जो कुछ करने की इच्छाएँ मेरे मन में थीं, उनका हजारवाँ अंश भी मैं नहीं कर पाया। अगर स्वतंत्र जिन्दा रह सकता तो शायद इन्हें पूरा करने का मौका मिल पाता।”

“इसके अतिरिक्त कोई लालच मेरे मन में फांसी से बचे रहने के लिए कभी नहीं आया। मुझसे बढ़कर मोभाग्यशाली कौन होगा। मुझे आजकल स्वयं पर बहुत नाज है। अब तो बड़ी बेताबी से अन्तिम परीक्षा की प्रतीक्षा है। मेरी कामना है कि यह और पास आ जाए।”

गीत

□ राधेश्याम मिश्र
आचार्य

सपने में देख सखे तुमने,

कर लिए पराये भी अपने ॥

सोचा भी कभी नहीं ऐसा,

मुझको भी याद करे कोई,

अन्तर्मन ऐसे भाव जगे,

मिलने की बात करे कोई,

ऐसी बढ़ गई मौन पीड़ा,

हो गये सभी छोटे तपने ॥ सपने में देख.....

सन के माँझी का नेह समझ

निश्चल मनुहार दिखाते जो,

हो जाते ऋणी सभी उनके

सुनेह दुलार लुटाते जो,

मंजिल पर पहुँचे वही पथिक

गतिवान किया जिनको तपने ॥ सपने में देख.....

जो अपने लिए नहीं परहित

होनी अनहोनी दिखला कर,

भरते मन चाहे भावों को

पथरीले दिल को पिघलाकर,

ऐसे लोगों का यशोगान,

लग जाता नाम जगत जपने ॥

सपने में देख सखे तुमने,

कर लिये पराये भी अपने ॥

ऐसे थे हमारे डाक्टर जी

—श्रीनारायण आचार्य

“देश के लिए मरने की आवश्यकता नहीं, देश के लिए जीने की आवश्यकता है।” डा० जी ने यह दिखा भी दिया, कि देश के लिए कैसे जिया जाना चाहिए। जिसने २०० पौण्ड से अधिक की बलिष्ठ विराट काया जिसे देखकर बालक तो डर ही जाये। केवल इक्यावन वर्ष की अल्पायु में ही गला डाली। मृत्यु के पहले लम्बर पन्चर करने पर शरीर के अन्दर खून की एक बूँद भी निःशेष न रही हो अर्थात् रक्त की हर बूँद जिसके लिए राष्ट्रदेव को समर्पित थी कोई ऐसा क्षण नहीं था जिसमें अपने लिए उन्होंने कोई विचार भी किया हो, हर क्षण राष्ट्र देव के चिन्तन में।

अपने जीवन के हर क्षण में सफल रहने वाले डा० जी ने असम्भव सा दिखने वाला कार्य ऐसे वातावरण में किया, जब जवाहर लाल नेहरू जैसे राजनेता “मुझे हिन्दू न कहो और चाहे कुछ भी कह लो।” “हिन्दू स्वभाव से कायर है, तथा आम मुसलमान एक गुण्डा” महात्मा गाँधी जी जैसे नेता कहते थे इसी उद्देश्य से उन्होंने राष्ट्रीय स्वयं सेवक की स्थापना करके उसके माध्यम से अपने जीवन काल के अन्त में ही राष्ट्र व्यापी, सशक्त, अनुशासित एवं राष्ट्र के लिए जीवन जीने वाले व्यक्तियों का प्रभावी संगठन खड़ा किया। जिससे प्रभावित होकर अपने विदेश गमन के पूर्व नेताजी सुभाषचन्द्र बोस डा० साहब से मिलने नागपुर आये, लेकिन दुर्भाग्य, कि बात न हो सकी डा० साहब मृत्यु शैया पर अपने जीवन का अन्तिम संघर्ष कर रहे थे।

जिस संगठन की चर्चा आज भय से, या आदर से, निराशा से या आशा से सर्वत्र ही होती है बी. बी. सी

ने जिसे विश्व का सबसे बड़ा राष्ट्रवादी सामाजिक संगठन कहा। वह व्यक्ति कितना तेजस्वी रहा होगा, जिसके सम्पर्क में आने वाले जाने कितने लोग उनसे प्रेरणा पाकर अपने समस्त जीवन को राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्यकर्ता के रूप में जीने के लिए खड़े हो गये, जबकि देखा जाये तो ऐसे समय में अपने पत्नी बच्चों के अलावा लोग समाज कार्य के लिए समय देने के लिए तैयार ही नहीं होते।

ऐसे सफल व्यक्ति के जीवन से प्रेरणा पाने के लिए जन्म सदी के अवसर पर याद करना अत्यन्त आवश्यक है। उनका जीवन कितनी कठिनाइयों व संघर्षों में व्यतीत हुआ उनको कौन सा सुख अपने जीवन काल में मिला, यह देखना आवश्यक है—

जन्म के साथ डा० जी को अपने पारिवारिक वातावरण में मिली-बिपन्नता, अशिक्षा, और अत्यन्त सामान्य परिवार जिस में पल कर कोई समाज कार्य भी करेगा ऐसे सोचना ही मुश्किल है। मिली तो केवल एक बात-अभिजात ज्वलन्त राष्ट्रभक्ति। जिसके कारण ५-६ वर्ष की ही छोटी सी उम्र में अपने घर से दिखने वाले सीता-वर्डी किले पर अंग्रेजी हुकूमत का यूनियन जैक उतारने के लिए अपने घर के एक कमरे से सुरंग खोदने का कार्य अकेले नहीं, अपने दो-अन्य साथियों के साथ उन्होंने प्रारम्भ किया। ये भाव, ये कर्तव्य क्या इस उम्र में किसी बालक में स्वाभाविक हैं ?

आठ वर्ष की आयु में ही, रानी विक्टोरिया के राज्यारोहण के साठ वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में जब स्कूल में मिठाई बँटी तो उसे विदेशी का सम्मान

कहकर कूड़े में फेंक दी। बारह वर्ष की उम्र में एडवर्ड सप्तम के राज्यारोहण के अवसर पर खुशी मनाई जाने के लिए समारोहों में शामिल होने के बजाय, अपने मित्रों के बीच में उन्होंने वक्तव्य दिया कि यह अपने लिए तो शर्म की बात है। तेरह वर्ष की आयु में एक ही दिन प्लेग से माता एवं पिता दोनों चल बसे। अब विपन्नता इतनी कि भोजन तक की परेशानी। ऊपर से बड़े भाई के लिए दो-दो घण्टे भंग घोटना। ऐसे घुटन भरे वातावरण में कोई पढ़ाई भी नहीं कर सकता।

हाई-स्कूल में पढ़ते समय दमनकारी रिस्से सरकुलर का विरोध करने के लिए अपने नील सिटी हायर सेकेन्डरी स्कूल में उन्होंने छात्रों का अभेद्य संगठन खड़ा कर दिखाया। स्कूल निरीक्षण के समय अंग्रेजी डिप्टी इन्स्पेक्टर का वन्देमातरम् से स्वागत हुआ। अन्ततः विद्यालय एवं छात्रों के हित में स्वयं का निष्कासन ग्रहण किया। राष्ट्रीय पाठशाला यवतमाल में तुरन्त प्रवेश लिया लेकिन सरकारी अकृपा के कारण कुछ ही दिनों में दुर्भाग्य से वह भी बन्द हो गई। अपने अध्ययन के इस काल में भी उन्होंने वर्ष बरबाद होने से बचा लिया, परीक्षा दी और पास भी हुए।

हमारे डा० जी ऐसे थे जिन्होंने आगे की पढ़ाई करने के लिए कलकत्ता चुना, जिससे कि क्रान्तिकारियों के संगठन की कार्य प्रणाली समझ सकें तथा उसमें स्वयं भाग ले सकें। शीघ्र ही वे अनुशीलन समिति में प्रमुख क्रान्तिकारियों में से एक हो गये। लेकिन उसके द्वारा जन-जागरण एवं सर्व सामान्य का सक्रिय सहयोग नहीं हो सकता ऐसा मानकर सफलता पूर्वक उस संगठन से बाहर भी निकल आये नहीं तो क्रान्तिकारियों के लिए तो अंग्रेजों का फौसी का फन्दा ही निर्धारित था। क्रान्तिकारियों के द्वारा क्षणिक उवार तो जनमानस में आता था लेकिन सर्वसामान्य उसमें भाग नहीं ले सकता था, जिससे कि अंग्रेजों को देश के बाहर किया जा सके। वहां से पढ़ाई पूरी करके नागपुर लौटने पर लोकमान्य तिलक जी के नेतृत्व में कार्य प्रारम्भ

किया। शीघ्र ही प्रान्तीय नेताओं में अपना उन्होंने स्थान भी बना लिया। १९२० ई० में वे कांग्रेस की प्रान्तीय समिति में सहस्रंत्री थे। लेकिन दुर्भाग्य से देश को लोकमान्य तिलक का विछोह सहना पड़ा। खिला-फत आन्दोलन के समय कांग्रेस की मुस्लिम तुष्ठीकरण नीति उनको न जँची। इसके लिए उन्होंने महात्मा गांधी से बातचीत भी की। लेकिन उनके विचार से कि “विना हिन्दू-मुस्लिम एकता देश स्वतंत्र होता असंभव है” कांग्रेस के सक्रिय कार्यकता वे आगे न रह सके। लेकिन राष्ट्र की दुर्दशा के लिए हिन्दू जिम्मेदार है, इसके स्वर्णिम भविष्य का आधार भी हिन्दू होगा। अतः भारत में रहने वाले सबसे बड़े समाज हिन्दू समाज को ही संगठित करने की आवश्यकता उनकी सर्वोपरि लगी क्योंकि हिन्दू दुर्बल होने पर देश की स्वतंत्रता स्थिर नहीं रह सकती। अपने जीवन के ३५ वर्षों के निचोड़ स्वरूप उन्होंने राष्ट्र की स्वतंत्रता तथा उन्नति के लिए समाज सशक्त करने का दुर्लभ कार्य अपने हाथ में लिया जिसे अपने जीवन काल में सत्य होते हुए उन्होंने लोगों को दिखा भी दिया।

उनके कार्य के प्रति लोगों में कितनी उपेक्षा थी; जब वे नागपुर से संघकार्य के लिए पूना अपने मित्रों के आग्रह पर गये तो उनके कई पुराने मित्रों ने कहा, “ये नागपुरी सन्तरे यहाँ नहीं बिकेंगे।” उन्होंने हँसकर कहा कि “बाजार में रखकर देखेंगे” आज बताने की आवश्यकता नहीं कि ये सन्तरा (राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की शाखायें) पूना में ही नहीं सारे विश्व में जहाँ-जहाँ हिन्दू है, जा रहा है। व्यंग्य में लोग कहते थे कि ये डाक्टरी की पढ़ाई करके क्या व्यर्थ का कार्य कर रहे हैं क्या हिन्दू कभी संगठित हो सकता है? हिन्दू संगठन तो मेढक तौलने जैसा कार्य है। लेकिन इसे सम्भवकर दिखाया डा० साहब ने। चार हिन्दू तो तभी एक ही दिशा में चलते हैं जब एक शव उनके कंधे पर ही। इसके अतिरिक्त विदेशी शासन की उपस्थिति में मैदानों पर राष्ट्रीय संगठन खड़ा करने का तो कोई सपना भी नहीं देख सकता था।

डा० जी अजातशत्रु थे। १९३३ ई० में मध्य प्रान्त ने सरकुलर निकालने की तैयारी की, कि संघ की शाखा में सरकारी कर्मचारी न जाये, ये साम्प्रदायिक हैं। लेकिन प्रान्तीय सभा की मीटिंग में ही सरकुलर पर इतनी चर्चा व आलोचना हुई कि सम्बन्धित मंत्री महोदय को इस्तीफा देना पड़ा, बाद में प्रान्तीय सभा भी भंग हो गई।

कांग्रेस की नीतियों के कारण तो देश को १९४७ में एक विभाजन स्वीकारना पड़ा लेकिन डा० जी ने असम्भव से लगने वाले कार्य को जिस सफलता पूर्वक अपने जीवन काल में ही खड़ा कर दिखाया उसके बढ़ते स्वरूप के कारण आज की राजनीति भी हिन्दू

जागरण को तजर अंदाज नहीं कर पा रही है। हिन्दू के नाम पर अब लोग साथ आने लगे हैं। हिन्दू के नाम पर बड़े-बड़े सम्मेलन हो रहे हैं। यह उदात्त जीवन पद्धति जो किसी अन्य देश के किसी समाज की नहीं है इसका संरक्षण करना आवश्यक था जिसे डा० साहब ने करके दिखाया। केवल हिन्दू संस्कृति में ही वह शक्ति है, कि वह विश्व की अन्य संस्कृतियों को साथ लेकर चल सकती है। विश्व में शान्ति स्थापित कर सकती है, अन्यथा मुस्लिम, ईसाई तथा कम्यूनिज्म संस्कृतियाँ तो अन्य सभी संस्कृतियों को नेस्तनाबूद करके स्वयं छा जाने को आतुर हैं। ऐसे समय में डा० जी के प्रारम्भ किये हुए कार्य को अधिक शक्ति से करने की आवश्यकता है।



मनुष्य अनजाने ही अपने चारों ओर के समाज से संस्कार ग्रहण करता रहता है। उसमें समाज का प्रत्येक व्यक्ति 'शिक्षक' का काम करता है। 'संस्कार' यद्यपि दोनों ओर से चलने वाली प्रक्रिया है, तथापि मानस को अनुकरण (Imitation), सम्बेदना (Sympathy) एवं सूचनात्मक (Suggestion) प्रवृत्तियों के नियम के अनुसार समर्थ कर्ता की क्रियायें ही प्रभावकारी होती हैं। स्वभावतः पिछली पीढ़ी के आचार-विचारों का संस्कार नई पीढ़ी पर पड़ता है। माता-पिता, परिजन, पुरजन, गुरुजन, अग्रपाठी, सहपाठी, समाज के नेता और अधिष्ठाता—ये सभी विभिन्न प्रकार से निरन्तर संस्कार डालते रहते हैं।

बजरंग-वंदना

हृदय में श्रीराम निष्काम सेवा भाव लिए,
सिध गये लौघ राम भक्त हनुमान हैं ।
वाटिका उजाड़ दैत्य दल को पछाड़ धाय,
लंका को जराय सब तोरे अभिमान हैं ।

असुर आँखों में लगा कपि की कला का कांटा,
लंका गयी डोल कपि ऐसे बलवान हैं ।
राम चीन्हा दैके सिय शीश फूल लाये साथ,
माथ को नवाय खड़े चतुर सुजान हैं ॥

विद्यालय

तक्र में समाज के विराजे नवनीत मानों,
अतीत के आदर्श की मथानी बनायी है ।
धर्म-ज्ञान डोरी मानो मंत्रों की मधुर ध्वनि,
श्रद्धा के सुमन से ही आसनी सजायी है ।

ज्ञान शुभ्र ज्योति में न क्रोध अज्ञान रहे,
लीन निज-कर्म में सुगन्धि शुचि छायी है ।
चलत मथानी सहयोग का है पानी मिला,
संस्था नवनीत देख मही मुसकायी है ॥

त्यग्य

आज वन राज सब सोये हैं समाज बीच,
रीक्षहु कौ मार स्यार आसनी लगाये हैं ।
खाय-खाय मांस मधु भासहु भुलाने सब,
भेरवी संगीत कंठ दुन्दुभी बजाये हैं ।

चहुँ दिसि डोलत हैं भेड़ियों के भूखे झुण्ड,
गूलरों के फूल लोक तंत्र ही छुपाये हैं ।
यक्ष रूप वृक्ष सब पूँछते ही रहे प्रश्न,
बगुलों की प्यास ने सरोवर सुखाये हैं ।

कुसंगति

सूरत से दिन का महूरत बदल जाय,
ऐसे नर नीच के समीपहुँ न जाइये ।
विष बरसावे जब राह में भुजंग कोई,
सावधान होके निज अंग ही बचाइये ।

दृष्टि में समष्टि फूल, शूल का स्वभाव घरे,
ऐसे क्रूर कंस को न भूल से सराहिये ।
ज्ञान अभिमानी, ब्यभिचारी के विनाश हेतु,
हाथ जोड़ अब रघुनाथ को बुलाइये ।

सुभाष शर्मा, आचार्य

लोकनायक तुलसी

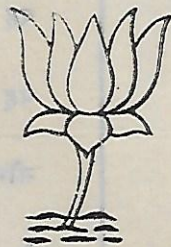
आशीष कुमार, एकादश (क)

वह क्षुब्ध, कुण्ठित
वह तृष्णित भारत ।
वह प्रवाहित, बन्धित
वह विषटित भारत ॥
दो विरोधी संस्कृतियों—
में पिसता वह भारत ।
वह भारत नहीं,
किञ्चित और नहीं था ॥
वह मुगलों का शासन,
वह बढ़ता अनाचार ।
वह पत्नोन्मुख हिन्दुत्व,
वह द्वेष का सन्चार ॥
वह तुर्कों की वासना—
से शोषित नार ।
वह बाल विवाहित, सती, अबला,
वह विधवा लाचार ॥
यह कैसा भारत,
यह कैसा हिन्दुत्व ।
यह कैसी होती,
परम्पराओं का प्रसार ॥
वह विकृष्ट भारत,
यह मरता हिन्दुत्व ।
यह बढ़ती अशांति,
में जन्मता अनाचार ।
जन्मा तब एक,
ऐसा लोकनायक ।

प्रवर्तक, समन्वयक—
व समाज सुधारक ॥
की रक्षा जिसने,
हिन्दुत्व की ।
की जिसने सत्य, शिवं, सुन्दरं
की अभिव्यक्ति ।
क्रिया जिसने ज्ञान, कर्म, भक्ति,
में समन्वय ।
किये दूर जिसने शैव, वैष्णव, शाक्त,
के विपरीत सन्तव्य ॥
वह तुलसी दास
था राम का गुलाम ।
वह दर्शन का स्रोत,
वह हिन्दुत्व की पहचान ॥
वह हिन्दी का सूर्य,
वह हिन्दवी का नायक ।
वह कविता का नहीं,
मंत्र का अभिव्यंजक ॥
वह समाज का नाथ,
था कभी बालक अनाथ ।
सौभाग्य से मिला,
उसे गुरु नरहरि का साथ ॥
वे ही बने पालक,
गुरु-मंत्र धारक ।
राम-कथा के,
तुलसी पर संभारक

विवार हुआ जब
 रत्नावली से—
 हुए प्रसित तुलसी
 सौन्दर्यशक्ति से ।
 किन्तु जन्मे तो थे तुलसी,
 जनकल्याण हेतु ।
 अतः मायारूपिणी पत्नी
 ही बनीं इस मायासागर में सेतु ॥
 व उस विदुषी पत्नी
 की भर्त्सना से ।
 मुक्त हुए तुजसी—
 सांसारिक वासना से ॥
 हुआ उत्पन्न तब,
 एक उत्कृष्ट वैरागी ।
 राम का अनन्य भक्त,
 महा समन्वयवादी ॥
 चरित मानस राम का,
 तब तुलसी ने लिखा ।
 समस्त संभव परिस्थितियों—
 का आदर्श रखा ॥
 सनातन धर्म का
 दिखाया शाश्वत रूप ।
 शोषित समाज सम्मुख,
 रखा राम राज्य का रूप ॥

जातिगत कट्टू विषमताओं को,
 सुनाया निषाद, शवरी प्रसंग ।
 तानाशाही शासन—युग में,
 तुलसी ने समझाया लोकतन्त्र ॥
 यह साहित्य का कलाकार
 ही नहीं ।
 यह मात्र राम का
 अनन्य भक्त ही नहीं ॥
 यह तो है—युमद्रष्टा
 व लोक नायक भी ।
 धर्म रक्षक
 व समाजोन्नायक भी ॥
 बिरले ही साधक—
 हुए तुलसी सदृश ।
 साधना जिनकी अनन्त
 वर्षों तक कलांतों को करती तुष्ट ॥
 तुलसी के काव्य ने—
 किया स्वयं काव्य को ही गौरवान्वित ।
 तुलसी बन सूर्य
 ज्ञान रश्मियों से करते क्षिति-आलोकित ॥
 तुलसी तो हिन्दी, हिन्द, हिन्दुत्व
 की सम्मिलित प्रतिभा हैं ।
 वे तो मेरी मां भारती
 की शीतल प्रभा हैं ॥



व्यक्तिवाद अधर्म है । राष्ट्र के लिए काम करना धर्म है । राष्ट्र-कार्य
 को साधने के लिये जो कुछ आ पड़े, करना ही उचित है । सच, झूठ
 सबकी कसौटी समष्टि का हित है ।

प्रतिभा खोज कहानी प्रतियोगिता

अंकुर वर्ग प्रथम पुरस्कार प्राप्त
अमित प्रकाश गुप्त अष्टम 'क'

विद्यार्थियों की साहित्यिक अभिरुचि के जाँचने-परखने और सहज साहित्यिक प्रतिभा को प्रोत्साहित करने के लिये, विद्यालय में "साहित्यिक प्रतिभा खोज" प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इसके लिये षष्ठ से अष्टम तक अंकुर वर्ग, नवम एवं दशम के लिये पल्लव वर्ग तथा एकादश एवं द्वादश के लिये मुकुल वर्ग—कुल तीन वर्ग बनाये गये थे। यहाँ प्रस्तुत हैं प्रत्येक वर्ग में से चुनी गई प्रथम तीन-तीन कहानियाँ तथा तीन-तीन कवितयें।

मदद

मोहन साइकिल से पार्क जा रहा था। रास्ते में एक लड़का उसके सामने आ गया। उसने झट ब्रेक लगाया परन्तु वह लड़का तब तक लड़खड़ा कर गिर चुका था। मोहन ने तुरन्त उसको उठाया और पूछा, "तुम्हारा क्या नाम है?" लड़के ने मासूमियत से कहा, "बाबू जी! हमारा कोई नाम नहीं। कोई मुझे बदमाश कहता है, कोई नालायक और कोई गधा।" यह सुनकर मोहन को बड़ा दुःख हुआ। उसने पूछा, "तुम्हारे घर में कौन-कौन है? तुम्हारा घर कहाँ है?" लड़के ने कहा, "हम फुटपाथ पर रहते हैं। मेरे घर में मेरी बूढ़ी बीमार माँ और छोटी सी बहन है।" मोहन ने पूछा, "तुम क्या करते हो?" लड़के ने जवाब दिया, "मैं और मेरी बहिन सड़कों पर भीख माँगते हैं। जो पैसे इकट्ठे होते हैं उससे रूखा सूखा खा लेते हैं। जिस दिन पैसे नहीं मिलते उस दिन भूखे ही सो जाते हैं। कभी कोई हमें डाँटता है, कभी कोई मारता है।" 'क्यों?' मोहन ने पूछा। लड़के ने कहा, "क्योंकि हम गरीब हैं हमारे पास पैसे नहीं हैं।" मोहन ने पूछा, "तुम कोई काम क्यों नहीं करते?" "हमें कोई काम देता ही नहीं" लड़के ने कहा। मोहन की आँखों में आँसू आ गये। मोहन उसके साथ उसके घर गया। साइकिल से उसके घर जाते समय उसने कहा, "मैं आज से तुम्हारा नाम विट्टू रखता हूँ।" उसके घर जाकर उसने देखा वह घर नहीं था बल्कि ऐसा घर था जिसका दरवाजा फुटपाथ

की रेलिंग थी और उसकी छत आसमान की थी। बनाने और खाने के बर्तनों की जगह जूठे हुँडे और सकोरे थे।

उसकी माँ बीमार थी और खाँस रही थी और उसकी बहिन दपती का पंखा झल रही थी। लड़के ने कहा, "यही हमारी छोटी सी दुनिया है। यहीं हम खाते हैं, पीते हैं, और सोते हैं।" मोहन को लगा कि उसे बिट्टू की सहायता करनी चाहिये। मोहन ने कहा, "अच्छा मैं चलता हूँ, कल फिर आऊँगा।"

मोहन एक बहुत अमीर घर का लड़का था। वह घर जाकर पलंग पर लेट गया। वह बहुत उदास था। तभी उसकी माँ ने कहा, "बेटा! तुम बहुत उदास हो, क्या बात है? दोस्तों से झगड़ा हो गया है क्या?"

मोहन: "नहीं।"

माँ: "होम वर्क नहीं पूरा हुआ?"

मोहन: "नहीं।"

माँ: "फिर क्या बात है?"

मोहन: "कुछ नहीं।"

माँ: "कुछ बात तो जरूर है।"

मोहन: "माँ! मैं एक गरीब लड़के के बारे में सोच रहा हूँ। उसका नाम बिट्टू है उसके घर में एक बहिन और उसकी बूढ़ी बीमार माँ है। माँ! उनके पास

घर भी नहीं है वे फुटपाथ पर रहते हैं। माँ ! अपनी पुरानी कार का गैरेज खाली पड़ा है उसमें उनको रह लेते दो। और फिर, तुमको एक नौकर की जरूरत भी है, वह भी मिल जायेगा।”

माँ : “ठीक है, पर ये गरीब लोग अच्छे नहीं होते।”

मोहन : “माँ ! तुम्हें मैं विश्वास दिलाता हूँ कि वह अच्छा लड़का है।”

माँ : “अच्छा, ठीक है। कल तुम उसको मेरे पास ले आना।”

मोहन : “माँ ! तुम कितनी अच्छी हो।”

मोहन को उस रात नींद नहीं आई। सुबह जल्दी उठकर, नहा-धोकर तैयार हो गया। उसने अपने जेब-खर्च के पैसों से बिस्कुट, पेस्टी, टाफियाँ और चाँक-लेट खरीदे और यह सारा सामान लेकर वह बिट्टू के पास गया।

बिट्टू ने सोचा भी नहीं था कि मोहन फिर आयेगा।

मोहन : “ये लो तुम्हारे लिये।”

बिट्टू और उसकी बहन भूखे थे। वे बिस्कुट खाने लगे।

मोहन : “बिट्टू ! तुम्हें काम चाहिये न ?”

बिट्टू : “हां, पर क्यों ? तुम पूछकर क्या करोगे ?”

मोहन : “तुम मेरे घर में काम करोगे ? वहां तुम्हें रहने के लिये जगह भी मिल जायेगी।”

बिट्टू : “ठीक है।”

मोहन : “तुम्हें मेरी माँ ने बुलाया है।”

बिट्टू : “चलो।” बिट्टू के चेहरे पर मुस्कान तैर गई।

घर पहुँच कर अपनी माँ से मोहन ने कहा,

“माँ ! बिट्टू आ गया।”

माँ : “आज से तुम मेरे यहाँ काम करोगे।”

बिट्टू : “ठीक है।”

अगले दिन बिट्टू की माँ और बहन भी मोहन के घर आ गये।

मोहन को साथी मिल गया, बिट्टू को घर और सबको खुशी।



द्वितीय पुरस्कार प्राप्त

कोमल हृदय

अभिषेक कुमार गुप्त अष्टम 'क'

रविवार का दिन था। प्रवेश अपने घर में खेल रहा था। वह बहुत ही दयालु स्वभाव का था। वह ३ बजे अपनी माँ से कहकर अपने दोस्तों के साथ पार्क में क्रिकेट खेलने गया। वह क्रिकेट खेल ही रहा था तभी उसकी निगाह एक भोले से चेहरे पर पड़ी। प्रवेश समझ गया कि वह किसी गरीब परिवार का लड़का है। अचानक उसने देखा कि एक गेंद उसके सर में लग गई और जोर से उसके सिर से रक्त बहने लगा। उसने पीछे मुड़कर देखा कि कुछ बड़े लड़के क्रिकेट खेल रहे थे। वह गेंद उन्हीं की थी। प्रवेश के देखते ही वे व्यक्ति अपना

सामान उठाकर चले गए और लड़के की तरफ बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया, जो एकदम असहाय सा था। प्रवेश ने अपना रूमाल निकाला और उसके रक्त को पोंछना शुरू किया परन्तु घाव इतना गहरा था कि रक्त रुकने का नाम ही न ले रहा था। अचानक उसे एक तरकीब सूझी कि साइकिल में बैठाकर इसे अस्पताल ले चले परन्तु मम्मी के डर से यह तरकीब भी बेकार गई। उसने अपने दोस्तों से सहायता के लिये कहा तो वे भी हँस कर चले गए। तभी अचानक उसको ध्यान आया कि उसके पापा ने सामान लाने को जो १००

रुपये दिये थे। वे उसकी जेब में पड़े हैं। उसने एक टैक्सी की और उसे पास ही के उर्सला हॉस्पिटल में ले गया। दरअसल उसके पिता भी जाने माने सर्जन हैं। फिर भी उसे वहाँ के डाक्टर को अपने पिता का नाम नहीं बताया और उस पैसे से जो कि उसके पास थे उससे उसने उसकी दवाइयाँ खरीद लीं। तत्पश्चात अपने घर के गेस्ट हाउस में ले आया। उसकी माँ को जब यह बात मालूम हुई तो उसे अपने बेटे के कार्य पर गर्व हुआ। दूसरे दिन प्रवेश उस लड़के के साथ उसके घर गया और उसके घर की दशा जब उसने देखी तो आँखों में जैसे आँसू की नदियाँ बहने लगी हों। वह सोच भी नहीं सकता था कि कोई घर ऐसा भी हो सकता है जहाँ घर जैसा कुछ भी न हो और खाने को भोजन भी नसीब न हो। उसने पूछा, “तुम्हारे माँ-बाप कहाँ हैं?” उत्तर के रूप में उस लड़के की आँखों में आँसू आ गए।

बाद में उसने बताया कि वह और उसकी बहन दोनों अनाथ है। यह बात सुनकर प्रवेश का हृदय करुणा से भर गया। उसने पूछा, “तुम क्या करते हो? और क्या खाते हो?” तो उसने कहा, “हम भीख माँगते हैं पूरे दिन माँगने में जो कुछ भी मिल जाता है उसी को बाँटकर खा लेते हैं।”

प्रवेश ने कहा, “आज से तुम मेरे यहाँ रहोगे।” और वह उन्हें लेकर अपने घर आया। और अपनी माँ से कहा, “माँ आज से ये दोनों यहीं रहेंगे। क्योंकि ये बेचारे अनाथ हैं।” माँने उसके प्रस्ताव को मान लिया।

उस दिन से वे दोनों प्रवेश के यहाँ रहने लगे। उसकी माँ जब तीनों को एक साथ हँसते-खेलते देखती है तो अपने बेटे के भोलेपन पर गर्व करती है।



तृतीय पुरस्कार प्राप्त

“परोपकार”

गौरव आनन्द मिश्र

सप्तम् 'क'

उस दिन सुबह सन्दीप बड़ा खुश नजर आ रहा था। पूछने पर उसने बताया कि आज नैतिक शिक्षा की परीक्षा है और उसके बाद जो प्रथम आयेगा उसे एक पुरस्कार मिलेगा तथा उसने बड़े विश्वासपूर्वक कहा “मैं आज इसलिये भी बहुत खुश हूँ कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं प्रथम आऊँगा क्योंकि मैंने इस परीक्षा के लिये बड़ी मेहनत की है।”

इसके बाद वह खुशी से घर से विद्यालय की ओर चल दिया। विद्यालय व घर के बीच मार्ग में बाजार पड़ता और चूँकि वह विद्यालय साइकिल द्वारा जाता था, अतः उसे बाजार में साइकिल बड़ी सम्भाल कर चलानी पड़ती थी।

अचानक ही उसकी नजर एक बड़ी गति से जाती हुयी गाड़ी पर पड़ी। उसके देखते ही देखते वह गाड़ी एक छोटे से, लगभग ६-७ वर्ष के बालक को कुचलते हुये चली गयी। गाड़ी के चालक ने पीछे जाकर उस बच्चे को मदद करने की सोची पर वह यह सोच कर वहाँ नहीं गया कि बाद में पुलिस आदि का झमेला होगा और बेहज्जती भी होगी। इसलिये अपनी गाड़ी लेकर चलता बना।

इधर सन्दीप उस बालक को देखकर चिन्ता में पड़ गया। जहाँ Accident हुआ था वहाँ बहुत भीड़ इकट्ठी हो गयी। लेकिन कोई उस बच्चे को उठाने को तैयार नहीं था। वह बच्चा जमीन पर पड़ा कराह रहा

था। पास जाकर जब संदीप ने ध्यान से देखा तो लग रहा था कि जैसे वो बड़ा गरीब परिवार है।

अब संदीप के दिल में परोपकार की भावना जाग उठी। उसके दिल ने उसे झकझोर दिया। उसने सोचा कि आज मैं नैतिक शिक्षा की परीक्षा देने जा रहा हूँ और मैं एक भला काम भी न करूँ। और फिर मैंने परोपकार का पाठ सबसे अधिक अच्छी तरह से याद किया है।

बिना कुछ सोचे-समझे वह उस बालक के पास पहुँच गया। और तुरन्त उसे अपनी साइकिल पर बैठा फौरन पास के अस्पताल के पास पहुँचा तब उसका ध्यान उस बच्चे के सिर पर गया। सिर पर से खूब खून निकल रहा था। जिसके कारण वह बच्चा बेहोश हो गया था। वह और तेजी से साइकिल चलाकर अस्पताल पहुँचा और उसके हाथ-पैर पर सिर पर पट्टी कराई।

और उसके होश में आने का इन्तजार करने लगा। करीब आधे घण्टे बाद उसे होश आया। संदीप फौरन उसके कमरे में पहुँच गया। और उसका नाम पूछा तो उसने बताया “मेरा नाम सुखाराम है।” संदीप ने फिर उससे कारण भी पूछा कि तुम बाजार में क्या कर रहे थे? उसने बताया “मैं अपनी माँ के लिये दवाई लेने गया था। मेरी माँ बहुत बीमार है। मेरे पिता की मृत्यु हो चुकी है अतः मैं ही एक सेठ के घर में काम करता हूँ और जब मैंने उससे छुट्टी माँगी तो उसने मुझे खूब मारा और घर के बाहर धकेल दिया और मेरे पैसे जो मैं अपनी माँ की दवाई के लिये ले जाते थे वो भी उसने मुझसे छीन लिये। इतने में ही एक मोटर गाड़ी

आयी और मुझे कुचलती हुयी चली गयी।”

अब उसने सुखाराम से उसके घर का पता पूछा जो कि एक गन्दी गली में था। साथ ही उस सेठ का पता भी पूछा जिसके यहाँ वो काम करता था।

उसने फौरन साइकिल उठाई और दवाइयों की दुकान पर पहुँच गया। वहाँ से उसने, सुखाराम की माँ की दवाइयाँ लीं जो उसके अपने पैसे की थीं। और उसकी माँ ने उसे दिये थे और उसके घर जाकर उसने, उसकी माँ को दवाइयाँ दीं। उन्हें खाने का भी समय बता दिया। उसकी माँ ने उसे धन्यवाद दिया और सुखाराम को उसकी माँ के हवाले भी कर दिया।

अब वह पुलिस स्टेशन पहुँचा और उस सेठ के घर पहुँच कर उसके अत्याचार के जुल्म में उसे गिरफ्तार कराया।

रात सब कार्य करने के पश्चात् उसे ध्यान आया कि उसकी तो नैतिक शिक्षा की परीक्षा है। वह तुरन्त विद्यालय की ओर भागा। वहाँ पहुँचकर उसने घड़ी देखी तो पता चला कि परीक्षा खत्म होने में केवल १० मिनट शेष हैं।

कक्षा में पहुँचा तो दंग रह गया। वहाँ घायल पर अब सुरक्षित सुखाराम व उसकी बीमार माँ खड़ी उनके अध्यापक को संदीप के बारे में बता रही थीं। जैसे ही अध्यापक ने उसे देखा वैसे ही उन्होंने ऐसे गले लगा लिया और सबसे कहा “सच्ची नैतिक शिक्षा की परीक्षा तो संदीप ने दी है।” इसके बाद उसे प्रथम पुरस्कार दिया गया और यही नहीं उसका नाम और फोटो अगले दिन के अखबार में उसके कार्य सहित छपी थी।



जब वह बहुत रोया

मुनि रूप त्रिपाठी "नवम क"

दिन की चमचमाती धूप लोगों के बदन को जला रही थी। मई का महीना प्रारम्भ हो चुका था। कालेज के चुनाव हो चुके थे और छात्र-संघ का गठन भी हो चुका था। अब विजयी नेता अपने जुलूस निकालने की तैयारी में लगे थे। इस बार के चुनाव में वीरेन्द्र विजयी हुआ था।

वीरेन्द्र शहर के एक प्रसिद्ध उद्योगपति का लड़का था। वह मेहनती था और पढ़ाई में भी कक्षा में प्रथम तो न आता था परन्तु बहुत अच्छा स्थान प्राप्त करता था। हाई-स्कूल तथा इण्टर में उसने ७५ प्रतिशत से अधिक ही अंक प्राप्त किये थे। परन्तु कालेज में आकर वह अपना स्थान और स्तर खो चुका था तथा खोखली राजनीति के बहाव में बह गया था।

यहाँ पर अब वीरेन्द्र का जुलूस निकल चुका था और वह झुक-झुक कर सभी छात्रों का अभिवादन कर रहा था। ऐसा लगता था कि उसका अभिवादन खोखलेपन से भरा है परन्तु इसे कोई समझ नहीं रहा था। जुलूस आगे बढ़ता गया और धूप भी बढ़ती गई। इस बार मई में ही इतनी गर्मी पड़ रही थी कि पेड़-पौधे तक झूलस गये थे।

एक वृद्ध महिला चिन्तित भाव से और उदासीन होकर तेजी से चल रही थी। उसकी चाल उसकी उम्र

के हिसाब से अवास्तविक लगती थी। उसकी दशा, फटे पुराने और मैले कपड़ों को देखकर साफ पता लग रही थी। उसके तेज कदमों से पता लग रहा था कि वह काल-चक्र के किसी दुष्चक्र में फंसी थी। परन्तु इस स्वार्थी और धनलोलुप दुनिया में किसी को उससे क्या लेना-देना ?

वृद्धा चलते-चलते उस मोड़ पर पहुँच गई जो उसके जीवन का अन्तिम मोड़ था। काश ! वृद्धा को ये मालूम होता, परन्तु यदि उसे मालूम हो जाता तो क्या वह अपने को बचाने का प्रयास भी करती; शायद नहीं।

वह वृद्धा श्रीघ्रता से चल रही थी क्योंकि उसका इकलौता २० वर्षीय पुत्र 'विष्णु' गर्मी के कारण ही दस्त और बुखार से पीड़ित हो गया था। वह अकेला ही परिवार का भरण-पोषण मजदूरी करके करता था। अतः वृद्धा उसके लिए दवा लेने के लिए जा रही थी।

वृद्धा जब अपने जीवन के अन्तिम मोड़ पर पहुँची तो सामने से उसे पूरी सड़क घेर कर चलता हुआ विशालकाय जुलूस दिखाई दिया। परन्तु वह आगे बढ़ती गई। पास पहुँच कर वह समझ न पाई कि जुलूस को पार कैसे किया जाय। कोई उपाय न देख वह बीच में बसती चली गई। परन्तु तारों के नशे में चूर युवा लोगों ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया।

उस भीड़ में वृद्धा के हाथ से पैसे छूटकर नीचे गिर पड़े। वृद्धा पैसों को ढूँढने के लिए नीचे झुकी तो लोगों द्वारा कुचलकर घायल हो गई। इसे उस वृद्धा का दुर्भाग्य कहें या सौभाग्य कि सामने से ही जीप पर छात्र नेता वीरेन्द्र आ रहा था। वह जुलूस के बीच में ही चल रहा था। जीप के सामने बुढ़िया को देखकर पहले तो वह नेताओं की तरह झल्लाया परन्तु न जाने कहाँ से उसमें मानवता के बीजों का पुनर्अंकुरण हो गया और वह जीप से नीचे उतर कर उस वृद्धा के पास गया।

पता नहीं कहाँ से उसके मन में इस शक्ति ने जन्म ले लिया था। शायद वह उस वृद्धा की बुरी हालत देखकर पसीज गया था क्योंकि वह भी था तो एक मानव ही और इसके अतिरिक्त उसने कभी भी इस तरह की बुरी दशा में किसी को भी नहीं देखा था।

उसने तुरन्त निर्णय लेकर पहले तो छात्रों को लौटाकर जुलूस स्थगित कर दिया और फिर उस घायल-लावस्था में वृद्धा से उसके घर का पता पूछा और जीप में बैठाकर ले जाने लगा। परन्तु गलियाँ छोटी होने के कारण वह अपने एक साथी की सहायता से उस वृद्धा को उसके द्वारा बताये गये स्थान पर ले गया।

वहाँ पर वह यह देखकर दंग रह गया कि वृद्धा ने जो स्थान बताया था वहाँ पर एक फटा सा तिरपाल पड़ा था। कुछ कपड़े, बर्तन आदि पड़े थे। बगल में ही एक टूटी चारपाई पर एक व्यक्ति पड़ा था। उसकी

स्थिति से लगता था कि वह किसी बीमारी से ग्रसित होकर मर चुका है।

इस सबसे ध्यान हटाकर जब वीरेन्द्र ने उस महिला की ओर देखा जो उसके ओर उसके साथी के हाथों में झूल रही थी या यों कहें कि इस निर्दयी संसार को छोड़कर एक दूसरी दुनिया में चली गयी थी तो सहसा उसकी आँखों से अश्रुधारा बह चली। उस दिन वह बहुत रोया। पढ़ने में तेज होने के कारण आज तक कभी ऐसा मौका नहीं आया था कि उसे रोना पड़ा हो। परन्तु आज उसके रोने से ऐसा लग रहा था कि जैसे वह रोने की सारी कसर एक ही दिन में पूरी कर लेगा।

इस घटना के बाद से वीरेन्द्र के जीवन में पुनः बदलाव आ गया। वह एक सभ्य और सुसंस्कृत राजनीतिज्ञ बना। उस वर्ष उसने छात्र संसद से इस्तीफा देकर पद त्याग कर दिया। इसके बाद उसने देश-सेवा और जन-सेवा के लिए वास्तव में बहुत कार्य किया। इस कारण वह एक सफल और प्रसिद्ध व्यक्तित्व बन सका।

कालान्तर में जब वह किसी को अपनी सफलता का रहस्य बताते हुए यह घटना बताता था तो कहता था कि "ये राजनीति के मेले, जिसको जनता ने हँसे ले।"





रामप्रसाद सदासुखलाल कालेज में छात्र-संघ के चुनाव परिणाम घोषित हो चुके थे। संजीवकुमार ने अध्यक्ष पद के लिये यह चुनाव जीता। जीत के कई कारण थे पर सबसे प्रमुख कारण यह था कि वह किन्हीं मन्त्री जी का भानजा था। परिणाम के पश्चात् संजीव के समर्थकों ने धूमधाम से एक विशाल जुलूस निकालने का निश्चय कर लिया।

शहर की व्यस्ततम सड़क से यह जुलूस, "संजीव-कुमार जिन्दाबाद!" "जितेन्द्र बहादुर जिन्दाबाद!" के नारे लगाता हुआ आगे की ओर बढ़ रहा था। विजय के उन्माद में संजीवकुमार के समर्थकों ने कई दुकानें लूट लीं। जितेन्द्र बहादुर का दबदबा होने के कारण कोई कुछ नहीं कर सका। एक बुढ़िया अपने जवान बेटे कालू के लिये दवा लेने जा रही थी जो एक फैक्ट्री में मजदूर था। बुढ़िया सड़क में जुलूस में फँस गयी और धक्का लगने से गिर पड़ी फिर न जाने कितने पैरों ने उस बूढ़ी जान को कुचला। उसके पैसे भी छिन गये। बुढ़िया सिसक-सिसक कर रो रही थी तभी पीछे से किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रखा और कहा—'माँ उठो!' बुढ़िया ने देखा सामने एक युवक खड़ा था। युवक ने उससे सारा घटनाक्रम पूछा और बुढ़िया को कुछ रुपए दिये और आगे बढ़ गया, बुढ़िया ने पैसे लेने से इंकार भी किया पर वह उसे रुपये दे गया। बुढ़िया बार-बार उस व्यक्ति के बारे में सोचती हुई बढ़ी जा रही थी। उसे खेद था कि वह उसका नाम तक न पूछ सकी पर उस नवयुवक ने उससे घर का पता पूछा था, जिससे उसे उम्मीद थी कि वह उसके घर लड़के का हाल-चाल पूछने अवश्य आयेगा।

बुढ़िया ने दवा खरीदी और घर आकर अपने

बेटे को दे दी। दवा ने अपना असर दिखाया और कालू कुछ दिनों में ठीक हो गया। एक दिन वही लड़का बुढ़िया के घर आया और कालू का हाल-चाल पूछा और शीघ्र स्वस्थ होने की कामना की। बुढ़िया द्वारा नाम पूछे जाने पर उसने अपना नाम विजय बताया बुढ़िया ने विजय के प्रति आभार प्रकट किया।

अब कालू ठीक हो चुका था और काम पर जाने लगा था। एक दिन कालू ने फैक्ट्री में विजय को देखा, पूछने पर विजय ने बताया कि वह फैक्ट्री मालिक का पुत्र है। धीरे-धीरे विजय व कालू में मित्रता हो गयी एक दिन कालू से उसकी पूर्व जिन्दगी के बारे में पूछा क्योंकि कालू कई बार ज्ञान-पूर्ण बातें कर चुका था। कालू ने बताया कि उसने बहुत अधिक मेहनत करके माध्यमिक परीक्षा में प्रदेश में पन्द्रहवाँ स्थान प्राप्त किया था पर पैसे के बिना उसकी आगे की पढ़ाई रुक गयी। अतः वह मजदूर हो गया। विजय तब उससे और अधिक प्रभावित हुआ। विजय ने उसको कालेज में दाखिल करवाने व पढ़ाई का खर्चा देने का निश्चय किया।

विजय ने कालू को रामप्रसाद सदासुखलाल कालेज में दाखिला दिला दिया। पहले दिन जब वह कालेज पहुँचा तो पीछे से आवाज आयी—'अबे कहाँ भगा जा रहा है? पहचानता नहीं, कालेज के छात्र नेता संजीव को! इधर आ!'

कालू एकाएक भड़क उठा उसने कभी इतनी अपमानपूर्ण बातें नहीं सुनी थीं, वह उत्तेजित हो गया और संजीव से भिड़ गया, पर यह उसकी भूल थी। सवेरे एक अर्थी जा रही थी जिसके आगे बुढ़िया थी व पीछे विजय कुमार! □□

कथा लेखन

शिक्षित जयपुरियार
नवम 'ख'

एक महानगर का एक डिग्री कालेज। आज उस कालेज में चुनाव का अंतिम दिन था। पूरे कालेज में शोर-गुल हो रहा था। मत गणना शुरू हो चुकी थी। परिणाम निकलने में चंद्र घण्टे रह गये थे। जैसे जैसे समय बीतता जा रहा था उम्मीदवारों की उत्सुकता बढ़ती जा रही थी।

तभी उस इमारत से एक व्यक्ति बाहर आया, जहाँ मत गणना चल रही थी। माइक हाथ में लेकर बोला, "छात्रों एवं छात्राओं! आज चुनाव का आखिरी दिन था ये आप सबको मालूम है। परिणाम मेरे हाथ में है। तो इस वर्ष के अध्यक्ष हैं—।" उस क्षण उम्मीदवारों की उत्सुकता अपने चरम सीमा पर थी। तभी उस व्यक्ति ने एनाउन्स किया, "इस वर्ष के अध्यक्ष रमाकान्त हैं। बधाई हो आपको, आपकी चौथी लगातार विजय पर।" इतना कहकर वो भीतर चला गया था।

पूरी भीड़ में रमाकान्त-जिन्दाबाद के नारे हो रहे थे। ध्यान से देखा जाए तो किसी के चेहरे पर मुस्क-राहट थी तो किसी के चेहरे पर घोर निराशा।

रमाकान्त एक खूब कढ़ावर व्यक्ति था। चेहरे पर घनी दाढ़ी, काले बाल जो कहीं-कहीं से सफेद थे और ऊपर खादी का सफेद कुर्ता-पैजामा, पैरों में काले नागरे जूते और कुर्ते के ऊपर खहर की भूरे रंग की सदरी। उम्र रही होगी यही कोई ३०-३५ साल। कालेज में

उसका छठा वर्ष था। तीन साल से एक ही कक्षा में पढ़ रहा था। देखने में पूरा आदमी लगता था। थोड़ी देर में ही एक छात्रों का बड़ा सा जुलूस गेट से बाहर निकला और बाजार की ओर आगे बढ़ा। आगे कुछ छात्र खुशी में झूम रहे थे। कुछ ढोल बजा रहे थे। बीच में एक खुली जीप पर खड़ा आज का नेता जो खोखली राजनीति में व्यस्त था सबकी ओर मुस्कान से देख रहा था।

झोपड़पट्टी में एक टीन का दरवाजा जिसे खोलने पर चें-SS-सी आवाज आती थी। भीतर एक चारपाई पर एक लोई ओढ़े एक नवयुवक लेटा था, देखने में २०-२५ वर्ष का लगता था। गालों पर छोटी-छोटी दाढ़ी जो ऐसी लगती कि अभी दो-तीन दिन की है। गाल धंसे हुए थे। बार-बार काफी तेज खाँस रहा था। बगल में एक लड़खड़ाते स्टूल पर एक वैद्य बैठा था। जो उसकी नाड़ी पकड़े कुछ सोच रहा था। दूर कोने में बैठी उसकी पूज्य माता जो कि कई जगहों से सिली एक सफेद साड़ी पहने थी। उसकी आँखें दीवार के कोने में लगातार टकटकी लगाये थीं। वैद्यजी के मुख पर निराशा साफ नजर आ रही थी। बाहर आकर उन्होंने उस बुढ़िया से कहा, "अब तो भगवान ही मालिक है। वैसे तुम ये दवाइयाँ बाजार से लेती आओ।" बुढ़िया तेज कदमों से बाजार की ओर बढ़ गयी।

बाजार में एक पुराने होमियोपैथिक दुकान में जाती है। दुकान पर बैठे एक बूढ़ा व्यक्ति जो एक टेक लगाये बैठा था। उसे देखते ही कहता है “कहो बहन ! अब लल्ला कैसा है, तबियत ठीक तो है न !” बुढ़िया कहती है, “अपने हाथ में है ही क्या, वस माँ हूँ सो अपनी कर्तव्य निभा रही हूँ। वैद्य जी ने एक पर्चों में दवाई लिखी है, जरा दे देना।”

बूढ़ा ने चश्मा, जिसमें काफी पावर लगता था उसे काँपती हाथों से उठा कर लगाता है और पर्चा ध्यान से देखता है। फिर ‘हुम्मस’ की आवाज से पीछे घूमता है और लकड़ी की अलमारी खोलता है और वह दवाई निकालता है। और कहता है “पाँच रुपये बारह आने।” बुढ़िया अपने कोंछे से कुछ पैसे निकालती है और उसे जोड़कर कहती है “बाबा ! आठ आने कल ले लेना।” बूढ़ा उसकी ओर देखता है और पैसे को झपट कर उठा लेता है और गल्ले में रख लेता है।

बुढ़िया ज्यों ही घूमती है देखती है कि सामने एक नवयुवकों की भीड़ चली आ रही है। बुढ़िया उस भीड़ को जो नाचते गाते चली आ रही थी देखकर चिंतित हो जाती है। फिर कुछ सोचकर जल्दी-जल्दी आगे बढ़ती है। किन्तु भविष्य को कौन जानता है। वह उस भीड़ में फँस जाती है। कोई दाँयी ओर से धक्का देता तो कोई बाँयी ओर से। किसी तरह बचती बचाती आगे बढ़ती जा रही थी। अपने मुट्ठी में दवाई और पैसे कसकर भींच लेती है। परन्तु तभी उसे उस जीप से

ठोकर लगती है जिस पर वह युवक रमाकान्त खड़ा था। बुढ़िया भड़भड़ाती हुई आगे आँधे गिरती है। उसके पैसे बिखर जाते दवाई की शीशी फूट जाती है और गोलियाँ बिखर जाती हैं। किन्तु किसी को उसकी परवाह नहीं थी। पूरी भीड़ उस पर से निकल जाती है। अंत में केवल सड़क पर वही बचती है। धीरे से उठकर आस-पास पड़ी कुछ धूमिल गोलियाँ उठाती है और साड़ी के आँचल से पोंछकर मुट्ठी में रखती है फिर तेजी से उठकर घर की ओर चलती है। अपनी बस्ती में पहुँचती है। शाम हो चली थी। उसके कदम लड़खड़ाते आगे बढ़ते जा रहे थे। झोपड़ी के सामने पहुँचती है तो देखती है सामने दरवाजे पर वैद्य जी अब तक खड़े हैं। जल्दी से उनके पास पहुँचती है। वैद्य अपनी घोती के एक किनारे से अपनी आँखें पोंछता है और कहता है कि “भाई तेरे आने में बड़ी देर हो गयी।”

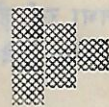
बुढ़िया ने जो कि वैद्य को दवाई देने वाली थी, अपनी मुट्ठी कस कर भींच लेती है और दवाई चूरचूर कर वैद्य के सामने मुट्ठी खोलकर उन टूटी दवाईयों को गिरा देती है। वैद्य देखता रहता है। बुढ़िया एकदम से फूट कर रोते हुए झोपड़ी के भीतर भागती है। अपने बेटे को बार-बार कुछ कहना चाहती है। उसके सिर को उठाकर अपने कलेजे से लगा लेती है। फिर उसे छोड़कर पीछे मुड़ती है। उसके चेहरे पर कठोरता टपक रही होती है। देखने में लगता है शायद कुछ सोच रही है, शायद इस देश का आने वाला कल !



मुकुल वर्ग (प्रथम)



भारत का प्रशासन



राजेश शुक्ल, एकादश (क)

संध्या का समय था। मैं वृक्ष के नीचे बैठा सुखमय जीवन देने हेतु ईश्वर को धन्यवाद दे रहा था। संध्याकालीन सूर्य की लाल किरणें प्रस्फुटित होकर मेरे नेत्रों में समा रही थी। मैं जिस स्थान पर बैठा था उसी के समीप एक वृक्ष पर चिड़ियों का घोंसला था। नवजात बच्चों व उसकी माँ में प्रेम वार्तालाप चल रहा था। माँ व पुत्र के बीच प्रेम वार्तालाप ही पर्याप्त नहीं है, पुत्र की भूख मिटाना भी माँ का कर्तव्य है। माँ कर्तव्य पूर्ति हेतु कुछ दूर बैठकर दाना चुगने लगी। यथा-सम्भव भोजन लेकर आ ही रही थी कि तभी काल रूप में एक बहेलिया आया। हाय.....मेरा हृदय पीड़ा व घृणा से भर उठा। जब मेरी पीड़ा का वेग कम हुआ तो मैंने चिड़िया का मृत शरीर पाया। मेरी दृष्टि ऊपर लगे घोंसले पर गयी पर मुझे घोंसले में चिड़िया के बच्चे नहीं दिखे मुझे दिखी, वह बुढ़िया और उसका पुत्र।

फरवरी का महीना था। दोपहर के लगभग एक बजे होंगे। उस दिन शहर में बड़ी चहल-पहल थी। होती भी क्यों न, आज चुनाव का परिणाम जो घोषित हुआ था। पिता जी ने मुझे पत्र डालने हेतु डाकखाने भेजा और कहा, "बेटा साइकिल संभल कर चलाना शहर में आज बड़ी भीड़ है। कुछ रुक कर उन्होंने कहा "हाँ, दो लिफाफे व तीन पोस्टकार्ड भी लेते आना।" यह कहकर उन्होंने मुझे ५ रुपए का नोट थमा दिया। मैंने साइकिल उठाई और वहाँ से चलता बना। तभी एक

विशाल जनसमूह दिखाई पड़ा। उसमें एक बड़ी सी गाड़ी में कुरता, पायजामा व टोपी पहने एक मोटी आकृति दिखी। मुझे समझते देर न लगी कि यह नेता जी की जीत का जोश है। नेता जी बड़े विनम्र भाव से हाथ जोड़े जीप पर खड़े थे। ऐसा दृष्टिगोचर हो रहा था कि जल्लाद आज मन्दिर में जाकर लोगों को दान दे रहा हो।

आगे चलने पर मेरी दृष्टि एक ऐसी आकृति पर पड़ी जिसने मेरे मन पर एक अमिट छाप छोड़ दी। वह थी ८० वर्ष की एक वृद्धा जो भीड़ में दौड़ी जा रही थी। लोगों के धक्कों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था। नेता जी की जीप जैसे ही थोड़ा आगे बढ़ी, बुढ़िया उसके नीचे आ गयी। पल भर में उसके प्राण पखेरू उड़ गए। भीड़ में हलका सा शोर हुआ। नेता जी के चेहरे पर दया के स्थान पर घृणा का भाव उभर गया। भीड़ उस शव को छोड़कर आगे बढ़ चली। शव हजारों लोगों के पैरों से कुचलता हुआ एक गठरी की भाँति हो गया था।

शाम को जब मैं उस स्थान पर गया तो मुझे पता चला कि वह बुढ़िया अपने बीमार पुत्र के लिए निकट के मेडिकल स्टोर से दवा लेने जा रही थी। अपनी माँ की मृत्यु का समाचार सुन उसके बीमार पुत्र की भी मृत्यु हो गयी।

मुझे पहले तो बड़ा दुःख हुआ। फिर मैं सहसा बोल उठा, “वाह! भारत का प्रशासन, जनता के पालनहार” यह कहकर मैं घर की ओर चल दिया। तभी मुझे

पोस्टर दिखायी पड़ा उसमें लिखा था—“गरीबों के पालनहार, समाज के रक्षक.....को वोट दो।”

मुकुल वर्ग द्वितीय

ज्योति कुमार गुप्त, एकादश 'ख'

सड़क पर बढ़ता हुआ जुलूस। तिल भर की भी जगह नहीं। चारों तरफ उल्लास, बेहूदगी, हुल्लड़ और उजड़पन का वातावरण। लड़कों, गुंडों और विद्यार्थियों के बीच एक धीमे-२ रेंगती हुई जीप जिसके ऊपर, नीचे, दाएँ, बाएँ लदे हुए फूल। शेष स्थान पर कागजों पर बड़ा-२ लिखा हुआ—“हामिद भाई जिन्दाबाद।”

हामिद भाई डी०ए०वी० कालेज में इस वर्ष 'छात्र-संघ, के नए अध्यक्ष चुने गए हैं। 'हामिद का टेम्पो हाई है', 'जीता है—भई जीता है, हामिद भाई जीता है' इत्यादि तथा कुछ वाक्य चिल्लाते हुए, जोश में बढ़ते हुए छात्र—

“हमारे भइया, हामिद खान।
सबसे न्यारे, हामिद खान।
जग को प्यारे, हामिद खान।
राजदुलारे, हामिद खान।
प्यारे-२, हामिद खान।
प्रेसीडेंट हमारे, हामिद खान।”

इन्हीं नारों और हुल्लड़ के बीच बढ़ता हुआ जुलूस। किसी को किसी की मुझि नहीं। इसी हुल्लड़ और शोरगुल के बीच गिरती-पड़ती, आगे बढ़ती झुर्रियों वाली एक वृद्धा। उसकी मनोदशा वही थी जो कि कई कुत्तों के बीच घिरी एक बूढ़ी गाय।

आज ब्रुढ़िया के बड़े बेटे राजू के बुखार का

सातवाँ दिन है। वह धीमे-२ लाठियाँ टेकते अपने बेटे की दवा लेने जा रही है। शरीर पर पसीना और आँखों में बेचैनी की स्पष्ट है झलक। उसका एक ही सहारा, आँखों का तारा, और मेहनत मजदूरी कर घर को चलाने वाला बेटा आज खाट पकड़े है। छोटा बेटा मनोज आज १६ दिन से घर नहीं आया है। उसने राजनीति में पढ़कर अपनी जिन्दगी बर्बाद कर ली है। सुना है कि वह कालेज में होने वाले चुनाव में अपने दोस्त की 'कन्वेसिंग' कर रहा है।

हामिद खान की आँखों में विशेष चमक थी। आज उसको आखिर सफलता मिल ही गई। हजारों रुपये बर्बाद कर दिए उन्होंने अपने इस चुनाव प्रचार में, जानते हैं कि जीतने के बाद मय ब्याज के मिल जायेंगे। लगभग ८ साल से वो चुनाव लड़ते आ रहे हैं। जीते हैं। क्यों न जीते, आखिर अनुभव जो हो गए हैं। इस बार पूरा अनुभव का फायदा उठाया है, करीबन सभी विरोधी प्रत्याशियों को जखमी तो करा ही चुके हैं। इस सफलता में मदहोश हामिद हाथ जोड़े जीप में खड़े हैं।

अचानक—घायं-घायं।

लड़कों में भगदड़। चीख पुकार। कोई कहीं भागा जा रहा है तो कोई कहीं। अचानक इसी दौरान एक गोली हामिद के दाएँ कंधे पर लगी। जीप की रफ्तार अचानक तेज और फिर दंगा :

एक बुढ़िया लहलुहान भड़क पर पड़ी है। चारो तरफ श्मशान सी शांति है। यहाँ कौन है जो इसके आर्त स्वर को सुने। एक भिखारी जो यह नजारा देख चुका था, आगे बढ़ा और कंधे पर बुढ़िया को रखकर बड़े पुत्र राजू के पास छोड़ आया। जब राजू को कुछ होश आया तो उसने खाट के पास अपनी प्यारी बूढ़ी माँ को लहलुहान अवस्था में देखा। किसी तरह उठा और रिक्शा किया। पड़ोसियों की सहायता से बुढ़िया को अस्पताल पहुँचा दिया गया। राजू फिर अपनी खाट पर गिर चेतना खो बैठा। बुढ़िया को बड़ी मुश्किल से एक खटोला अस्पताल में मिल ही गया।

छात्रों में जोश, आँखों में क्रोध की चिंगारियाँ। छात्र नेता हामिद के घर से आती हुई चीख पुकारें, अब तक मनोज भी आ चुका था। अपने परम मित्र को घायल देखकर उसका खून खौल रहा था। आखिरकार हामिद को अस्पताल ले जाया गया। हामिद के कंधे में लगी गोली को डाक्टरों ने बड़ी मेहनत से बाहर निकाला। हामिद को अब बेड पर होश आ गया था। हामिद ने देखा एक बुढ़िया खाट पर पड़ी है उसे तरस आया और उसके अनुरोध पर उसका भी समुचित रूप से इलाज किया जाने लगा।

बाहर छात्रों की भीड़ के बीच मनोज चल रहा था। कालेज में तोड़ फोड़ की कार्यवाही और जमकर पथराव। यह सब मनोज के नेतृत्व में ही हो रहा था। यह तो आम बात थी कि तोड़फोड़ और पथराव की कार्यवाही की जाए। मनोज का तो इन सबमें विशेष अनुभव ही चला था। इस चुनाव को जितवाने में मनोज का बड़ा हाथ था। वह शुरू से ही कालेज की गंदी राजनीति में पड़कर क्या नहीं सीख गया था। उसको इस कोचड़ में तैरने में आनन्द का अनुभव होता था। आखिर इस खेल में लक्ष्मी की जो प्राप्ति होती है। पिछली बार उसने हामिद के बड़े भाई शाहिद की जीत में एक महत्वपूर्ण रोल अदा किया था, और शाहिद ने

भी उसे रुपयों से लाद दिया था। वह महीने में मुश्किल एक-आध बार घर जाता था। घर की परेशानियों से उसका कुछ भी रिश्ता नाता न था। बूढ़ी माँ महरी का काम करके चार पैसे कमा ही लेती थी और बड़ा भाई, बेचारा घर के लिए तथा पेट के लिए मजदूरी करता था। उसने ही मनोज को पाल-पोस कर बड़ा किया था। उसका सपना था कि यदि वह अपने इस जीवन में कुछ विशेष नहीं कर पाया तो क्या कम से कम उसका छोटा भाई तो कुछ बन जाए। उसने अपना खून पसीना एक करके अपने भाई को पढ़ाया था। वह उसके सभी खर्च उठाता था लेकिन मनोज को क्या? उसे तो बिना मेहनत के ही अभी से पैसा कमाने की सूझी थी। क्या वह जानता नहीं था कि राजनीति कितना घिनौना खेल है? लेकिन यह खेल उसके लिए जिन्दगी बन चुका था। उसने घर के प्रति अपनी जिम्मेदारियों से मुँह मोड़ लिया था।

अब वह चला जा रहा था अपने हाथों में दवा लिए तथा आँखों में एक बदहवासी सा जोश लिए। किस ओर! ओर कहीं नहीं अपने मित्र हामिद के पास, वह हामिद के पास बैठ गया और अपनी अगली योजना की तैयारी करने लगा। उसने अपनी माँ की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा। वह हालचाल पूछकर तेजी से बाहर चला गया।

छात्रों द्वारा जिलाधिकारी का घेराव किया गया और मामले की न्यायिक जाँच कराने का आश्वासन लेकर उन्हें छोड़ दिया गया। मनोज की आँखों में हल्की सी चमक आ गई थी। लेकिन उसका भाई बुखार से तप रहा था और अब उसे धीरे-धीरे विश्वास होने लगा था कि अब उसकी मृत्यु निकट ही है।

आज छात्र अस्पताल के सामने अनशन पर बैठे थे। कारण यही था कि अभी तक गोली कांड की न्यायिक जाँच नहीं हुई थी। तभी कुछ दूसरे विपक्षी पार्टियों के गुंडों व छात्रों तथा इन अनशनकारियों के बीच ठन

गई। बात बढ़ती गई और इसने एक दंगे का रूप ले लिया। ईंट-पत्थरों की बरसात होने लगी थी। हाँकियों की टकराहट से वातावरण गूँजने लग था। तभी पुलिस द्वारा लाठी चार्ज किया गया। भगदड़ मच गई। एक लाठी मनोज के सर पर पड़ी वह वहीं ढेर हो गया।

जब यह सूचना हासिल की मिली तो उसका खून खौल उठा। उधर राजू पानी-रट रहा था। आर्त स्वर में यह पुकार मकान की दीवारों से टकराकर वापस उसके कानों में पड़ रही थी। उसकी बेचैनी बढ़ती जा रही थी। दम घुट रहा जा। साँसें फूल रही थी। अचानक एक साँस उसके हलक में रह गई और

उसकी पुकार बन्द हो गई। चारों तरफ सन्नाटा छा गया।

अगले दिन जब अपने प्रिय पुत्र की मृत्यु का समाचार उसकी माँ को मिला तो वह राजूSS चीखती हुई गिर पड़ी और फिर न उठ सकी।

आज कालेज में छात्रसंघ के अध्यक्ष का शपथग्रहण समारोह है। हासिल बिल्कुल स्वस्थ तथा प्रसन्न मन से खड़ा शपथ पढ़ रहा है। आज उसकी आँखों में विशेष प्रकार की चमक है क्योंकि दो साल तक के लिए उसकी कमाई का साफ रास्ता खुल गया है और एक विशेष बात यह है कि उसे आज मनोज की मौत के हरजाने के रूप में ५०,०००/- रु० जो मिलने वाले हैं। ●

मुफुल वर्ग तृतीय

मोहित श्रीवास्तव, एकादश 'क'

राजनीतिक क्षेत्रों में चुनाव की भगदड़ को कौन नहीं जानता है। इन चुनावों ने तो हम लोगों का जीना हराम कर दिया है। यह बात मैं सोच ही रहा था कि तभी हमारे घर की घण्टी बजी और हमारा ध्यान एकाएक भंग हो गया। मैंने उठकर दरवाजा खोला तो देखा कि एक व्यक्ति माला डाले हुये मुझसे हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहा था "साहब, मेरा नाम राजीव मिश्रा है आप मुझे अपना मत प्रदान करें और मुझे विजयी बनायें। मैं आपके सब ऋणों का निवारण भली प्रकार से करूँगा"। मैं उनको आश्वासन देते हुये अन्दर की ओर मुड़ा लेकिन वे साहब तो मेरा पीछा ही नहीं छोड़ रहे थे। अन्दर बैठे मेरी माँ के चरणों का भी स्पर्श किया एवं घर से चले गये।

मैं अपनी खिड़की से देख रहा था कि वे माला डाल कर पुनः जीप पर खड़े हो गये और उनके साथी

जिसे मैं उनके चमचे ही कहूँगा पुनः चिल्लाने लगे "Voat for Rajeev Mishra".....

वे मुझसे कह कर गये थे कि मैं देश में हिन्दी का प्रचार करूँगा पर उनके चमचे तो नारे ही अंग्रेजी में लगा रहे थे फिर वे हिन्दी का क्या प्रचार करेंगे ?

सामने से आती हुयी एक गरीब लाचार लोगों की भीड़ से वह मिलने हेतु वह अपनी जीप से उतरे और उन्होंने उन भूखे, नंगे लोगों से उनकी समस्याओं को पूछा। पूछना तो मात्र एक बहाना था वे तो वोट, माँगना चाहते थे।

खैर यह तो था चुनाव के पूर्व का दृश्य, तीसरे दिन ही चुनाव सम्पन्न हुआ। चुनाव शान्तिपूर्ण ढंग से सम्पन्न हुआ। अगले दिन मैं सुबह मीठे-मीठे सपनों को देखता हुआ सो रहा था कि अचानक मेरे कानों में आवाज पड़ी,

“जीत गया, भई जीत गया राजीव मिश्रा जीत गया, बोट देने वालों को बधाई हो, बधाई हो” ।

उसके बाद तो साहब पूछिये मत कि क्या हुआ उसके बाद का जो दृश्य हुआ वह इतना घिनौना था कि कुछ पूछिये मत, चुनाव जीतने के पश्चात वे इतना प्रसन्न हुए कि मानो उन्हें कोई कोहिनूर हीरा मिल गया हो ।

जीप, कार, मोटरों की तो भीड़ लग गयी । सारा पुलिस प्रशासन ही हिला डाला । करीबन एक हजार लोगों की भीड़ ने उन्हें घेर लिया । इसके बाद वे माला पहनकर शहर भ्रमण को निकले । उनके चमचों ने बुरी तरह से मद्यपान कर रखा था स्वयं वे भी मद्य के नशे में चूर थे । जुलूस नारे लगाते हुये जा रहा था । मैं भी यह दृश्य अपने नेत्रों द्वारा निहार रहा था । सारी सड़क उन्होंने जाम कर रखी थी लोगों का निकलना मुश्किल कर दिया चुनाव से पूर्व जिन माँ-बहनों को वे इज्जत की निगाह से देखते थे आज उन्हीं पर वह इतनी बुरी दृष्टि डाल रहे थे जिसकी कल्पना भी मैं अपने मन में नहीं कर सकता हूँ ।

उसी समय मेरी दृष्टि एक बुढ़िया पर पड़ी जो उसी जुलूस में से आगे निकलने का यत्न इस प्रकार कर रही थी कि मानो उसे कोई रक्त मिलने वाला है । मैंने उसे खींचकर अलग किया और उससे पूछा “माँ, यहाँ इस भीड़ में तुम क्यों भागी जा रही हो ?” तभी वह मेरी ओर मुड़ी जब मेरी दृष्टि उसके नेत्रों पर पड़ी तो मेरे मस्तिष्क में अजीब सा विचलन प्रारम्भ हो गया । उसके नेत्र अश्रु पूरित थे और उसके नेत्र कह रहे थे कि वह एक विपत्ति के समुद्र में डूबती जा रही है । उसने मुझसे कहा—“बेटा, मेरा बेटा बहुत बीमार है और मैं उसी के लिये दवा लेने जा रही हूँ ।”

उसके वस्त्रों को देखकर मैंने उसकी दशा को जान लिया । उसने मुझे बताया कि उसका बेटा, पत्थर तोड़ता है और बदले में दो वक्त की रोटी भी नहीं कमा पाता है । वह बहुत बीमार है ।

इतना कहना था कि वह मेरा हाथ छुड़ाकर जुलूस को चीरती हुई निकली जा रही थी । मैंने उसे बहुत रोकने का यत्न किया । और अन्त में वही हुआ जिसका मुझे डर था । उन मद्यपो को कहीं होश था जिनकी बदीलत उन्हें यह प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है आज वे उसी को रौंद रहे हैं । परन्तु उन्हें क्या ? उन्हें तो अपनी प्रतिष्ठा से अपने पद से मतलब था उन्हें जनता से क्या करना । वे दुष्ट नेता और उनके चमचे तो अपना जशन शराब को उछालकर और नाच कर मना रहे थे परन्तु वह बुढ़िया जो उनकी माता सदृश थी उनकी लातों को खाकर दर्द से कराह रही थी । वह बुरी तरह से घायल होकर गिर पड़ी ।

इसी नेता और उन दुष्टों ने चुनाव से पूर्व उससे हाथ जोड़कर उसका मत माँगा था परन्तु आज उन्हीं लोगों ने उसको लहलुहान कर दिया ।

जब जुलूस वहाँ से हटा तो मैंने तथा कुछ और सज्जनों ने उस बुढ़िया को उठाकर चिकित्सालय तक पहुँचाया । वह बुढ़िया दर्द में भी अपने बेटे को याद कर रही थी । मैंने उसके हाथों से दवाई का परचा लिया और उसके बेटे तक दवाइयों को पहुँचा दिया तथा एक सज्जन ने उस बुढ़िया को अपना रक्त देकर उसकी जान बचायी ।

वास्तव में आज का नेता गांधी तथा नेहरू की तरह जनता का न होकर बल्कि खुद का होता है..... अपने स्वार्थ का होता है ।



कविता लेखन प्रतियोगिता

अंकुर वर्ग प्रथम

आशुतोष तिवारी

अष्टम 'क'

जननी जन्मभूमि दुनियाँ में सबसे अधिक महान् है ।
जिस धरती पर जन्म लिया उस धरती पर अभिमान है ।
इस धरती पर जन्म ले चुके दशरथ नन्दन राम हैं ।
ऐसी पुण्य भूमि को मेरा शत-शत बार प्रणाम है ।
शत-शत बार प्रणाम है ।

कर्म-भूमि, यह स्वर्ग-भूमि है, भारत इसका नाम है ।
आँक सका न कोई अब तक, इस धरती का दाम है ।
इसी धरा के उत्सव, ओणम, दीवाली, अम्लान हैं ।
ऐसी पुण्य भूमि को मेरा, शत-शत बार प्रणाम है ।
शत-शत बार प्रणाम है ।

जन्म-भूमि की रक्षा करना, सबसे पावन काम है ।
कैसे व्यक्त करूँ मैं इस पर मुझको क्यों अभिमान है !
इस पर सभी सुखी हैं, सबको मिलती शान्ति महान् है ।
ऐसी पुण्य भूमि को मेरा, शत-शत बार प्रणाम है ।
शत-शत बार प्रणाम है ।

जननी जन्म-भूमि दुनिया में सबसे अधिक महान है ।
जिस धरती पर जन्म लिया उस धरती पर अभिमान है ॥

सभी धर्म के लोग यहाँ पर रहते ऐसे हिलमिल ।
आसमान में जैसे तारे करते झिलमिल झिलमिल ॥

पर अब भेद-भाव यहाँ पर हमने मिल कर खींचा ।
भेद-भाव की इस खेती को मिल कर हमने सींचा ॥

अब इस भेद-भाव की भीत को हमें तोड़ना होगा ।
और स्वयं को इस साहस के साथ जोड़ना होगा ॥

भेद-भाव या जात-पात की ये अंधियारी रातें ।
दीपक बन कर दूर करें हम अन्धकार की घातें ॥

इस प्यारी भारत माता को हम सब मिल कर जोड़ें ।
रहें प्रेम से हम आपस में, बैर-भाव को छोड़ें ॥

यह सुन्दर सा देव हमारा भारत हमको प्यारा ।
हम हो जायें एक करें दुश्मन का वारा-न्यारा ॥

दुनियां भर में इसकी अपनी अलग एक पहिचान है ।
जननी जन्म-भूमि है प्यारी सबसे अधिक महान है ॥

जिस धरती पर जन्म लिया उस धरती पर अभिमान है ॥



मातृ-भूमि

अंकुर वर्ग तृतीय

जननी जन्म-भूमि दुनिया में,
सबसे अधिक महान् है।
जिस धरती पर जन्म लिया,
उस धरती पर अभिमान है।
जीवन भर इसकी सेवा करने में,
मातृ-भूमि के लिए समर्पित होना अपनी शान है।
इसकी रक्षा करने में न्योछावर
कर दें हम सब तन-मन प्राण को।
दक्षिण में सागर लहराता,
उत्तर में हिमवान है।
चन्दा-सूरज करें आरती, शत-शत इसकी
पावन भूमि महान है।
शान्ति दूत हम, मानवता की-
हम सबकी पहिचान है।
बलिदानी वीरों ने इसको,
स्वयं रक्त से सींचा है।
त्याग-तपस्या से लोगों ने-
मान-चित्र यह खींचा है।
रात-दिवस इसकी संस्कृति का,
हम करते सम्मान है।
जननी जन्म-भूमि दुनियाँ में,
सबसे अधिक महान् है।

सत्येन्द्र मिश्र

अष्टम 'क'



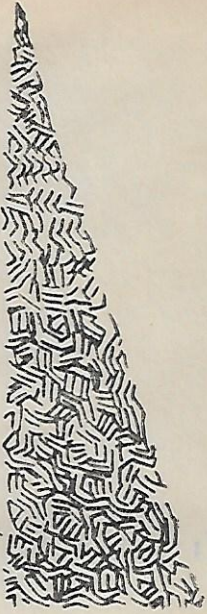
पल्लव वर्ग

प्रथम

सेवा की साध लिए बढ़ता हूँ—
जिस मिट्टी से अन्न मिला,
हो गया पुष्ट मेरा तन मन,
जिसकी संस्कृति की अमर धार
है सींच गयी मेरा जीवन,
जिसकी ज्ञानात्मा की सुरभि मुझे,
सिहरा कर देती नव जीवन ।
उस स्वदेश के लिए शत-शत नमन-मन्त्र पढ़ता हूँ ।
सेवा की साध लिए बढ़ता हूँ ॥१॥
गंगा यमुना की धारायें
हिम-गिरि की पर्वत मालायें
और वैभवशाली अतीत वह
जिसमें अगणित दीप जल रहे
पाया जगने मूल मन्त्र वह
यही स्वयं मैं धन्य हुआ हूँ ।
सेवा की साध लिए बढ़ता हूँ ॥२॥
राम, कृष्ण की जन्म-भूमि
शिवि, दधीचि का यह स्थान,
धरा वही है यह जिस पर
लेते जन्म स्वयं भगवान,
प्रसूभूमि है महापुरुषों की
देता सारा जगत जिसे सम्मान
उस मातृ-भूमि को मैं अपने जीवन सुमन अर्पित करता हूँ ।
सेवा की साध लिए बढ़ता हूँ ॥३॥
करता हूँ मैं प्रार्थना बस एक ही
समर्पित रहूँ सदा इसके लिए ही
देना भगवन् मृत्यु मुझे यहीं,
यदि पुनः मिले मुझे कभी
तो यही मेरी जमीं, ही यही
पौध मैं दिल में पल्लवित करता हूँ ।
सेवा की साध लिए बढ़ता हूँ ॥४॥

सतीशचन्द्र गुप्त

दशम 'क'



मैं अमा में दीप बनकर,
रात भर जलता रहूँगा।
और इस उनीचे राष्ट्र को कुछ,
कर्म-जल देता रहूँगा।
मेरा यह समर्पण शायद,
कुछ दे सके इस राष्ट्र को।
यह क्षुद्र वतिका ही जगा दे,
शायद इस सोये समाज को।

दीप मेरा बन सके शायद शाश्वत् और चिरन्तन।
लाख झंझावात भी इसको बुझा पायें न शायद।

किन्तु जलने की शपथ

क्यों खी गयी है ?

और जागृति की ललक

क्यों सो गयी है ?

अंधकार के दीप तुम, ज्वाला सदृश जलो जग में
मैं अमा में दीप बन कर, रात भर जलता रहूँगा।

हम विनाशक तिमिर के-

फिर तिमिर अंधकार क्यों है ? आज दुर्जय ?

बेरियों के काल हैं हम-

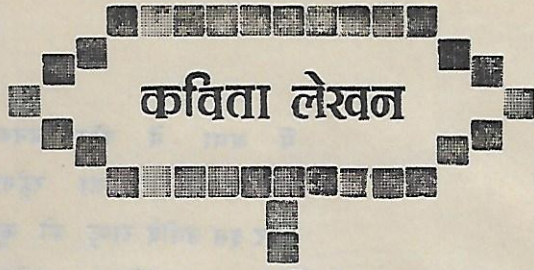
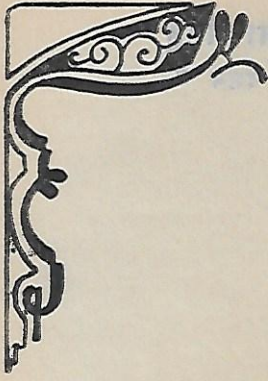
शत्रु क्यों है आज निर्भय ?

हम अमा की छाँव में बंशी बजाते हैं

फिर क्यों फैल रहा काला अंधेरा है।

राष्ट्र हित में भी निरन्तर समर्पण करता रहूँगा,
मैं अमा में दीप बन कर रात भर जलता रहूँगा ॥





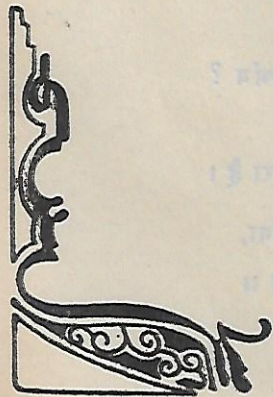
कविता लेखन

सेवा की साध लिये बढ़ता हूँ

आलोक दीक्षित

नवम 'क'

- (१) सेवा की साध लिये बढ़ता हूँ,
देश का मान लिये बढ़ता हूँ ।
ज्ञान की पतवार लिये बढ़ता हूँ,
सच्चा स्वाभिमान लिये बढ़ता हूँ ॥
- (२) विश्व मन्दिर में चढ़ता हूँ,
सभी का हित लिये बढ़ता हूँ ।
गरीबी मिटाने को बढ़ता हूँ,
विश्व के मन्दिर में चढ़ता हूँ ॥
- (३) मझघार में भी मैं चलता हूँ,
धूप या छाँव में भी चलता हूँ,
काले-गोरे में अभेद रहता करता हूँ,
सबके अधिकार हेतु लड़ता हूँ ॥
- (४) शत्रुता मिटाने को बढ़ता हूँ,
मेल-जोल करने को बढ़ता हूँ ।
तुमसे हर बार यही कहता हूँ,
सेवा की साध लिये बढ़ता हूँ ॥
- (५) तलवार की धार से जो लड़ते हैं,
घृणा और पाप में जो रहते हैं ।
उनसे हर बार यही कहता हूँ,
सेवा की साध-हित ही जीता हूँ ॥



अब जीवन का दीप जलाओ साथी पड़ा अँधेरा है ।
अन्धकार बढ़ गया हर तरफ, विपदाओं ने घेरा है ॥

कोई किसी का नहीं यहाँ पर स्वार्थ सब जगह छाया है ।
कैसे-कैसे लोग यहाँ पर कैसे सबकी माया है ॥

अन्यायी बन गया है मानव, कहीं न्याय का डेरा है ?
अब जीवन का दीप अँधेरा है ॥

चैन मिटा है शान्ति नहीं है, इस कपटी संसार में ।
सब कुछ लूट लिया है यहाँ पर, युद्ध और व्यापार ने ॥

मानवता बन गयी है दुश्मन, पाप सब जगह छाया है ।
माँ, बेटी ओ बहू-बहिन का सारा फर्क मिटाया है ॥

अब तो सच्ची राह दिखाओ अन्यायों का घेरा है ।
अब जीवन का दीप अँधेरा है ॥

धर्म हो गया विकृत, संस्कृति का भी आज विनाश हुआ ।
ऐसा लगता है धरती से मानवता का ह्रास हुआ ॥

जिस धरती पर कभी महापुरुषों ने भी था जन्म लिया ।
जिस धरती की खातिर बलिदानी वीरों ने प्राण दिया ॥

उसी भूमि पर आज यहाँ ईर्ष्या ने किया बसेरा है ।
अब जीवन का दीप अँधेरा है ॥



सूरज सोया है प्रभात में,
चन्दा नयन ज्योति खो बैठा ।
अंधकार की चौसर फेली,
दीपक दुरभिमान में ऐंठा ।
ऐसे में आवाज लगाओ,
पुरुषार्थों को एड़ लगाओ ।
अंधकार को चीर सके जो,
साथी ! ऐसी ज्योति जलाओ ।

सूरज सोता है, सोने दो,
दीपक ऐंठा है, रहने दो ।
तुम ऐसी हुंकार भरो,
जनमानस के धुंधले पटलों पर ।
एक नया उत्साह भरो,
सूरज सोता है, सोने दो,
दीपक ऐंठा है रहने दो ।



अंधकार की चौसर फेली-
खेल रहे हैं सत्ताधारी ।
नहीं रहा है लहू रगों में,
उतर गया आँखों का पानी ।
रहते तो हैं ये स्वदेश में,
अन्न यहाँ का ही खाते हैं ।
पर बेचारे इन पुतलों को,
नाच विदेशी हाथ नचाते ।

इसमें किसका दोष बतायें ?
पूरा जनमानस गुँगा है ।
ऐसे में आवाज लगाओ,
पुरुषार्थों को एड़ लगाओ,
अंधकार को चीर सके जो-
साथी ऐसी ज्योति जलाओ ।

सस्ती हो ही चली ॥
 भूख तो बन चली है,
 जिन्दगी का एक हिस्सा ।
 और जिन्दगी ओस की,
 दो बूँद बन चली है ॥
 है अगर तुम्हारी धमनियों में रक्त,
 तो मूरत का नाम मिटा दो ।
 हो अगर तुम युवक,
 तो जिन्दगियों के लिये, जिन्दगी कुर्बान कर दो ॥
 नैतिक मानवीय सम्बन्धों पर,
 चढ़ गयी है वासना की परत ।
 हैवानियत की मानसिकता,
 से छुप गया है सम्बन्धों का दर्द ॥
 किञ्चित भी भावना हो हृदय में तुम्हारे,
 तो पापाग्नि को प्रेम से बुझा दो ।
 हो अगर तुममें तनिक मानवता,
 तो सम्बन्धों की गरिमा को बचा लो ॥
 गरिमा प्राच्य की समा रही,
 पाश्चात्य के अंधेरे गर्त में ।
 प्रजातन्त्र के उपवन में,
 उग रहा कैवटस कुलीन तन्त्र का ॥
 देख अतीत के धुँधले पृष्ठ,
 शर्म अपने पर जरा भी आती हो ।
 तो खोल फेंको नकाब उस,
 तड़क भड़क में छुपे षडयन्त्र का ॥
 है थोड़ा भी गर्व यदि अतीत पर,
 तो जवाब दे दो इस कुचक्र का ।

□□□

युवकों का आह्वान

आशीष कुमार सिंह

एकादश 'क'

सूरज सोया है प्रभात में,
चन्दा नयन ज्योति खो बैठा ।
अंधकार की चौसर फैली,
दीपक दुरभिमान में ऐठा ॥
ऐसे में आवाज लगाओ,
जगाओ मदहोश जवानी को ।
निचोड़ फेंको तरुणाई से भ्रम-जाल,
दिखा दो दिशा दिग्भ्रमितों को ॥
बहलुहान हो उठी है परम्परायें,
बाजारू हो गई है संस्कृति ।
स्वार्थों के आघात सह रही परम्परायें,
लूट रही संस्कृति को सफेदपोशी ॥
जला लो मशालें, अन्यथा,
कोई परम्पराओं की चिता बना देगा ।
आह्वान करो क्रान्ति का, अन्यथा
कोई संस्कृति को मिटा देगा ॥
अंधकार इतना विषम हो उठा,
कि सच की परछाई भी नहीं दिखती ।
मानवता में समा गयी है इतनी कुण्ठा,
कि आदमी में आदमी की तसवीर नहीं दिखती ॥
है अगर तुममें हिम्मत, तो
अंधेरे में एक दीप जला डालो ।
है अगर तुममें तूफान, तो
सोयी मानवता को समूल शकशोर डालो ॥
है नहीं कुछ कीमत,
श्रम के बूँदों की ।
रक्त की बूँदें तो,



वार्षिकोत्सव के अवसर पर विद्वान वक्ता डा० मुरली मनोहर जोशी उद्बोधन करते हुए ।



वार्षिकोत्सव पर माननीय बैरिस्टर साहब का परिचयात्मक उद्बोधन



विद्यालय के विद्वान व दूरदर्शी सचिव श्री वीरेन्द्रजीत सिंह जी धन्यवाद ज्ञापन करते हुए ।



प्रधानाचार्य जी के द्वारा वार्षिक आख्या की प्रस्तुति

एक अनुभूति: रंगों से घिरे पत्थर

राघवेन्द्र सिंह (११क)

दिनांक २६।१०।८८, अपराह्न बारह बजे 'भारत माता की जय' "पवनसुत हनुमान की जय" आदि गगनभेदी नारों के साथ हम नी छात्र व एक आचार्य अपूर्व उत्साह और उमंग को बटोरे हुए स्टेशन की ओर खाना हुए।

लगभग १५ मिनट इन्तजार करने के पश्चात् हम बाम्बे वी. टी. से अपनी यात्रा पर निकल पड़े। आरक्षण होने के कारण बिना किसी असुविधा के रास्ते के विभिन्न दर्शनीय दृश्यों का अवलोकन करते हुए अगले दिन लगभग ८ बजे (प्रातः) जलगाँव पहुँच गए। दैनिक कर्मों से निवृत्त होकर हम जलगाँव बस स्टेशन पर आये। फिर बस स्टेशन से हम लोगों ने बस द्वारा अजन्ता के लिए प्रस्थान किया। सायं लगभग १.३० बजे हम सभी अजन्ता पहुँच गए।

औरंगाबाद शहर से लगभग ११० किमी० दूरी पर उत्तर दिशा में अजन्ता की गुफाएँ हैं। हम लोगों की जलगाँव से अजन्ता की ७२ किमी० की छोटी सी यात्रा थी। जिस पहाड़ को खोद कर ये गुफाएँ (अजन्ता) बनाई गई हैं, वह पहाड़ घोड़े की नाल का आकार लिये हुए है। समीप में 'बधोरा' नामक नदी बहती है। इस नदी में पानी का अभाव है। सभी गुफाएँ बौद्ध धर्म की हैं।

कारीगर कौन थे ? भिक्षुक कौन थे ? इन्होंने यह जगह क्यों छोड़ी ? वहाँ चैत्य गृहों की पूजा कितने दिनों तक चलती रही ? भारत का यह सांस्कृतिक केन्द्र

कब और क्यों निर्मनुष्य हुआ ? इतिहास में कोई उल्लेख नहीं है।

१७० वर्ष पूर्व ई० सन् १८१९ में जब मद्रास सेना के ब्रिटिश सैनिक शिकार हेतु आये तो उन्होंने ये गुफाएँ देखीं। 'व्यूप्वाइण्ट' से सारी गुफाएँ सहज दिखाई देती हैं। यहाँ की प्राकृतिक शोभा मनोहर है।

३० गुफाएँ, ५ चैत्यगृह, २५ विहार-गृह हमें सामुदायिक पूजा व भिक्षुओं के निवास का भास कराते हैं।

गुफा १-यह एक विहार है। बरामदा, सभामण्डप, अन्तराल, गर्भगृह सब ठीक प्रकार से हैं। इस गुफा की शिल्पकला अप्रतिम है। विभिन्न जातक कथाओं का वर्णन है-प्रथम द्वार के बाजू की दीवार पर शिणि की जातक है। इसके पश्चात् महात्मा बुद्ध भाई नन्द को धर्म की दीक्षा दे रहे हैं। शखपाल जातक, चंपेय जातक, शंकपाल जातक मिलती जुलती जातक कथाएँ हैं। नागराज का राजा के सम्मुख प्रवचन, राजसभा का वर्णन आदि अद्वितीय हैं।

गुफा २-यह विहार गृह है। जंभाल हरिती के शिल्प हैं। 'हंसकथा' जातक के चित्रों के साथ बुद्ध की जन्म कथा दिखाई गई है। बुद्ध को गर्भगृह में दिखाया गया है। इसी के नीचे तीन जातक दिखाई पड़ते हैं, १. विदुर पंडित का जातक २. नागराज की कन्या, जो झूले पर झूलती हुई प्रदर्शित है ३. यक्ष सौन्दर्य के साथ

राजसभा का दृश्य है।

गुफा ३—यह गुफा खाली है।

गुफा ४—इसमें सादे स्तम्भ हैं। प्रवेश के दोनों द्वार मनोल्हादक एवं शिल्प से पूर्ण हैं।

गुफा ५—कुछ सीढ़ियाँ उतर जाने के बाद दोनों ओर शाल भजिकाएँ सुशोभित हैं।

गुफा ६—यह दो मंजिला गुफा है। यहाँ के स्तम्भ साधारण, गर्भगृह में बुद्ध, और सामने तोरण हैं। ऊपर की मंजिल पर वज्रलिपित शिल्प व सुन्दर चित्र आज भी अंकित हैं।

गुफा ७—इस गुफा के आकार और स्तम्भ भिन्न आकार के हैं।

गुफा ८—यह गुफा विद्युत्ताभाव में अंधकार-मय है।

गुफा १०—कुल ३१ स्तम्भ हैं। स्तूप विशाल है प्रदक्षणा पथ मन्दिर से अलग है। गजपृष्ठाकृति छत है। यह हीनयान पंथी गुफा है।

गुफा ११—इस गुफा में कुछ ही चित्र शेष रह गए हैं।

गुफा १२—हीनयान पंथी विहार, जहाँ तीन दीवारों में भिक्षुओं के रहने के निवास हैं। यहाँ पत्थरों के पलंग की योजना है।

गुफा १३—इस विहार में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण का स्टोर है।

गुफा १४—इस गुफा में भग्नावशेष हैं। यह पूर्णतया नष्ट हो गई है।

गुफा १५—यहाँ विहारगृह, मुख्यमण्डप, सभामण्डप और गर्भ गृह में बुद्ध भगवान हैं।

गुफा १६—नागराज, नागरानी का शिल्प। एक शिल्प लेख में पता चलता है कि इस गुफा को बनवाने में वत्स गुल्म (वाशीम) के राजा वाकाटक राजाओं ने मदद की है। इसके बाद नन्द के नाराजी के खण्ड दिखाई देते हैं। यहाँ आठ बुद्धों की जानकारी होती है। गौतम के पूर्व छः बुद्ध हुए, सातवें गौतम और आठवें बुद्ध मैत्रेय नाम के होंगे जो अवतरित होंगे। आगे जाने पर एक बड़ा सा जलाशय मिलता है।

गुफा १७—इस गुफा का बरामदा चित्रों से परिपूर्ण है। साथ-साथ वेशांतर जातक कथाएँ हैं। दरवाजे के सामने छत पर ६ अप्सराएँ हैं। हाथी का नतमस्तक होना चित्रित किया गया है। छतंत्र जातक की कथा अति अनुठी चित्रित है। इसके बाद महाकवि की जातक कथा है। सम्मुख दीवार पर गत्तसोम जातक चित्रित है। महिज जातक का विनोदपूर्ण चित्रण हुआ है। छत का दृश्य कपड़े की छत सा ही प्रतीत होता है। मुर्गों की लड़ाई, पहलवानों की कुश्तियाँ, बैलों की टक्कर, किन्नर आदि प्रेक्षणीय है।

गुफा १८—इस छोटे से विहार में पानी की टंकी (टाका) है।

गुफा १९—यह महायान का चैत्यगृह है। छोटा मुखमण्डप और सामने का हिस्सा आकर्षक है। प्रवेश करते ही सामने स्तूप है। प्रदक्षणापथ में चित्र और छत पर प्रतिकृति है।

गुफा २०—यह एक विहारगृह है। पत्थरों में लकड़ी के काम की प्रतिकृति है।

गुफा २१—आगे सीढ़ियाँ चढ़ जाने पर सामने ही गुफा है। बरामदे में आकर्षक शिल्प चित्रित है।

गुफा २२—इसके गर्भगृह में बुद्ध की प्रतिमा, चंद्रधारी दो सेवक, मानव बुद्ध, तथा कुल संख्या ७ हैं।

गुफा २३—बड़ा विहार गृह है, किन्तु अपूर्ण है।

गुफा २४—यह भी अपूर्ण गुफा है।

गुफा २५—कुछ सीढ़ियाँ चढ़ने पर बुद्ध मूर्ति मिलती है। स्तम्भों पर शिल्पकारी एक अनुठा उदाहरण है।

गुफा २६—यह एक चैत्यगृह है। चैत्य में मूर्ति व शिल्प लेख हैं। सामने स्तूप दिखाई देता है। बुद्ध के महानिर्वाण का महान शिल्प है। पूर्ण दीवार शिल्प-कला से युक्त और चित्रों का अवशेष है।

गुफा २७—यह सामान्य विहार है।

शेष गुफाओं में जाने के लिए रास्ता अत्यन्त दुर्गम है। अतः हम लोग वहाँ नहीं पहुँच पाये। वास्तव में अजन्ता चित्रकला का अद्वितीय उदाहरण है। रंगों का उपयोग अत्यन्त समुचित प्रकार से किया गया है।

कई वैज्ञानिक विश्लेषण हुए किन्तु इतने समय बाद भी रंगों की चमक वैसी ही कैसे है? इसका ज्ञान नहीं कर पाये। विश्व के कई वैज्ञानिक रंगों का विश्लेषण कर रहे हैं, किन्तु वे असमर्थ हैं।



धर्म ईश्वर से भी बड़ा

ईश्वर अधर्म नहीं कर सकता। यदि करेगा तो सर्वशक्तिमान नहीं रहेगा। अधर्म शक्ति का नहीं दुर्धलता का द्योतक है। आग अगर बुझने लगे तो शक्तिशाली नहीं रहेगी। शक्ति मनमानी करने में नहीं, संयमपूर्ण व्यवहार में है। अतः सर्वशक्तिमान ईश्वर सम्पूर्ण संयमी अर्थात् पूर्ण धर्ममय है। ईश्वर जब जन्म लेता है तो मनमानी करने के लिये नहीं, वरन् अधर्म के विनाश और धर्म की स्थापना करने के लिये ही लेता है। यदि बुरा न लगे तो कह सकते हैं कि ईश्वर से भी बड़ा धर्म है। वह धर्म से चलता है, इसलिये सृष्टि चलती है।

पेशवा-नगरी : पुणे

आशुतोष मिश्र नवम 'क'

नासिक दर्शन की अप्रतिम छवि लेकर देशदर्शन की शृंखला में नासिक से २१४ किलोमीटर दूर पुणे पहुंचे। रात्रि की यात्रा में अन्य यात्रियों से वार्तालाप से ज्ञात हुआ, 'पुणे शहर कानपुर से १३८४ किलोमीटर दूर स्थित है। २० लाख की आबादी वाला 'मुला' और 'मुठा' नदी के तट पर स्थित हैं। लगभग १५०० वर्ष पूर्व यह एक छोटा गाँव था और पुनवाड़ी के नाम से जाना जाता था। १६३५ ई० में बीजापुर सुलतान ने शिवाजी के पिता शाह जी को पुणे और सूपे क्षेत्र जागीर के रूप में दिये गये। पेशवाओं की उन्नति की यह भूमि आधुनिक काल में जस्टिस रानाडे, महात्मा ज्योति बा फुले, लोकमान्य तिलक, प्रोफेसर गोपाल कृष्ण गोखले आदि महा-पुरुषों की जन्म-दात्री है।

हम प्रातः ४.३० बजे पुणे पहुंचे। वहाँ सनातन धर्म महामण्डल के सदृश संस्था 'ज्ञान प्रबोधनी' में रुके। वस्तुतः इस संस्था में पूर्व से ही पत्राचार होने के कारण आवास की उत्तम व्यवस्था थी। भ्रमण हेतु दोपहर २.३० बजे पुणे-दर्शन की बस से ही पूना के दर्शनीय स्थलों को देखने का निश्चय किया।

सर्वप्रथम हम 'महादजी शिन्दे म्यूजिलियम' पहुंचे। पूना के दक्षिण-पूर्व भाग में ग्वालियर के महाराजा द्वारा यह बनवाया गया है। एक सुसज्जित विशालकक्ष में महादजी शिन्दे की मूर्ति एक विशेष आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है। तत्कालीन समय की पोशाकें, अस्त्र-शस्त्र, मृतजीव तोपें आदि भी वहाँ संग्रहित है। उसके बाद हम बाजीराव मार्ग के पूर्व में राजा केलकर संग्रहालय पहुंचे मात्र एक व्यक्तित्व डा० दिनकर गंगाधर केलकर द्वारा यह सब संग्रहित है। तीन मंजिल की इस इमारत में

विभिन्न वाद्य यन्त्र, सोलहवीं शताब्दी की वस्तुयें, पोशाकें, ऐतिहासिक काल के दरवाजे, अस्त्र-शस्त्र का संग्रह है। धातु तथा लकड़ी पर नक्काशी द्वारा निर्मित मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। मस्तानी महल इस संग्रहालय के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है।

तत्पश्चात् हम विट्ठल बाड़ी मन्दिर पहुंचे जो कि पुणे के दक्षिण-पश्चिम में है। यह मन्दिर मुठा नदी के तट स्थित है। यहाँ आषाढ मास की एकादशी एवं महा-शिवरात्रि के दिन तीर्थ-यात्रियों की भीड़ होती है। वहाँ से हम लोग सारस बाग पहुंचे। वहाँ पर एक द्वीप झील में था। ५ जून १७८४ ई० में नाना साहब पेशवा ने इस द्वीप पर एक 'गणेश जी' का मन्दिर बनवाया था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यहाँ मानी गयी मनो-कामना पूर्ण होती है। आजकल सूख गयी झील को वहाँ की नगरपालिका ने सुन्दर उद्यान बना दिया है। गणेशजी की मूर्ति के सम्मुख उद्यान का द्वार, झरना, तालाब है। इस प्रकार यह उद्यान अत्यन्त मनोरम है।

तत्पश्चात् हम लोग आगा खाँ महल पहुंचे। वस्तुतः यह महल गर्भियों में आगा खाँ का निवास होता था। यह महल राष्ट्रीय दर्शनीय स्थल तब बना जब यह महात्मा गाँधी ने 'भारत-छोड़ो आन्दोलन' छेड़ा। श्रीमती कस्तूरबा गाँधी तथा गाँधी जी के निजी सचिव महादेव भाई देसाई ने अपनी अन्तिम सर्वास यहीं ली और इनकी समाधि भी यहीं है। गाँधी जी की जीवन की कुछ यादें, चित्र इस महल में दर्शाये गये हैं। आगा खाँ ने यह महल राष्ट्र को दान कर दिया है।

इस प्रकार पुणे-दर्शन की इस तीन घण्टे की यात्रा में हार्दिक आनन्दानुभूति हुई। □ □

‘गढ़ आला पर सिंह गेला’

अविरल पाण्डेय तबस ‘क’

विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास के लिये पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त व्यावहारिक एवं प्रायोगिक ज्ञान भी आवश्यक है। इसी विचार को ध्यान में रखते हुए देशदर्शन भी अपना विशेष महत्व रखता है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति का बौद्धिक विकास ही होता है और वह भी अधूरा, जबकि देशदर्शन द्वारा व्यक्ति का मानसिक और बौद्धिक विकास दोनों होते हैं। इसी बात का ध्यान रखते हुए प्रति वर्ष हमारे विद्यालय में देशाटन के दो दल जाते हैं।

इस बार हमारा देशदर्शन महाराष्ट्र गया। २६ अक्टूबर १९८८ को हम लोगों ने महाराष्ट्र के लिये प्रस्थान किया। विभिन्न राजनैतिक एवं धार्मिक महत्व के स्थानों को देखते हुए हम लोग ४ नवम्बर १९८८ को प्रातः ४ बजे पूना पहुँचे। वहाँ पर ज्ञान प्रबोधिनी नामक शिक्षा संस्थान पहुँचे। थोड़ी देर विश्राम करने के पश्चात् हम लोगों ने नित्य कर्म करने के उपरान्त शिवापुर ग्राम की ओर प्रस्थान किया। यहाँ पर माँ जीजाबाई और गुरु दादा कोणदेव के मार्गदर्शन में पले बड़े शिवाजी ने अस्त्र-शस्त्र, सैन्य विद्या तथा राजकीय संचालन का ज्ञान प्राप्त किया। यहाँ से लगभग ६ किमी० दूर स्थित कोंडाणा पर फहराते हुए मुगल झण्डे को देखकर माँ जीजाबाई का हृदय रोमांचित हुआ करता था और नेत्र अश्रुपूरित। वहाँ पर पास में ज्ञान प्रबोधिनी ने यन्त्रशाला, कुष्ठ रोग एवं क्षय रोग निवारण केन्द्र तथा फँवट्टी का प्रबन्ध किया है जिससे ग्रामीणों का शहर की ओर पलायन काफी सीमा तक रुका हुआ है। वहाँ से हम लोग वापस पुणे आये तथा कोंडाणा दुर्ग को प्रस्थान किया। यह दुर्ग तानाजी के वीरोचित बलिदान का साक्षी है। तानाजी ने अपनी

जान की बाजी लगाकर इस दुर्ग को जीता था। शिवाजी ने कहा था—‘गढ़ आला पण सिंह गेला’ अर्थात् दुर्ग तो मिला पर सिंह चला गया। इस दुर्ग का नाम सिंहगढ़ हो गया। तत्पश्चात् हम लोगों ने दुर्ग पर चढ़ने का निश्चय किया। सीधे रास्ते से जाने पर ३ घण्टे का समय लगता है परन्तु हम सबने दुर्गम छोटा रास्ता अपनाया और डेढ़ घण्टे में दुर्ग पर पहुँचे। वहाँ हम लोगों ने तानाजी की समाधि पर अपने श्रद्धासुमन अर्पित किये। तत्पश्चात् हम सबने दुर्ग का भ्रमण किया। यह एक दुर्गम किला है। और तानाजी के बलिदान का साक्षी है। तानाजी के बलिदान की कथा सुनकर निकल आये अश्रुबिन्दुओं को रोकते हुए हम लोग नीचे उतरे।

पुणे का प्रमुख अंग ‘शनिवार वाड़ा’ भी हम सब ने देखा। बाजीराव पेशवा ने १७३० में शनिवार के दिन इसका निर्माण कार्य प्रारम्भ करवाया था। २ वर्ष पश्चात् इसका निर्माण कार्य शनिवार के दिन ही सम्पन्न हुआ। अतः इसका नाम शनिवार वाड़ा रखा गया। इसमें ५ दरवाजे हैं—

- (१) मस्तानी दरवाजा
- (२) खिड़की दरवाजा
- (३) दिल्ली दरवाजा
- (४) गणेश दरवाजा और
- (५) नारायण दरवाजा

बाजीराव की महत्वाकांक्षा थी कि वे दिल्ली पर विजय प्राप्त कर सकें अतः उन्होंने एक दरवाजे का मुख दिल्ली की ओर रखा और इसे ‘दिल्ली दरवाजा’ कहा। यहाँ अंग्रेजों ने आग लगा दी जिससे यह क्षत-विक्षत हो गया। मन में इसकी कल्पना लिए हम वापस ज्ञान प्रबोधिनी संस्थान में आये।

देश-दर्शन (चार)

प्रकृति-दर्शन : खण्डाला

गौरव गुप्त नवम (क)

हमारा देशदर्शन जिसमें कि ११ छात्र और १ आचार्य थे, महाराष्ट्र प्रान्त के विभिन्न नगरों नासिक, पुणे आदि का दर्शन करने के बाद पुणे महानगर से लगभग ६० किमी० दूर पर स्थित फिल्म शूटिंग स्थल लोनावाला पहुँचा। लोनावाला बम्बई नगर से लगभग १०५-किमी० की दूरी पर स्थित है। लोनावाला पहुँचने के बाद हम लोग नित्य कर्मों से निवृत्त होकर यहाँ के विभिन्न दर्शनीय स्थलों को देखने के लिये निकले। यहाँ पर हम सभी लोगों ने बलवन तथा झील, बलवन बाँध देखे। बलवन बाँध और बलवन झील फिल्मी शूटिंग के महत्वपूर्ण केन्द्र हैं।

दर्शनीय स्थलों को देखने के बाद हम सभी को यह ज्ञात हुआ कि खण्डाला जाने वाली बस २ घण्टे के बाद है। ३ घण्टे बिताने के लिये हम लोगों ने यह निश्चय किया कि भोजन आदि से निवृत्त होकर आस-पास के स्थानों का भ्रमण किया जाये।

यह निश्चय करने के बाद हम सभी ने भोजन किया और आस-पास के मन्दिर आदि देखे। मन्दिरों को देखने के पश्चात् हम सभी पुनः बस स्टेशन पर आये तो देखा कि खण्डाला जाने वाली बस तैयार खड़ी है। ठीक ४ बजे हम लोगों ने खण्डाला की ओर प्रस्थान किया। बस में आपस की बात-चीत से हमें ज्ञात हुआ कि अधिकांश लोग खण्डाला सूर्यास्त देखने जा रहे हैं। मार्ग में हम लोगों ने देखा कि प्रकृति कितनी सुन्दर है। एक ओर गहरी-गहरी घाटियाँ और दूसरी ओर पर्वत श्रेणियाँ। हम लोगों का १० किमी० का सफर पलक

झपकते ही गुजर गया था। लगभग ४.३० बजे हम लोग खण्डाला पहुँच गये। वहाँ की प्राकृतिक सुन्दरता ने सभी का मन मोह लिया था। खण्डाला में स्थित एक प्राणिउद्यान देखने के लिये हम लोग पहले ही बस से उतर गये। यह प्राणिउद्यान नवनिर्मित ही था किन्तु इसमें अनेक जन्तु आ चुके थे।

प्राणिउद्यान देखने के पश्चात् हम सभी सूर्यास्त देखने के लिये चल पड़े। लगभग २ किमी० की पदयात्रा करके हम सभी उस स्थान पर पहुँचे जहाँ से सूर्यास्त का दृश्य अत्यन्त मनोरम प्रतीत होता था। उस स्थान पर पहले से ही कई लोग पहुँच चुके थे। ये सभी लोग भी सूर्यास्त के मनोरम दृश्य का आनन्द लेने की इच्छा से आये थे।

हम सभी लोग अपने-अपने कमरे तैयार करके सूर्यास्त का दृश्य कैमरों में बन्द करने के लिये व्याकुल थे। धीरे-धीरे सूर्यदेव अस्ताच्चल की ओर बढ़ चले और हमारे इन्तजार की घड़ियाँ समाप्त होने लगीं।

सूर्यास्त के आरम्भ होने की ये अन्तिम घड़ियाँ सभी को बहुत भारी प्रतीत हो रहीं थीं। सूर्यास्त होने लगा और सभी के कमरे सक्रिय हो उठे और सूर्यास्त के उन मनोरम दृश्यों को हमने अपने-अपने कैमरों में बन्द कर लिया।

खण्डाला के सूर्यास्त को देखकर हमें एकाएक ही कन्याकुमारी और माउन्ट आबू की यादें ताजी हो गयीं।

कन्याकुमारी के सूर्यास्त का दृश्य भी अत्यन्त मनोरम होता है। इसकी तुलना खण्डाला के सूर्यास्त से की जा सकती है।

सूर्यास्त देखने के बाद हम लोग बस स्टेशन पर आ गये। लगभग ७.१५ पर लोनावाला जाने वाली बस तैयार खड़ी थी। हम लोग बस में सवार हो गये और

खण्डाला की अनुपम यादों को अपने मन में संजोये हुये वापस लोनावाला की ओर चल पड़े।

लोनावाला पहुँचने के बाद लगभग ८ बजे हम लोगों ने भोजन किया और बस के द्वारा अपने अगले पड़ाव ठाणों की ओर चल पड़े।



राष्ट्रीयता का आधार—भारतमाता

हमारी राष्ट्रीयता का आधार 'भारत-माता' है, केवल भारत नहीं माता शब्द हटा दीजिए तो भारत केवल जमीन का एक टुकड़ा मात्र रह जाएगा। इस भूमि का और हमारा ममत्व तब आता है, जब माता वाला सम्बन्ध जुड़ता है। कोई भी भूमि तब तक देश नहीं कहला सकती, जब तक कि उसमें किसी जाति का मातृक ममत्व, याने ऐसा ममत्व जैसा पुत्र का माता के प्रति होता है, न हो। यही देशभक्ति है, तथापि देशभक्ति का मतलब जमीन के टुकड़े के साथ प्रेम हैना मात्र नहीं है। कई पशु पक्षी भी तो अपने घर से बहुत प्रेम करते हैं—साँप अपना बिल नहीं छोड़ता, शेर माँद में ही निवास करता है, पक्षी अपने घोंसले में रात लौट आते हैं—किन्तु ये देशभक्त हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। मानव भी जहाँ रहता है, वहाँ से उसका कुछ-न-कुछ लगाव हो हो जाता है, फिर भी इतने मात्र से देशभक्ति नहीं आती। उन लोगों का प्रेम ही देशभक्ति कही जाएगी, जो देश में 'एक जन' के नाते सम्बद्ध हैं। पुत्र रूप 'एक जन' और माता रूप 'भूमि' के मिलन से ही देश की सृष्टि होती है। यही देशभक्ति है, जो अमर है।

अंतिम पड़ाव : स्वप्ननगरी बम्बई

□ अजय कुमार एकादश 'ख'

दिनांक ६-११-५८ की रात्रि १.०० बजे का समय था। अपने सामान के साथ हम बारहों लोग ठाणे की एक सड़क पर खड़े थे। आँखों में तो नींद थी किन्तु मन में एक अद्भुत उत्साह था। आखिर हम भारत की स्वप्न-नगरी के द्वार तक जो आ पहुँचे थे।

देश दर्शन के प्रारम्भ से ही इस अन्तिम मंजिल के प्रति हमारे हृदय में विशेष प्रकार का उत्साह था। अब तक जिस नगरी को हमने पुस्तकों में पढ़ा था, फिल्मों में देखा था, अब प्रत्यक्ष देखने वाले थे।

अपने सामान सहित हम उस स्थान पर पहुँचे जहाँ पर हमें रहना था। आचार्य जी के एक मित्र के खाली आवास-स्थान पर हमारे रुकने की व्यवस्था हुई। हमने यात्रा की थकान को प्रातः ६ बजे तक सोकर दूर किया।

तैयार होकर हम अत्यधिक उत्साह से बम्बई वी. टी. के लिए लोकल ट्रेन से चले। लोकल की भीड़ भरी यात्रा का तो अलग ही एक वृत्त है। बस किसी तरह हमने स्वयं को उसमें ठूस लिया। एक घण्टे की यात्रा थी, जो बम्बई शहर की गगनचुम्बी इमारतों, बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों और प्रचण्ड भीड़ को देखते-देखते कट गयी। यात्रा की समाप्ति हुई हम वी. टी. स्टेशन पर उतरे।

हमको सहसा विश्वास नहीं हो रहा था कि हम बम्बई पहुँच चुके हैं। लेकिन सत्य तो सत्य ही है। भव्य वी. टी. स्टेशन जो कि भारत के सुन्दरतम स्टेशनों में से

है, को देखने में हम खो से गये। उसके चमकदार फर्श में हमारे चेहरे उतने ही साफ दीख रहे थे जितने कि किसी काले काँच में दीखते हैं। हर दस मी. की दूरी पर लगे टी. वी. क्षण-क्षण की गतिविधि का व्योरा दे रहे थे। भीड़ तो इतनी कि यदि थोड़ी देर के लिये शरीर को ढीला छोड़ दें तो अपने आप ही द्वार तक पहुँच जायें। खैर स्टेशन को देखकर हम गेट वे ऑफ इण्डिया की ओर बढ़े।

बम्बई की सड़कों पर घूमते हुए हमें ऐसा लग रहा था कि मानो किसी पाश्चात्य संस्कृति के नगर में आ गये हों भौतिक का जो दर्शन वहाँ पर हो रहा था वह तो उसे पश्चिमी प्रदेश ही कह रहा था। गगन चुम्बी इमारतों को देखते हुये हम सायं ४.३० बजे गेट वे ऑफ इण्डिया पहुँचे। लगभग २०-२५ मी. ऊँचा तथा ५०-६० मी. लम्बा गेट वे समुद्र तट पर अपनी शोभा से ऐसा प्रतीत होता है मानों किसी के स्वागत के लिये खड़ा है। वास्तव में उसका निर्माण भी इसीलिए हुआ था। गेट-वे के सामने खड़ा था सुप्रसिद्ध पाँच सितारा होटल "होटल-ताज"। इसका भव्य भवन देखकर हमारी आँखें चौंधिया सी गयीं। बिल्कुल १९वीं शताब्दी के महलों की भाँति बना था। समुद्र के किनारे टहलते-टहलते हम लोग बम्बई को देखते हुये वी. टी. स्टेशन पहुँच गये। वहाँ से वापस ठाणे के लिए लोकल ट्रेन पकड़ी। बीच में हमने बम्बई भ्रमण की दृष्टि से महाराष्ट्र टूरिस्ट बस का आरक्षण ले लिया था।

अगले दिन प्रातः जल्दी उठ कर ८.०० बजे तक

हम मध्य बम्बई जिसे पुराना बम्बई भी कहते हैं, के प्रसिद्ध क्षेत्र दादर पहुँचे। यहीं से हमें बम्बई दर्शन के लिए बस पकड़नी थी। बस में बैठकर हमने यात्रा प्रारम्भ की। हमारा प्रथम विन्दु था गेट-वे ऑफ इण्डिया जिसे हम देख चुके थे। हम मैरीन ड्राइव गये, भारत की सबसे तेज ट्रेफिक की सड़कों में ये प्रमुख है। बम्बई शहर की इमारतें जिनमें गगन को चूमने की प्रतिस्पर्धा सी लगी थी अत्यन्त सुन्दर दृश्य उपस्थित कर रहीं थीं।

उसके बाद हम विधान सभा भवन की ओर गये। यह भी एक भव्य एवं आलीशान भवन है। इसके बाद हम सभी लोग वर्ल्ड ट्रेड मार्केट देखने गये। दीपावली का दिन होने के कारण दुकानें बन्द थी अतः हम उन्हें न देख सके। इसके बाद हम लोगों ने बस में बैठे ही बैठे साइलेंस टावर देखा जो कि पारसियों का श्मशान घाट है। वहाँ पर ऊँचे टावर पर मृतक के शरीर को रख दिया जाता है जिसे चील-कोए खा जाते हैं। जब मात्र हड्डियाँ बचती हैं तो इनको निकट स्थिति गहरे कुएँ में फेंक दिया जाता है। साइलेंस टावर के आगे लता मंगेशकर का पुराना आवास 'प्रभाकुंज' था। इसके पश्चात् हम महालक्ष्मी मन्दिर देखने गये वहाँ पर भीड़ होने के कारण हम बाहर से ही प्रणाम करके लौट आये। अब हम लोग कमला नेहरू पार्क देखने गये। इसको हैगिंग गार्डन भी कहते हैं। इसका यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि जब इसका निर्माण मुगल काल में हुआ था तभी से इसके नीचे विशाल पानी की टंकी बनी है जिसके द्वारा आज भी सम्पूर्ण बम्बई शहर की सप्लाई होती है। इस पार्क के ठीक सामने स्थित दूसरे पार्क को "जूता घर" के नाम से जाना जाता है। इस पार्क में जूते के आकार का १३-१४ मी. ऊँचा सीमेंट का जूता बना है। इसमें चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ उपस्थित हैं। इसके बाद हम लोग तारापुर मछली घर देखने के लिए गये जो कि भारत का सबसे बड़ा मछली घर है। यहाँ देश विदेश से मछलियाँ लाकर रखी गयीं हैं। इसके बाद बम्बई चौपाटी स्थित है जिसका नजारा हमने बहुत दूर से देखा। इसके बाद हम

लोग प्रिंस वेल्स द्वारा उद्घाटित प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम देखने के लिए गये। इस म्यूजियम में कला संस्कृति एवं शारीरिक तथा ऐतिहासिक वस्तुओं का संग्रह है। इस संग्रहालय में तीन मंजिलें हैं। प्रत्येक मंजिल कई भागों में विभक्त है। प्रथम मंजिल में जीव विज्ञान के प्राणियों एवं मूर्तिकला का अनुपम संग्रह है। द्वितीय मंजिल में कला (चित्रकला) एवं मीनाकारी का अनुपम संग्रह है। तृतीय मंजिल में ऐतिहासिक वस्तुओं जिनमें से राजाओं के वस्त्र, हथियार, एवं विभिन्न प्रकार के औजारों का संग्रह किया गया है। इसके साथ हड़प्पा एवं मोहन जोदड़ो की सभ्यता एवं संस्कृति के अवशेष आज भी सुरक्षित हैं। इसके बाद हमारा बम्बई दर्शन कार्यक्रम समाप्त हुआ और हम बी. टी. स्टेशन पर आकर जूह की ओर चल पड़े। इसके बाद हम सभी ने बम्बई जूह चौपाटी देखने का निर्णय लिया। हम लोग सन्ध्या ७.०० बजे पहुँचे अतः जूह के बीच समुद्र तट का आनन्द न ले सके। हम लोगों ने चौपाटी की प्रसिद्ध भेलपुरी का आनन्द लिया। इसके पश्चात् हम पुनः आगे आ गये। हम रात्रि १०.०० बजे वहाँ पहुँचे अतः जैसे-तैसे भोजन करके निद्रा-देवी की गोद में चले गये।

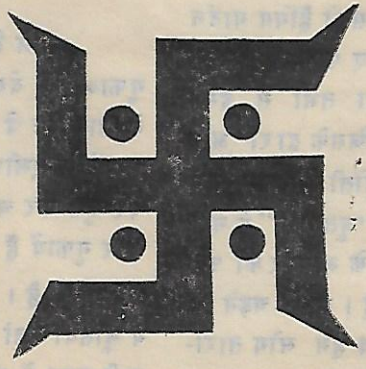
अगले दिन ११ तारीख को हमने ऐलीफेंटा की गुफाओं को देखने का निर्णय किया। हम अत्यन्त उत्साह के साथ गेट वे की ओर गये। वहाँ से जब स्टीमर द्वारा १ घंटे में ऐलीफेंटा नामक स्थान पर पहुँच गये। वहाँ पर कुछ देर चढ़ने के बाद ऊपर पहुँचे। वहाँ पर कुल चार गुफायें हैं। जिसमें भगवान शिव की त्रिमूर्ती विशाल मूर्ति बनी है। ये २ मी. लम्बी तथा ३ मी. चौड़ी है। ये मूर्तियाँ वहाँ पर पत्थरों को काट कर बनाई गई हैं। उसी गुफा में शंकर भगवान के तांडव नृत्य की विभिन्न स्थितियों का चित्रांकन किया गया है। इस गुफा के आगे की बाकी तीन गुफायें खाली हैं। घूमते-घूमते हमको पहाड़ी पर जाने का रास्ता मिल गया। हम लोग दुर्गम मार्गों

से ऊपर चढ़े। किन्तु ऊपर भी विफलता हाथ लगी। वहाँ पर कोई भी गुफा न थी बल्कि एक तोप रखी थी जो कि २० मी. लम्बी थी तथा उमका व्यास ५० सेमी. था। हम लोगों ने पर्याप्त समय तक ऐलीफेंटा की गुफाओं में आनन्द लिया। वापस गेट वे ऑफ इण्डिया आकर हम लोगों ने कुछ आवश्यक वस्तुओं का क्रय-विक्रय का विचार बनाया। हम लोग करीब २-३ घण्टे तक बाजार में घूमते रहे। इसके बाद हम लोगों ने वी. टी. से लोकल ट्रेन पकड़ी व वापस ठाणे आ गये।

अगले दिन १२ तारीख को हम लोगों का रेमण्ड्स प्लॉथ मिल जाने का विचार था लेकिन कुछ समस्याओं के कारण हम वहाँ नहीं जा सके हमने अपना समय दूरदर्शन

के लिए बिता दिया। शाम के समय हम पुनः घूमने निकले। चूँकि आज का दिन मम्बई में हमारा अन्तिम दिन था अतः हम लोग निकट स्थित झील को देखने गये वहाँ पर हम लोगों ने सर्व सम्मति से नोका बिहार का आनन्द लिया। करीब १ घंटे के बाद हम वापस आये अपना सामान आदि बाँधा और भोजन करके सो गये।

प्रातः करीब ३ बजे रात्रि का तीसरा प्रहर। हम लोग नित्यकर्म से निवृत्त होकर जाने के लिए तैयार हो गये। हमारा आने का मन नहीं था किन्तु.....। अतः करीब ३.३० बजे हम वहाँ से कानपुर की ओर रवाना हुये।



देशदर्शन : एक झलक

स्वदेश कुमार एकादश 'क'

दिनांक २१.१०.५८, समय-लगभग १२.५० अप-
राह्न। "भारत माता की जय!" "पवन पुत्र हनुमान
की जय।" आदि गगनभेदी नारों के साथ ६ छात्र व एक
आचार्य सहित दस लोगों के एक दल ने प्रधानाचार्य जी
एवं अन्य आचार्यों के आशीर्वाद के साथ ही विद्यालय
से प्रस्थान किया। निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार दो
छात्र कानपुर सेन्ट्रल से जुड़े। कुल मिलाकर हम १२
लोगों का एक दल था।

उत्तरी प्रांत को महाराष्ट्र से जोड़ने वाली एक
प्रमुख रेलगाड़ी से हमको यात्रा करनी थी वह थी 'बाम्बे
वी०टी० एक्सप्रेस'। 'कानपुर सेन्ट्रल' १.२० पर हमने
अपनी यात्रा की शुरुआत की। मार्ग में झांसी एवं भोपाल
में हम लोगों ने रेलगाड़ी के बाह्य जगत से सम्पर्क किया
नहीं तो शेष समय हम लोग अन्दर ही उल्लासपूर्वक
मनोरंजन करते हुए सफर कर रहे थे।

दिनांक ३०.१०.५८ समय लगभग १०.३०
पूर्वाह्न। बाम्बे वी०टी० एक्सप्रेस ने जलगाँव नामक
स्टेशन पर अपना पड़ाव डाला और हम सभी लोग भार-
तीय वास्तुशिल्प देखने की लालसा से ही वहीं उतर पड़े।
जलगाँव में हम लोग जलपान इत्यादि करके अजन्ता के
लिए रवाना हुए। यह सफर बस लगभग ३ घण्टे का
था। महाराष्ट्र प्रांत की भूमि ऊबड़खाबड़ होने के कारण
वहाँ पर रेल बिछाना दुष्कर कार्य है अतः वहाँ पर बस
द्वारा ही अधिकांश सफर किया जाता है।

लगभग दो बजे दोपहर को हम लोग अजन्ता
के मुख्य द्वार के सम्मुख उपस्थित थे। वहाँ पर टिकट
एवं प्रकाश व्यवस्था लेने के पश्चात् हम लोगों ने भार-
तीय चित्रकला की दुनिया में प्रवेश किया। सम्पूर्ण
अजन्ता भित्तिचित्र बौद्धधर्म अनुयायियों द्वारा १६१ ई०
पू० निर्मित किए थे। ये भित्तिचित्र अत्यन्त अनुपम तथा
कौशलपूर्ण थे। अजन्ता में कुल मिलाकर ३० गुफायें हैं
ये सम्पूर्ण गुफायें दो भागों में बँटी है जिनमें पाँच चैत्य
गुफा कहलाती है और शेष पच्चीस विहार गुफा किसी
समय बौद्ध धर्म के हीनयान एवं महायान दोनों सम्प्र-
दायों की आस्था का केन्द्र थीं ये कलात्मक गुफायें। परन्तु
आज सम्पूर्ण भारतवासियों की आस्था का एक केन्द्र
हैं। अजन्ता के आस-पास का वातावरण ही मानों
कलात्मक हो उठा है, निकट बहता झरना, ऊँचे-ऊँचे पहाड़
एवं हरे-भरे कलापूर्ण ढंग से लगाये गये वृक्ष। इस सम्पूर्ण
सौंदर्य की मात्र अनुभूति ही सम्भव है उसे लिपिबद्ध
नहीं किया जा सकता। अजन्ता का भरपूर आनन्द उठाने
के पश्चात् हम मुगलकालीन ऐतिहासिक नगरी औरंगा-
बाद पहुँचे। इस नगर की तो रात्रि में छटा ही निराली
थी। कहीं ऊँचे-ऊँचे आधुनिक भवन तो कहीं मुगलका-
लीन स्थापत्य कला के परिचायक गुम्बदाकार बुर्ज वाले
विशाल भवन।

दिनांक ३१.१०.५८ को हम लोग औरंगाबाद
से २८ कि०मी० दूर स्थित एलोरा की मूर्तिकला देखने

की लालसा से चले परन्तु औरंगाबाद को यह कैसे सहन होता कि इतने प्रसिद्ध स्थल निकट होते हुए भी वह सौन्दर्य की दृष्टि से शून्य ही रहे अतः औरंगाबाद के पास स्वयं भी एलोरा को चुनौती देने के लिए पनचक्की, दक्षिण का ताजमहल नाम से विख्यात 'बीबी का मकबरा' तथा इतिहास में पागल बादशाह के नाम से प्रसिद्ध मुहम्मद तुगलक की याद कराता हुआ 'दौलताबाद का अक्षुण्य किला एवं आधुनिक कंपनी बाग' मौजूद था। अतः हम सभी ये सब देखने का लोभ संवरण नहीं कर पाये तथा इन सभी स्थलों का आनन्द लेते हुए हम सभी मूर्तिशिल्प की दुनिया एलोरा देखने चले।

एलोरा में ६०-६५ गुफायें हैं परन्तु सिर्फ ३५ को ही एलोरा मूर्तिशिल्प की संज्ञा प्रदान की गई है इनमें हिन्दू सम्प्रदाय का विस्तृत वर्णन किया गया है। एलोरा में १ से १२ गुफायें बौद्ध धर्म, १३ से २१ गुफायें विभिन्न देवी देवताओं की मूर्तियाँ एवं ३० से ३४ तक जैन धर्म की गुफायें हैं। लगातार एक साथ इतनी गुफाओं को देखना कुछ छातों को बोझिल सा लगा था परन्तु हम कुछ साथियों को जिन्हें मूर्तिकला में जरा भी रुचि न थी, आनन्द आ रहा था। एलोरा को देखते समय हमें गुफा क्रमांक १६ विशेष लगी। गुफा १६ सम्पूर्ण एलोरा मूर्तिकला की सार थी। कुछ गुफायें (१३, १४, १५ एवं १६) ३ मंजिली गुफायें थीं। एलोरा के निकट का वातावरण भी सुन्दर था। एलोरा के पश्चात् हम लोग १२ ज्योतिर्लिंग में से एक 'वृष्णेश्वर ज्योतिर्लिंग' देखने गये। ये ज्योतिर्लिंग जगतगुरु शंकराचार्य द्वारा स्थापित हैं। ज्योतिर्लिंग देखने के पश्चात् हम लोग पुनः औरंगाबाद वापस आये। दिनाङ्क १ को हम लोगों ने औरंगाबाद नगर का भ्रमण किया।

दिनाङ्क २.११.५५ को हम लोग 'आदर्श ग्राम' देखने एवं अन्ना हजारे से मिलने के लिए उनके निवास ग्राम 'राले गढ़ सिदरी' देखने के लिए बस द्वारा पारनेर पहुँचे

पारनेर पहुँचने पर हमारे हाथ एक असफलता लगी वह थी कि अन्ना हजारे उस समय अपने आस्ट्रेलिया प्रवास पर थे अतः हम लोग 'आदर्श ग्राम' देखने से वंचित रह गये। आदर्श ग्राम के विषय में जो मुझे ज्ञात था वह था कि वहाँ कोई भी व्यक्ति धूम्रपान नहीं करता है। ग्राम में घरों पर ताले भी नहीं लगते हैं अर्थात् परस्पर इतना विश्वास। जरा सोचकर देखियेगा!

पारनेर से उसी दिन साईं बाबा के विख्यात नगर 'शिर्डी' गये हम लोग रात्रि ५ बजे के लगभग शिरडी पहुँचे। रात में नगर की एक झलक लेने के पश्चात् मंदिर दर्शन का कार्यक्रम सुबह के लिए स्थगित करते हुए हम सभी भोजन इत्यादि के पश्चात् अब तक की घटनाओं पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए सो गये। प्रातः शीघ्र ही तैयार होकर मंदिर के दर्शन किए। मंदिर में विशाल चाँदी की मूर्ति देखकर सभी अचंबित रह गए उससे अधिक अचंबित थे वहाँ की भीड़ को देखकर। परन्तु शीघ्र ही शिर्डी की आर्थिक सम्पन्नता का रहस्य हमारी समझ में आ गया। प्रातः ६ बजे तक दर्शन इत्यादि के पश्चात् हम लोग बस द्वारा ही नासिक को रवाना हुए। लगभग साढ़े चार घण्टे का सफर करने के पश्चात् ३ तारीख की प्रातः ही हम सभी नासिक पहुँच चुके थे। 'नासिक में भगवान राम का पावन पंचवटी' लक्ष्मण द्वारा सीता जी की सुरक्षार्थ खींची गई लक्ष्मण रेखा उसी दिन देखने के पश्चात् हम सभी थकान से अत्यन्त ग्रस्त थे अतः उस दिन हम सभी ने विश्राम किया। अगले दिन (दिनाङ्क ४-११-५५) हम लोगों ने नासिक से ६२ किमी० दूर स्थित पहाड़ी पर त्रयंबक ज्योतिर्लिंग गुरु गोरखनाथ गुफा जाने का निर्णय लिया। प्रातः तड़के ही सफर के लिए रवाना हुए। त्रयंबक का ज्योतिर्लिंग ७०० फुट की ऊँचाई पर स्थित था वहाँ पर चढ़ने के लिए लगभग ७०० सीढ़ियाँ थी। हमारे लगभग सभी साथी चढ़ते-चढ़ते थक चुके थे परन्तु एक अज्ञात शक्ति

हमें खींचती ही जा रही थी और हम सभी ऊपर चढ़ते ही चले जा रहे थे ।

त्रयंबक देखने के पश्चात् गोरखनाथ गुफा देखने के लिए लगभग ५० सीढ़ियाँ थी । उन सीढ़ियों को चढ़ना अब कुछ के लिए समस्या थी तो कुछ के लिए एक खेल । परन्तु जैसे-तैसे लगभग सभी गोरखनाथ गुफा देखने के पश्चात् वापस नासिक लौट चले ।

उसी दिन रात्रि में ही हमें पूना के लिए रवाना होना था अतः सभी अपना-अपना सामान बाँधने में लग गये । तैयार होने के पश्चात् कुछ परिचितों से विदाई लेते हुए हम सभी रात में बस द्वारा पूना पहुँचे । प्रातः काल पूना नगर की मान्यता की एक झलक हमने अपने निवास स्थल की आठ मंजिली इमारत के सबसे ऊपरी भाग से ली । उसके पश्चात् तैयार होकर 'ज्ञान प्रबोधिनी' नामक संस्था जिसमें कि हम रह रहे थे उसके कुछ व्यक्तियों से प्रथम परिचय के पश्चात् हम 'पुणे दर्शन' के लिए चले ।

पुणे दर्शन में हमने धन देवी लक्ष्मी का प्रसिद्ध मंदिर सारस बाग, महात्मा फुले का वस्त्र संग्रहालय, राजा केलकर का संग्रहालय, मराठा वंश की शनिवार चाडी तथा सिन्धिया वंश की समाधि मंदिर का हमने दर्शन किया । इनमें से राजा केलकर संग्रहालय तथा समाधि मंदिर सम्पूर्ण भारत में अपने सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है । अगले दिन दिनांक ६-११-६६ को हमने अपने कुछ परिचितों में मिलने एवं नगर देखने में बिताया तथा ७-११-६६ को हमने इतिहास प्रसिद्ध 'कोकाणा दुर्ग' का भ्रमण किया । इस दुर्ग को शिवाजी ने माता जीजाबाई के आग्रह पर तानाजीमालसुरे के द्वारा विजित करवाया था । इस दुर्ग का अधिकांश भाग नष्ट हो चुका था परन्तु उसकी पहाड़ी की ऊँचाई चढ़ने में हम सभी को बहुत आनन्द आया । दुर्ग पर तानाजी की समाधि तथा भारत का विजयी तिरंगा देखने का आनन्द ही कुछ और

था क्योंकि वहाँ पर पहले अंग्रेजों ने अपना 'यूनियन जैक' काफी लम्बे अंतराल तक लगातार फहराया था ।

८ नवम्बर को प्रातः शीघ्र ही हमसे लोनावाला की दिशा में चले । लोनावाला में प्रसिद्ध 'टाटा बाँध', देखने के बाद सूर्यास्त के दृश्यों के लिए विख्यात खण्डाला को हम लोग चले । मार्ग में महाराष्ट्र सरकार द्वारा पर्यटकों के लिए निर्मित चिड़ियाघर देखने के पश्चात् खण्डाला हिल पहुँचे । वहाँ पर लगभग एक घण्टे के इन्तजार के पश्चात् सूर्यास्त का भव्य दृश्य देखने को मिला । पहाड़ों के बीच लाल आग का गोला आज भी हमारे हृदयों में एक छाप डाले हुये है । दिन भर के अपने तेज के पश्चात् संध्या को सूर्यनारायण भी विश्राम के लिए जा रहे थे और उनका स्थान ले रहा था शीत-लता का प्रतीक चन्द्रमा ।

खण्डाला से हम लोग उसी दिन बस द्वारा ठाणे के लिए चले । ठाणे रात्रि लगभग तीन बजे पहुँचना था अतः सभी आराम से सोते हुए गए । ठाणे में रात्रि में ही हम लोगों ने अपने रहने की व्यवस्था को देखा एवं उसका उपयोग भी किया । पूरा कार्यक्रम पूर्वनिर्धारित था अतः कोई विशेष परेशानी नहीं हुई । हम लोगों को ठाणे में रहना था तथा प्रतिदिन बम्बई जाना एवं आना था । यह सफर हम लोगों को बोझिल नहीं लगा क्योंकि हम सभी के लिए लोकल ट्रेन में सफर एक नया अनुभव था ।

९ नवम्बर को हम चकाचीँध भरी नगरी बम्बई में प्रवेश किया । बम्बई का रेलवे स्टेशन विक्टोरिया टर्मिनस (V.T.) अत्यन्त विशाल एवं भव्य स्टेशन था । जिसका भवन अंग्रेजों द्वारा निर्मित था । वी०टी० से सीधे हम लोग भारत के समुद्री द्वार 'गेट वे ऑफ इण्डिया' पहुँचे । वहाँ पर घूमने एवं बम्बई के कुछ प्रमुख बाजारों को देखने में ही हमने यह दिन व्यतीत कर दिया ।

१० नवम्बर को हम सभी ने बम्बई दर्शन का

कार्यक्रम निर्धारित किया बम्बई दर्शन में हमने 'गेट वे आफ इण्डिया' नैरिमन प्वाइन्ट, लक्ष्मी नारायण मंदिर प्रभाकुंज, चौपाटी, तारापुरवाला मत्स्य संग्रहालय, कमला नेहरू बाग, बूट हाऊस तथा हैगिग गार्डन देखा। सभी स्थानों हम सभी को बहुत पसन्द आये जिनमें से तारापुर वाला मत्स्य संग्रहालय अदभुत ही था। एक साथ इतनी प्रजातियों की मछलियाँ हम लोगों ने जीवन में प्रथम बार ही देखी थी।

११ नवम्बर को दीपावली थी। दीपावली का उत्साह हम सभी में प्रातः काल से ही थी लेकिन कुछ छात्रों के हृदयों में घर से इतना दूर होने का अहसास भी। परन्तु हमारा दिन भर का जो कार्यक्रम था उससे सभी ने अपनी घर की यादों को भुला दिया और भ्रमण में समरस हो गये। ११ नवम्बर की शाम हम लोगों ने जूहू बीच में आनन्द पूर्वक बितायी और दिन में हम लोग दादर, गोरे गाँव तथा विले पार्ले आदि स्थानों में घूमते रहे तथा दीपावली का मिष्ठान हम लोगों ने एक परिचित के यहाँ ग्रहण किया तथा अगले दिन के लिए मिठाई इत्यादि साथ लेते हुये हम सभी ठाणे लौट आये थे।

१२ नवम्बर को हमारा बम्बई में अन्तिम दिन था उस दिन हमें केवल बम्बई तट से दूर समुद्री द्वीप 'एलीफैंटा' देखने जाना था। चारों तरफ विशाल जल राशि के मध्य बना यह गुफा मंदिर सचमुच में अद्वितीय है।

मन्दिर चूँकि अंग्रेजों का सैनिक केन्द्र भी था अतः वहाँ पर उनकी दुर्ग व्यवस्था की झलक भी स्पष्ट थी। उसके पश्चात् कुछ ऊँचाई पर 'कैनन हिल' नाम से विख्यात एक पहाड़ी थी उसके ऊपर अंग्रेजों की एक प्रसिद्ध तोप रखी हुई थी यह तोप अत्यन्त उच्च तकनीक से निर्मित थी। लगभग तीन घण्टे के पश्चात हम लोग पुनः बम्बई को वापस चले यह हमारी एक घण्टे की यात्रा स्टीमर के द्वारा थी अतः इसका अनुभव भी अनोखा था। सायंकाल हम लोगों ने ठाणे में एक जला-

शय पर नौका विहार किया तथा हँसी-खुशी के साथ अपनी वापसी की तैयारी में लग गए। रात्रि में परिचितों से मुलाकात की और अब तक की सम्पूर्ण समीक्षा के पश्चात् सभी शयन को चले गये।

रात्रि से ही हमें उल्लास था कि अपने नगर को प्रस्थान करेंगे साथ ही दिलों में यह कसक थी कि यह देशदर्शन कार्यक्रम समाप्त होने वाला था। प्रातः ६.३० बजे ही हम सभी 'सुपरफास्ट एक्सप्रेस, पर बैठ चुके थे। चूँकि आरक्षण उपलब्ध न होने के कारण हम सभी को जल्दी ही आना पड़ा था परन्तु दीपावली अवकाश होने के कारण ट्रेन में कोई परेशानी नहीं हुई। लौटने का सफर अत्यन्त लम्बा महसूस हो रहा था परन्तु कुछ सहयात्रियों से अच्छा परिचय हो जाने के कारण सफर शीघ्र ही बीतने लगा था। भोपाल के निकट से ही जानी पहचानी जलवायु के दर्शन होने लगे थे और वेशभूषा इत्यादि से लगने लगा था कि हम उत्तरी भारत में भी आ चुके हैं।

यात्रा करते समय मुझे भारतीय सभ्यता की यह विशेषता अनायास ही स्मरण हो आई—

“कोस—कोस पर बदले पानी,

चार कोस पर बानी।”

सम्पूर्ण देशदर्शन कार्यक्रम की समीक्षा एक दृष्टि में करते समय जब मेरा ध्यान अजस्ता, एलोरा की कला शिल्प की ओर गया तो मेरी कलम कवि इकबाल की पंक्तियों के लिखने के लिए मचल उठी—

“बाकी मगर है अब तक नामों-निशां हमारा,
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारा।”

दिनांक १४ नवम्बर को हमारे कदम कानपुर सेन्ट्रल पर पड़े और हम सभी अपने-अपने कर्मों में एक संकल्प के साथ लग गये। □

पं० जवाहरलाल नेहरू : कुछ स्मृतियाँ

सुनील निगम द्वादश (क)

+ + +

पं० जवाहर लाल नेहरू का जन्म १४ नवम्बर सन् १८८६ को उत्तर प्रदेश के शहर इलाहाबाद में आनन्द भवन में हुआ था। आपके पिता का नाम पं० मोती लाल नेहरू था। अपने पिता के पदों पर चलकर इन्होंने देश की सेवा की और स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री हुए। यह वर्ष हमारे देश में नेहरू जन्म शताब्दी के रूप में मनाया जा रहा है। अतः मैं कुछ स्मृतियाँ एवं कुछ संस्मरण उनके जीवन, उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ।

१० नवम्बर सन् १९६१ में जब नेहरू जी न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल असेम्बली में भाषण दे रहे थे तो वहाँ अमेरिकी राजदूत सर गैलब्रेश भी बैठे थे जो नेहरू जी के प्रशंसकों में थे। परन्तु जब उनसे भाषण के सम्बन्ध में पूछा गया तो उन्होंने कहा "उस भाषण में विशेष कुछ नहीं था।"

+ + +

देश-विदेश के कुछ नेता नेहरू जी को अहंकारी मानते थे। सन् १९६२ में जब भारत चीन युद्ध चरम सीमा पर था तब नेहरू जी अपना देश छोड़कर श्रीलंका चले गए थे जो लोगों को अच्छा नहीं लगा। चीनी खतरे के सम्बन्ध में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए नेहरू जी ने कहा, "मैंने सेना को आदेश दे दिया है उन्हें बाहर निकाल फेंकें।" यही वक्तव्य है जिसने बाद में चीनी नेता चू एन-लाई को यह कहने के लिए उत्तेजित किया कि जिन लोगों से वह मिले थे उनमें नेहरू जी सबसे अहंकारी थे।

नेहरू जी की लगभग हर चीज में दिलचस्पी थी। जीवन भर उनमें बच्चों जैसा कौतूहल बना रहा। इस सम्बन्ध में उनकी एक घटना याद आ रही है—

एक बार अमेरिकी राजदूत एल्सवर्थ बंकर की पत्नी ने एक ऐसी चीज अविष्कार किया जिससे झाड़ू लगाने वालों की परेशानी घट सकती है तो नेहरू जी ने एक रविवार के तीसरे पहर उन्हें प्रधानमंत्री निवास पर चाय पर बुलाया। वह बुजुर्ग महिला एक लम्बे हथ्थे की झाड़ू लेकर आयी। उनका कहना था कि झाड़ू लगाने वाली स्त्री की कमर इस कारण झुक जाती है क्योंकि वह छोटी झाड़ू से काम करती है। नेहरू जी ने प्रधानमंत्री निवास के सामने उस झाड़ू से सफाई करवायी बाद में उन्होंने दिल्ली नगर निगम और नयी दिल्ली नगर पालिका से लम्बे हथ्थे की झाड़ू का प्रयोग करने और सफाई वालों को वैसी झाड़ू देने के लिए कह दिया।

+ + +

पहाड़ों के प्रति अपने आकर्षण के अतिरिक्त बच्चों, जानवरों, फूल-पौधों और पेड़ों से लगाव नेहरू जी का एक विशिष्ट स्वभाव था। भारतीय स्कूल में ऐसे बस्तों के चलन के लिए, जो बच्चों की पीठ पर लटकाये जायें, नेहरू जी ही जिम्मेदार हैं। नेहरू जी को बच्चों से बड़ा प्यार था परन्तु हँसी-खिलवाड़ की प्रवृत्ति में नेहरू जी बच्चों से जरा सख्ती से काम लेते थे। इन्दिरा जी नेहरू जी के जन्म-दिवस पर बच्चों से

“चाचा नेहरू” के नारे लगवाया करती थीं जो उनको पसंद नहीं था। नेहरू जी के जन्म दिवस १४ नवम्बर को बाल दिवस के रूप में मनाना यह इंदिरा जी का ही कार्य था जो उनके द्वारा किये गए कार्यों में से एक था।

+ + +

जब राजीव और संजय छोटे थे तो इंदिरा जी ने कश्मीर से एक ‘शीप’ कुत्ता हासिल कर लिया जिसका नाम ‘सोना’ रखा गया। वह बच्चों के किसी काम का नहीं था। वह बस घूमता रहता था और दूसरे कुत्तों से लड़ने-भिड़ने के मौके खोजता था। एक बार जब लेडी माउंटबैटन ने उसे पुचकारने की कोशिश की और उसने उनको काट लिया। तब नेहरू जी ने बच्चों को बताये बिना उसे मारने के लिए भेज दिया।

+ + +

नेहरू जी को जानवरों से अत्यधिक लगाव था। एक बार नेहरू जी की बहन कृष्णाहठी सिंह ने एक कुतिया नेहरू जी को दी। उन्होंने उसका नाम “लैसी” रखा। एक रोज सबेरे प्रधानमंत्री निवास का एक कर्मचारी किसी निजी काम से अपने क्वार्टर जा रहा था और वह बिना इजाजत के लैसी को भी प्रधानमंत्री निवास से बाहर ले गया। जब वह लौट रहा था तो प्रधानमंत्री-निवास के फाटक के सामने ही लैसी एक ट्रक के नीचे आकर मर गयी। उसके मरने की खबर सुनकर नेहरू जी एवं बच्चे बहुत दुखी हुये। उसके दफन के समय नेहरू जी के साथ-साथ कई लोग मौजूद थे।

नेहरू जी के अनुसार धीरज और सन्न रखना बहुत जरूरी है। वे जानवरों से बहुत धीरज और सन्न से काम लेते थे।

+ + +

इंदिरा जी को ज्योतिष में विश्वास था। एक बार नेहरू जी दपतर से चलकर मौलाना आजाद के घर पहुँच गए। और उन्होंने अपने सचिव को घर भेज

दिया। घर पहुँचकर जब इंदिरा जी ने सचिव को बताया कि एक ज्योतिषी के अनुसार पापा की टाँग दुर्घटना में कट जायेगी। सुनते ही सचिव जी तुरन्त मौलाना के घर चले गए और वहाँ से घर लौटते समय उन्होंने नेहरू जी को इस बात से अवगत कराया। नेहरू जी ने कहा कि तुम इंदिरा जी की फिजूल की बातों में क्यों आ गए? हँसकर टाल देते। प्रसंगवश मैं यह उचित समझता हूँ कि ज्योतिषी की यह भविष्य-वाणी सही निकली और नेहरू जी की एक टाँग बेकार हो गयी थी जिसको वह घसीट कर चलते थे। यह टाँग उनके फालिज गिर जाने के कारण बेकार हुई थी।

+ + +

दक्षिण भारत के लोग नेहरू जी को बहुत सम्मान देते थे। जब दूसरे विश्व-युद्ध की घोषणा हुई, उस समय नेहरू जी चीन में थे। उससे कुछ समय पहले गाँधी जी मद्रास गए थे।

‘युद्ध-घोषणा के तुरन्त बाद सुभाष चन्द्र बोस मद्रास आये और उन्होंने मरीना के ‘बीच’ पर सार्वजनिक सभा को सम्बोधित किया। इस भाषण में सुभाष चन्द्र बोस ने गाँधी जी, नेहरू जी एवं पुराने नेताओं पर भी हमला किया। थोड़े समय बाद नेहरू जी भी आये और उसी समुद्र-तट पर उनकी सभा हुई। इस सभा में बेइतिहा भीड़ थी। नेहरू जी हमेशा दक्षिण भारत में सबसे अधिक लोकप्रिय राष्ट्रीय नेता रहे।

+ + +

नेहरू जी को अपनी सुरक्षा-व्यवस्था पर बड़ी खीझ आती थी। जिसके कारण उनकी सुरक्षा-व्यवस्था उनसे छुपाकर करनी पड़ती थी। कई अवसरों पर उनके ड्राइवरों ने भी सुरक्षा-गाड़ का कार्य किया।

जब प्रधानमंत्री का पद नेहरू जी द्वारा ग्रहण कर लिया गया तो उनके कार का ड्राइवर उत्तर-पश्चिम सीमांत के व्यक्ति देसराज को बनाया गया। एक बार नेहरू जी और डा० खान सीमांत प्रदेश गए थे तो

मालाकन्द नामक जगह पर उन पर व उनके साथियों पर वहाँ के कबायलियों ने गोलियाँ चलायी। उस समय देसराज ने साहस का परिचय देते हुए नेहरू जी को बचाया था।

+ + +

यह घटना १२ मार्च १९५५ की है। नागपुर बाबूराव लक्ष्मण कोहली नामक एक रिक्शे वाले ने चाकू से नेहरू जी की हत्या करने की कोशिश की थी। कोहली एक प्रकार का राजनीतिक विचारक था। उसके अनुसार कांग्रेस बहुमत के आधार पर शासन नहीं चलाती है। २८ जुलाई १९५५ को नागपुर के जिला

एवं सेशन जज ने भारतीय दंड विधान की धारा ३०० अन्तर्गत '१२ मार्च, १९५५, को प्रधानमंत्री नेहरू की हत्या करने की 'कोशिश' के आरोप पर उस 'राजनीतिक विचारक' को ६ वर्ष के कठोर कारावास की सजा दी।

+ + +
१९५५ में एक दिन सबेरे-सबेरे नेहरू ने अपने सचिव से कहा कि वह ७४ वर्ष की आयु से अधिक जीवित नहीं रहेंगे। परन्तु भारत ने नेहरू जी को बचाये रखा। और ७४ वर्ष पूरे होने के बाद वह ६ महीने ११ दिन और जीवित रहे।

गीत

अनुराग तिवारी अष्टम (ख)

मैं यही गीत गाता हूँ इसे गाकर सुनाता हूँ।
कि सुमनों से कहीं कोई ना हो वंचित ॥
हे ईश्वर ! ये कुसुम हो जायें चिर सिञ्चित।
मैं इसे जीवन में सजाता हूँ ॥
मैं यही गीत.....

हमारे गीत करें हरदम हमारा पंथ निर्देशित।
झुकाता शीश हूँ उनको, करें ये स्नेह से सिञ्चित ॥
यही विधि से मनाता हूँ ॥
यही मैं गीत गाता हूँ।
इसे गाकर सुनाता हूँ ॥

卐 दूरदर्शन धारावाहिक से卐

जितेन्द्र त्रिपाठी दशम् (ख)

टेलीफोन की घण्टी बजी, दूसरी तरफ से एक जोरदार आवाज आई, हैलो, "बीबी नातियों वाली" हमने तुम्हारी दो लड़कियों 'रजनी' और 'बसन्ती' का 'एअर होस्टेस' के द्वारा अपहरण कर लिया है।

आप दो दिन के अन्दर 'इधर - उधर' से दो लाख रुपये लेकर तुरन्त आ जायें, मगर आपने 'बैरिस्टर विनोद' की या 'करमचन्द' की मदद ली, तो हम तुम्हारे 'खानदान' को मिटा देंगे तथा तुम्हारे 'अड़ोस - पड़ोस' वालों को भी पता नहीं चलेगा कि "अपराधी कौन" है? अगर 'पुलिस फाइल' से किसी को पता भी चला कि 'हम लोग' यहाँ हैं तो तुम्हारे घर की 'बुनियाद' हिला देंगे। हम यही 'नुक्कड़' पर बैठे, तुम्हारा 'इन्तजार' कर रहे हैं।



卐 कुर्सी तुमका शत शत प्रणाम 卐

कौशलेन्द्र मणि सप्तम (क)

कुर्सी तुमका शत-शत प्रणाम ।
 लंगड़ा, चिमड़ा, काना कुबरा,
 अन्धा बहिरा औ चितकबरा ।
 ऐं चा, ताना मूर्खाधिराज,
 छांगुर, कनकटा और झवरा ।
 जितने सब संभव अवगुण हैं,
 जितने सब संभव नीच काम ।
 सब रहें किन्तु तुम साथ रहो,
 सबहीं करते झुकि-झुकि सलाम ।
 कुर्सी तुमका शत-शत प्रणाम ॥

तुम पर आसीन भये जबहीं,
 उपदेश बहुत ही आवत हैं ।
 सोचें कबहूँ ना अपने का,
 लेक्चर सबका पिलवावत हैं ।
 फाइल सबहीं का बांट देयें,
 अपना ना कबहूँ करें काम ।
 सबके घर दावत खाये लेयें,
 अपना ना कबहूँ लेयें नाम ।
 कुर्सी तुमका शत-शत प्रणाम ॥

दुनिया के कुर्सी हीन सबे,
 झुकि-झुकि करते तुमका प्रणाम ।
 हो मित्र तुम्हीं हो बन्धु तुम्हीं,
 तुमही निबटाओ सभी काम ।
 चाहो जब कुर्सी दिलवा दो,
 ना चाहो कटवा देव नाम ।
 कुर्सी माँ ! हम पर दया करौ,
 स्वीकार करो मेरा प्रणाम ।
 कुर्सी तुमका शत-शत प्रणाम ॥

भारत अपना देश

सुभाष शर्मा, आचार्य

आदि काल से चला आ रहा,
 यह पावन संदेश है ।
 सारे जग को राह दिखाता,
 भारत अपना देश है ।
 रवि किरणों सा धर्म सनातन,
 आलोकित संसार है ।
 राम-कथा की जन मानस में,
 बहती पावन धार है ।
 गंगा की अविरल लहरों में,
 संस्कृति अपनी शेष है ।
 सारे जग को राह --- ---

गंगा, यमुना, सरस्वती ये,
 नदियाँ परम पुनीता हैं ।
 गौरी, कमला दुर्गा संग में,
 जनक नन्दिनी सीता हैं ।
 सिया—राम को भेजने वाला
 पाता नहीं कलेश है ।
 सारे जग को राह --- ---

भारत की हर ललना रखती,
 माँ दुर्गा सी शक्ति है ।
 पति को ही परमेश्वर समझे,
 अद्भुत उसकी भक्ति है ।
 माँ अनुसुइया गोद में खेले
 ब्रह्मा, विष्णु, महेश है
 सारे जग को राह --- ---

धर्म ज्ञान मर्यादा लाये,
 राम इसी आँगन में,
 सत् कर्मों से आज भी पूजित,
 बने हुए वे जन-जन में,
 अंगद का ही पर हटाने,
 स्वयं चला लंकेश है ।

सारे जग को

कण-कण की शक्ति में तुमने
 अपना रूप छपाया है ।
 अन्तर्यामी अविनाशी बन,
 सारा विश्व बनाया है ।
 मन्दिर, मस्जिद, गुरु द्वारों में,
 आज भी श्रद्धा शेष है ।

सारे जग को राह

ऋषि मुनियों की अमृत वाणी,
 प्रेम सुधा की सरिता है ।
 पुनर्जन्म के चक्र में प्राणी,
 हँसकर जीता-मरता है ।
 गीता कहती है यह आत्मा,
 केवल बदले वेश है

सारे जग को राह

आदि काल से चला आ रहा,
 यह पावन संदेश है ।
 सारे जग को राह दिखाता,
 भारत अपना देश है ।



क्या लिखूँ ?

दिव्य मिश्र सप्तम (क)

सुना है कि हाईस्कूल की पाठ्यपुस्तक (हिन्दी) में एक पाठ है 'क्या लिखूँ', जो कि हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार पद्मलाल पुष्पलाल बख्शी ने लिखा है। मैं बहुत दिनों से पत्रिका में एक लेख देने के लिये विषय छाँट रहा था; लेकिन मेरी समझ में यह नहीं आ रहा था कि मैं क्या लिखूँ। दूसरों से यह पूछते-पूछते कि मैं क्या लिखूँ, मैं बड़ा परेशान हो गया। मैं यह समझता हूँ कि— शायद जितनी बुरी हालत मेरी थी इतनी तो स्वयं बख्शी जी की भी नहीं रही होगी। अतः मैंने यह सोचकर कि मेरी व बख्शी जी की स्थितियों में एक अद्भुत साम्य है, अपने इस लेख को भी 'क्या लिखूँ' ही शीर्षक दे डाला। हालाँकि शीर्षक समान हैं परन्तु आप लोग यह पायेंगे कि दोनों के विचारों तथा लेखन शैली में बड़ा अन्तर है।

सर्वप्रथम मेरा ध्यान एक कहानी लिखने की ओर गया लेकिन अचानक मेरे दिमाग में यह बात कुरेद गयी कि सामान्यतः कहानी तो सभी बना लेते हैं और कुछ तो बहुत ही अच्छी बना लेते हैं और तो और यह जीवन भी एक कहानी ही है। अतः मैंने कहानी लिखने का विचार त्याग दिया।

फिर मैंने सोचा कि मैं एक कविता लिखूँ। जब मैं कविता लिखने बैठा तो मैं पन्ने के पन्ने लिखता चला गया, स्याही बर्बाद की, अरे साहब, यह तो कुछ भी नहीं, कविता लिखने का प्रयास करते-करते एक निव भी टूट गयी। जब-जब मैंने कविता की दो पंक्तियाँ लिखीं तब-तब मैं उनका शीर्षक नहीं सोच पाया और जब दो-दो शीर्षक एक साथ दिमाग में आये तब-तब

उनके लिए मैं चौथाई पंक्ति भी नहीं लिख पाया। अतः कविता लिखने का विचार भी मैंने छोड़ दिया।

तीसरा विचार मेरे मष्तिष्क में एक नाटक लिखने का आया। जब मैं नाटक लिखने बैठा तो मुझे राम और श्याम के सिवा कोई तीसरा पात्र न सूझा। अजी साहब, यहाँ तक कि मुझे सीता और राधा के नाम भी न सूझे। उचित पात्र तथा अच्छे संवाद ढूँढ़ने में मुझे असफलता हाथ लगी। अतएव मेरे मन ने इस नाटक-लेखन के प्रस्ताव को भी ठुकरा दिया। अब कुछ-कुछ निराशा होने लगी थी।

सहसा मेरे मष्तिष्क ने चुटकुले की ओर उछाल मारी परन्तु उतनी ही तेजी से वह यह सोचकर वापस भी आ गया कि चुटकुले तो सभी सुनते तथा सुनाते हैं और फिर चुटकुला तो सभी व्यक्ति जानते हैं, लेकिन मैं तो अपने पाठकों के मन के ऊपर एक अलग और विशेष प्रभाव डालना चाहता था। इसलिये मैंने चुटकुला लिखने का विचार भी अपने मन से निकाल दिया।

अन्त में जब अपना लेख जमा करने के लिये मात्र एक दिन की अवधि शेष रही तो सहसा मेरे दिमाग में यह विचार आया कि क्यों न अपने इन अनुभवों को ही कलम से निकालकर आपके सामने परोसा जावे और यह विचार मेरे मन को भा गया। मुझे लगा कि पतझड़ में सावन आ गया। मैंने कलम थामी और इसे लिख डाला। अब यदि यह स्वीकृत हो जायेगा तो आप तक पहुँचेगा वर्ना रद्दी की टोक-रियों में कागज बड़े अच्छे लगते हैं।

❖ ❖ ❖ सामान्य ज्ञान ❖ ❖ ❖

राजेश अवस्थी सप्तम (क)

- १ गर्म करने पर कौन सा विटामिन नष्ट होता है ?
- २ शरीर में विटामिन 'ए' की कमी से कौन सा रोग उत्पन्न होता है ?
- ३ दूध में पायी जाने वाली सर्करा का क्या नाम है ?
- ४ किस कीट का रक्त सफेद होता है ?
- ५ मक्खी किस जगह अण्डे देती है ?
- ६ मच्छर का प्यूपा क्या कहलाता है ?
- ७ मच्छर के लारवा का क्या नाम होता है ?
- ८ विश्व में सबसे लम्बा पेड़ कौन सा है ?
- ९ आधुनिक मानव की उत्पत्ति कब हुई ?
- १० केंचुआ का शरीर कितने भागों में विभक्त होता है ?
- ११ सबसे बड़े फूल का क्या नाम है ?
- १२ रोग फैलाने वाले कीट को क्या कहते हैं ?
- १३ मनुष्य के शरीर में हृदय किस ओर होता है ?
- १४ मनुष्य को मलेरिया रोग किस कीट के द्वारा होता है ।
- १५ मनुष्य २४ घण्टे में कितनी बार साँस लेता है ?
- १६ आकाश से गिरने वाली बिजली कितने वोल्ट की होती है ?
- १७ पहाड़ों पर दाल देर से क्यों गलती है ?
- १८ ऊपर फेंकी गई वस्तु नीचे क्यों आ जाती है ?
- १९ बादलों की चमक गड़गड़ाहट से पहले क्यों दिखाई देती है ?
- २० बिजली के बल्ब में कौन सी गैस भरी जाती है ?

(१) विटामिन 'डी' (२) रतींधी (३) लेक्टोज (४) टिड्डी (५) गोबर (६) एक्लर (७) रिगलर
 (८) सिकोया जाइजोफिटया (९) लगभग ५,००,००० वर्ष पूर्व (१०) १०० १२० के बीच लगभग
 (११) रैफ्लेशिया (१२) पैस्टस (१३) बाँधी ओर (१४) मादा एनाफिलीज (१५) २१६,००० बार
 (१६) १००० वोल्ट (१७) हवा का दबाव कम होने के कारण (१८) पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति
 के कारण (१९) प्रकाश का वेग ध्वनि से अधिक होने के कारण (२०) नाइट्रोजन ।

★ नकल-पथ पर ★

अनिल वर्मा

(दशम ख)

सेण टर दीन दयाल पर्यो,
 सुनि हाल वेहाल भये सुविचारे ।
 ह्वे है नकल नहि केऊ विधि,
 करि डारो उपाय चाहे तुम सारे ॥

दुदिन आइ परे हमारे,
 दुर्भाग्य विधाता रुठि गयो है ।
 पिछले जनम कछु पाप किये,
 तेहि को कडुआ फल आज दियो है ॥

डी० आई० ओ० एस० को नहि सोच,
 न सोच कछु यह बोर्ड कियो है ।
 होत्यो थडे नही कछु खेद,
 पर हाथ कहाँ पर डारि दियो है ॥

गर्दन पर कन्ट्रोल भयो,
 मूँह पर तो मानो मुस्क दियो है ।
 आँखिन का कछु काम नहीं
 पुर्जी के यूज को चांस गयो है ॥

पायो भनक जब पुर्जी की,
 तब दीपक दौरि दबौचि लियो है ।
 दाढ़ी को कुछ ख्याल नहीं,
 मन ही मन ईश नाम लियो है ।

ठाढे हैं दूसरि कापी लिए,
 मुख म्लान भयो अफसोस के सारे ।
 एक सुनी नहि एकहु ने,
 परसे परसे परसे पग हारे ॥

छोड़ि दियो इस बार हमें,
 करि माफ सबे अपराध हमारे ।

सपनेहु माँ पइहौ न कभी,
 उर्जी-पुर्जी अब पास हमारे ॥

मेहनत व्यर्थ गई नहि सोच,
 न सोच हमें अब फेल भये को,
 सोच भयो मोहि कहि आजु
 कि पान पराग के छीन लिये को ॥



चि० विकास त्रिपाठी की विशेष शारीरिक प्रस्तुति



व्यायाम योग करते हुए छात्र-समूह



नाटक 'देश की आन पर' का दृश्य जिसमें सम्भाराजा दुर्गपति को गद्दारी की सजा देने का यत्न करते हुये.....
 सम्भाराजा (चि० शुभेन्द्र सिंह), नीलोपन्त (चि० राघवेन्द्र सिंह), हम्मीर राव (चि० यशवन्त)
 दुर्गपति (चि० आनन्द शुक्ल)



अभिनय गीत की एक भावमयी प्रस्तुति ।

नारी और समाज (एकाँकी)

सोमेश कुमार सिंह एकादश (ख)

पान्न परिचय :- कमला :- श्याम नारायण की पत्नी,
रामू की माँ, विमला की सास उम्र; ४० वर्ष

श्याम नारायण दुबे :-, कमला के पति विमला के
ससुर, रामू के पिता जी; उम्र ४४ वर्ष ।

विमला :-रामू की पत्नी; उम्र २० वर्ष ।

रामू :-विमला का पति; उम्र २४ वर्ष ।

(सायंकाल चार बजे का समय है । कमरे
के एक कोने में पड़ी कुर्सी पर कमला आराम
फरमा रही है तथा विमला, रसोईघर में
है और तेज भूख लगने के कारण खाना
खा रही है ।)

कमला :-बहू ! ओ बहू अरी क्या करने में लगी है, रे !

विमला :- (मुँह में खाना भरे-भरे) -म-म.....माँ जी
मैं इधर बावर्ची खाने में हूँ ।

कमला :-अरे ! मुँह में क्या ठूसने में लगी है, रे !
अच्छा अभी मैं आई.....अच्छा तो मालटाल
खाने में लगी है तू ।

विमला :- (लड़कपन से) :- माँ जी, मुझे बहुत तेज
भूख लगी थी और वैसे ही मेरी बचपन से
ही खाना अधिक खाने की आदत है ।

कमला :- (गुस्से में) :-अच्छा, अभी तक तो मेरा बेटा
रामू भी घर नहीं आया है और तुझे भूख लगी

हुई है, चाण्डाल कहीं की ।

विमला :- (भयभीत होकर) :-माँ जी मैं अपने लिये नहीं
बल्कि मैं गर्भवती होने से इस पलते बच्चे की
सोचती हूँ ।

कमला :- (ईर्ष्या करते हुये) :-हाय रे हाय ! बड़ी
आयी बच्चे वाली । अरे तेरे लिये ये बच्चा
क्या हमारी संस्कृति से भी अधिक प्यारा है ।
(तभी रामू दफ्तर से आता है)

रामू :-माँ दरवाजा खोलो । माँ ! मैं आ गया हूँ ।
दरवाजा खोलो माँ ।

कमला :-आ गये मेरे लाल ! देख ले अपनी बहू की
करतूत ।

रामू :-क्या हुआ, माँ ?

कमला :-अरे इससे ही क्यों नहीं पूँछ लेते हो ?

रामू :-अच्छा, माँ मैं इससे ही पूँछ लेता हूँ । विमला
क्या बात है ? (अकड़कर पूँछता है)

विमला :-मुझे तेज भूख लगी थी । मैंने थोड़ा खाना
खा लिया, इस बच्चे के वास्ते । इसीलिये माँ-
जी बिगड़ रही हैं ।

कमला :-हाय रे लल्ला ! देख लिया अपनी इस बहू-
रानी को । अभी तक तो हमारी संस्कृति में
जब तक पति नहीं खाना खाता, पत्नी को
कुछ भी खाने का अधिकार नहीं है, और देख
लिया लाड़ली को, हमारी संस्कृति के विरुद्ध
गंगा बहा रही है ।

रामू :- (गुस्से में) विमला भाड़ में जाये तेरा बच्चा और तू । तुम्हें अगर हमारी संस्कृति का पालन नहीं करना है, तो निकल जा इस घर से, चल निकल जा (यह कहते हुये विमला को निकालने हेतु धक्का मारा)

कमला :-हाँ निकाल दे । ऐसी चाण्डाल को तो घर से निकाल देना ही ठीक है ।

विमला :-आ...आ...न...न नहीं मुझे मत निकालो, आप हमारे ऊपर नहीं पर इस बच्चे पर तो तरस खाइये जो आपका खुद का है, (इस पर रामू मारने लगता है) आ...आई-आई ! मुझे मत मारोँ मर्ी, मर्ी मुझे म-मत मारोँ, मर्ी मत मारोँ मर्ी ।

श्याम नारायण दुबे :-अरे बेटा रामू ! ओ रामू अरे दरवाजा खोलो भाई !

रामू :- अभी आया पिता जी ।

कमला :- (फटकारते हुये) :- कुलक्षणी ! एक तो मायके से फकीरी आई । ऊपर से अब इस तरह खा-खाकर हमारे घर को भी नरक बनाना चाहती है । अरे ! उनके सामने रोने-धोने का ढोंग जरा भी किया, तो खैरियत न होगी । चुपचाप लेट जा ।

श्याम नारायण :-बहू को क्या हो गया है, क्यों चिल्ला रही थी ?

कमला :-अरे बेचारी के पेट में थोड़ा दर्द होने लगा था ।

विमला :- (खूब सिसकते-सिसकते) उ ऊँ हू उ उ हूँ ... (धीरे-धीरे अन्दर ही अन्दर रोती सी है ।)

श्याम :-बेटी ! सही-सही बताओ आखिर बात क्या है ? डरो नहीं बेटी । (कमला से आगे कहता है) :-अरे तू यहाँ खड़ी होकर बहू को आँखि

क्यों दिखाने में लगी है ! रामू ! तुम जाओ और लखन डाक्टर को बुला लाओ ।

श्याम :-अरे अब तो बता दे बेटी क्या परेशानी है ?

विमला :- (रोते हुये) पिताजी-पिताजी ऊँ ऊँ ऊँ... हमें आप मायके भेज दीजिये पिताजी, इन लोगों ने मुझे बहुत पीटा है ।

श्याम :-अरे ! ऐसी क्या बात है बेटी ?

विमला :- (कराहते हुये) आ-आ-आई !... ..

श्याम :-अरे तुम्हारे मुँह से तो खून आ रहा है । (रामू डाक्टर को बुला लाता है ।)

डाक्टर :-श्याम नारायण, जी अरे ! क्या बात है भाई ?

श्याम :-अरे डाक्टर साहब, देखिये ! इस फूल जैसी बहू को इन दोनों ने मार-मारकर कैसा हाल बना दिया है । मैं इन्हें नहीं छोड़ूँगा । मैं इन्हें जेल भेजकर रहूँगा, डाक्टर साहब रिपोर्ट दर्ज कराऊँगा कि मेरी पत्नी और मेरे इकलौते बेटे, दोनों ने इसे मिल कर पीटा, तथा किसी को बताने पर जान से मारने धमकी दी । यदि मैं नहीं आता तो शायद ये दोनों आज इसे जान से ही मार डालते, डाक्टर साहब ।

रामू :-पिताजी आप क्या करने को कह रहे हैं । पिताजी ! ऐसा न करिये वरना हमारी सरकारी नौकरी ही चली जायेगी पिताजी !

श्याम :-अरे ! जाने दे बेटा, जाने दे क्या फर्क पड़ता है ?

कमला :-अरे ! जी आप ऐसा न करो मैं मुहल्ले में मुँह दिखाने लायक नहीं रह जाऊँगी, जी ।

श्याम :-तुम लोग मुँह दिखाने काबिल हो ही कहाँ ?

अरे लाओ तो कलम, कागज, तुम दोनों इसी लायक हो ।

जल्दी ।

विमला :-पिताजी ! ऐसा न करिये आपको मेरी कसम है ।

रामू :-साँरी विमला ।

श्याम:-अरे अंग्रेजी में नहीं हिन्दी में ।

श्याम :-अरे बेटी ! तुमने ऐसा क्यों किया जो तुम्हारे लिये ही विष बो रहे थे, तुम उन्हीं की तरफ-दारी कर रही हो बेटी ?

रामू :-विमला ! हमें माफ कर दो ।

श्याम :-चल री बुढ़िया ! तू भी माफी माँग कि आगे से ऐसा नहीं करेगी ।

रामू :-पिताजी ! ऐसा न करिये, मेरी नौकरी का सवाल है ।

कमला :-बहू हमसे गलती हो गयी, हमें माफ कर दो बेटी अब हम कभी ऐसा नहीं करेगे, अब हमारी आँखे खुल गई हैं ।

श्याम:-अच्छा, तो चलो बहू से माँफी माँगो, चलो



विश्व की स्थिति

दुनिया के देशों के राजनीतिज्ञ राष्ट्रीयता को समाप्त करने का आत्म-घातकी प्रयत्न नहीं कर सकते और इसलिये आज तो वे विश्व की एकता की आकांक्षा को केवल अपने-अपने राष्ट्रों के स्वार्थों की पूर्ति तथा दूसरे के स्वार्थों के विनाश के लिये कैसे उपयोग किया जाये, इसी का विचार कर रहे हैं । फलतः संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्था भी दो शिविरो में बँट गई है । एक दूसरे से संघर्ष की तैयारी हो रही है । उसके लिये ही 'प्रजातन्त्र' और 'साम्यवाद' के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जा रहा है । यदि हम चाहते हैं कि विश्व संहार और विनाश से बचे तो हमें इस स्थिति को बदलना होगा ।

रहस्यमय त्रिभुज

बीरेन्द्र नाथ एकादश 'क'

सन् १९२१ की बात है। उत्तरी अमेरिका में पूर्वी उपकूल के तजदीक डायमंड सोल्स का "कैरल-ए-डियरिंग" नाम का एक समुद्री जहाज फँस गया था। वहाँ एक भी मनुष्य नहीं था। लेकिन स्पेव पर भोजन पक रहा था। जीवित प्राणी के रूप में जहाज में सिर्फ दो बिल्लियाँ पायी गयी थीं। मृत शरीर एक भी प्राप्त न हो सका। परन्तु जहाज पूर्ण रूप से सुरक्षित था।

"कैरल-ए-डियरिंग" समुद्री जहाज "बारमुडा ट्रैंगल" के चपेट में आया था।

'बारमुडा-ट्रैंगल !' एक अस्वाभाविक नाम ! भयानक रहस्यावृत्त एक समुद्री इलाका है। "बारमुडा ट्रैंगल" ! संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी दिशा में अटलांटिक महासागर के मध्य इस इलाके में अभूतपूर्व एवं रहस्यमय अनेक घटनायें घट चुकी हैं या अभी भी घट रही हैं। बुद्धि के बल पर जिसकी कोई व्याख्या नहीं की जा सकती है। उन रहस्यों का शायद कभी समाधान न हो।

उत्तर में बारामुडा के दक्षिण में "पुयेरटोरिको" तथा वहाँ से पश्चिम में फ्लोरिडा से गुजरकर "गल्फ आफ मेक्सिको" के कोई एक बिन्दु एवं वहाँ से पुनः बारमुडा, इन तीनों बिन्दुओं को कल्पित रेखा द्वारा मिलाने से जो त्रिकोणात्मक संरचना मिलती है, उसे ही "बारमुडा ट्रैंगल" कहा जाता है। अमेरिका आविष्-

कार के पश्चात् इस क्षेत्र में हजारों लोग गायब हुए। सैकड़ों हवाई जहाज तथा समुद्री जहाज अदृश्य हो गये, जिसका आज तक कोई पता-ठिकाना नहीं लगा।

"बारमुडा-ट्रैंगल ! यह नाम पहली बार १९४० ई० को लोगों के सामने आया। 'ऐवमिनेवल-स्नोमैन', फ्लाईंग सैसर टुडलाइट जोन, आइल्स ऑफ दि डेविल्स आदि इसके बहुत से नाम हैं।

अनेक बड़े-बड़े वैज्ञानिकों तथा मनीषियों के इस सम्बन्ध में अलग-अलग मत हैं। किसी के अनुसार गहन समुद्र के नीचे आग्नेय चट्टानें हैं। किसी के अनुसार वहाँ अज्ञात मध्याकर्षण शक्ति है तो कुछ लोगों के अनुसार अन्यग्रहों के जीवों ने वहाँ शक्तिशाली विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र की सृष्टि की है। जिसके प्रभाव से हवाई जहाज, समुद्री जहाज तथा मनुष्य अदृश्य हो रहे हैं।

आज से ५०५ वर्ष पूर्व अर्थात् १४८२ ई० में क्रिस्टोफर कोलम्बस भारतवर्ष की खोज के अभिप्राय से जब खाना हुए थे तब वे तथा उनके सहयोगियों ने समुद्र में तरह-तरह के भौतिक कण्ड देखे थे। एक जगह उन्होंने एक विशाल अग्नि-पिंड का उल्लेख किया है। देश-विदेश के विख्यात वैज्ञानिक तथा मनीषी वर्तमान समय में इस त्रिभुज के रहस्यों-द्घाटन में लगे हुये हैं।

यह स्वाभाविक है कि शिक्षा का माध्यम स्वभाषा ही हो सकती है। भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं, वह स्वयं भी एक अभिव्यक्ति है। भाषा के एक-एक शब्द, वाक्य-रचना, मुहावरों आदि के पीछे समाज के जीवन की अनुभूतियाँ, राष्ट्र की घटनाओं का इतिहास छिपा हुआ है। फिर स्वभाषा व्यक्ति को अलग-अलग प्रकोष्ठों में नहीं बाँटती।

मेरा एन० सी० सी० कैंप (सीनियर डिवाजन)

गिरीश कुमार गुप्त एकदश (क)

देश-प्रेम को जीवन के श्रेष्ठतम उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। देश की अखण्डता कायम रखने के लिये इसे देश के हर सच्चे नागरिक के मन में होना अनिवार्य है। देश प्रेम का यह कार्य सुरक्षा-पंक्ति में सम्मिलित होकर भी किया जा सकता है। इसी उद्देश्य को हमारे अन्तःकरण में विद्यमान रखने के लिये हमारे विद्यालय में एन० सी० सी० की व्यवस्था की गयी है।

सीनियर एन० सी० सी० को देश की दूसरी सुरक्षा-पंक्ति के रूप में माना जाता है। एन० सी० सी० के जवानों को युद्ध सम्बन्धी शिक्षण प्रदान करने के लिये सरकार की ओर से पन्द्रह दिन के एक कैंप की व्यवस्था की गयी है। इसी व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक वर्ष हमारे विद्यालय से पन्द्रह छात्रों का एक दल विभिन्न स्थानों पर जाता है। अतः इस वर्ष भी पन्द्रह छात्र, जिनमें दस छात्र छात्रावास के थे, दिनांक १८ सितम्बर से ३ अक्टूबर तक के इस कैंप में सम्मिलित होने के लिये गये।

दिनांक १८ को हम लोग अधिकांश दूरी टैक्सी द्वारा एवं कुछ दूरी पैदल चलकर दोपहर एक बजे के लगभग अपने निश्चित स्थान, सिविल ऐरोडम, (चक्रेरी) पहुँच गये। हम लोग एन० सी० सी० के निश्चित वेश (खाकी शर्ट, खाकी पैन्ट, चमड़े के बूट, टोपी) में सामान के साथ पैदल चलते वक्त हम लोगों के मन में एक सच्चे सैनिक जैसा आभास हो रहा था।

वहाँ के नियमानुसार हर स्थान से पहुँचने वाले दल के सामान की सर्वप्रथम तलाशी ली जाती थी।

किन्तु जब हम लोगों को उन्होंने वेश में देखा तो कुछ प्रभावित हुये और हमारी वाणी से उन्होंने हमारे अन्तःकरण की परीक्षा कर ली इसीलिये सर्वप्रथम उनके मुख से निकालने वाला वाक्य था कि ये किसी बहुत अच्छे विद्यालय के छात्र प्रतीत होते हैं। जब उन्होंने विद्यालय का नाम सुना तो वे इतना प्रभावित हुये कि उनमें से किसी की भी तलाशी लेने का साहस नहीं हुआ और हम लोग एक निश्चित टेन्ट में भेज दिये गये। यहाँ से हम लोगों के सैनिक जीवन की शुरुआत हुई।

वहाँ पहले ही दिन वर्षा द्वारा पूरी तरह से नहला दिये गये। चारों तरफ पानी ही पानी भरा पड़ा था। यदि हम लोगों ने मिलकर दिन भर पानी दूर न बहाया होता तो पानी हमारे टेन्ट के अन्दर आने में भी संकोच न करता जहाँ भूमि में हमारे विस्तर बिछे थे। परन्तु यत्न और युक्ति से सभी कार्य संभव है। पहले दिन मुझे और दो और छात्रों को सुरक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत चुना गया और रात्रि में हम लोग एक अन्य तम्बू में सोये। सुबह लगभग ४ बजे हम लोगों की निन्द्रा टूटी तो विस्तर के चारों तरफ जल ही जल था परन्तु संयोग वश हमारे विस्तरों से दूर था। फिर किसी तरह सुबह तक हमने जल से बचाव किया। हमने सर्द लगे के कारण विस्तरों को साल की तरह ओढ़ लिया। विस्तर में केवल दरी और चद्दर थी।

दूसरे दिन शाम को हम लोगों की दिन चर्या स्पष्ट की गयी। प्रतिदिन शौच-मंजन एवं स्नान के बाद सुबह छः बजे पी० टी० के लिये एकत्रित होते थे। जिसमें लगभग तीन किलोमीटर की दौड़ और सामान्य व्यायाम सम्मिलित थे। इसके बाद लगभग

साढ़े सात से पीने आठ तक हम लोगों को जलपान मिलता था। जलपान में चाय के साथ ब्रेड और छोला या मक्खन मिलता था। बीच में एक-दोबार पूड़ियाँ भी मिलीं। फिर हम लोग आठ बजे परेड के लिये एकत्रित होते थे और फिर दोपहर एक बजे छूटते थे। इसमें चलना दायि-बायि मुड़ना आदि सिखाया जाता था। उनका यह सिद्धान्त था कि मशीन जितना गर्म होती है उतना ही अच्छा कार्य करती है अतः वे परेड के बीच में तीन-चार बार हाथों को ऊपर कराकर और बन्दूक पकड़ा कर काफी दूर के लिये दौड़ा देते थे। शुरू के चार-पाँच दिन हम लोगों को बेहद थकावट का अनुभव होता था। परन्तु उसके बाद वे लगभग दो घण्टे परेड के बाद त्रिभिन्न प्रकार की बन्दूकों का ज्ञान देते थे। इसके बाद डेढ़ बजे भोजन होता था। भोजन में तन्दूरी रोटी, सब्जी, दाल और चावल मिलता था। भोजन के वक्त भोजन जहाँ बँटता था, वहाँ राशन की दुकान जैसा दृश्य उपस्थित होता था। उसके बाद साढ़े तीन बजे तक विश्राम का समय था और चार बजे फिर एकत्रित होते थे। इस वेला से सामान्य ज्ञान सम्बन्धी चर्चा होती थी। यह वेला ६ बजे समाप्त होती थी। ६ बजे जलपान होता था। इसमें चाय के साथ दो बिस्कुट या कोई फल मिलता था। इसके बाद लगभग साढ़े ६ बजे फिर एकत्रित होते थे। इसमें अगले दिन के लिये आवश्यक सूचना दी जाती थी। और जवानों की संख्या ली जाती थी। इसके बाद विश्राम के सिवाय कोई काम न था। सिर्फ साढ़े आठ बजे रात्रि को भोजन के लिये जाना पड़ता था।

इस प्रकार की दिनचर्या के अन्तर्गत हम लोग तेरह दिन रहे। दिनांक २ अक्टूबर की सुबह दस बजे हम लोग जैसे गये थे वैसे ही वापस आ गये।

जब वहाँ से प्राप्त लाभों की मिनती करते है

तो पाते है कि कैम्प जीवन को वास्तव में काफी लाभ हुआ। सबसे प्रमुख लाभ यह हुआ कि कभी आवश्यकता पड़ने पर हम प्रणामपत्र दिखाकर सेना में भर्ती होने योग्य अपने को कह सकते हैं। अगला लाभ यह हुआ कि वहाँ हमने रायफल और एल० एम० जी० (लाइट मशीन गन) को खोलना बन्द करना और चलाना सीखा। हमने वहीं जाना कि एल० एम० जी० पाँच बड़े भागों में खुलती है जिनके नाम है १. ब्रिजब्लाक पिस्टन ग्रुप २. बैरल ग्रुप ३. बट् ग्रुप ४. बाड़ी ग्रुप ५. बाई पार्ट ग्रुप। वहाँ पर एक दिन हमें रायफल चलाने को मिली। हमें वहाँ उस दिन १० कारतूस चलाने को मिले। हमारे विद्यालय के प्रत्येक छात्र ने परिश्रम के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी खूब नाम कमाया। वहाँ का प्रत्येक आफीसर दूर से ही हमको पहचान लेता था कि यह दीनदयाल विद्यालय का छात्र है। हम लोगों का प्रभाव इसी से पता लगता है कि अन्तिम दिन दरियाँ शाम को जमा हो गयी और लेटने के लिये कुछ न था तो हम दो लोग वहाँ के सबसे गुस्सैल हवलदार "रामानन्द सिंह" के पास गये तो उसने एक तम्बू का कवर दे दिया और कहा था कि तुम लोग अच्छे छात्र हो इसलिये मैं अवैध रूप से यह तम्बू का खोल दे रहा हूँ अन्य किसी को मैं नहीं दे सकता था। अन्तिम दिन चलते वक्त उन लोगों ने हम सबको एक-एक ब्रेड का पैकेट तथा एक-एक बिस्कुट का पैकेट जलपान में दिया था। इस प्रकार हमने एक आदर्श दिखाया कि 'जहाँ भी रहो विश्वास पात्र बनकर रहो।'

आज भी हम लोगों को वहाँ के जीवन की याद आती है और सोचते है कि हमने एक बार इतनी मेहनत की है लेकिन हमें यह कई क्षणों पर आशीर्वाद सिद्ध होगा।



मेरा N. C. C. कैम्प (जूनियर डिवीजन)

अक्षय सायु
नवम ख

जब मैंने N.C.C. कैम्प जाने का निश्चय किया तो सबने डराया कि वहाँ न जाओ बहुत काम कराया जाता है। परन्तु मेरे ऊपर इसका कोई प्रभाव न पड़ा मैं अपने पिता जी से कैम्प जाने की अनुमति लेकर जाने के लिये तैयार हो गया। कैम्प 27.10.88 से 5.11.88 तक था।

27.10.88 (गुरुवार)

आज हमने मध्याह्नकाश तक पढ़ाई की तथा उसके बाद तैयारी करने चले गये।

हमें तीन बजे आने का आदेश था अतः हम तैयार होकर समय पर पहुँच गये। परन्तु वाहन की व्यवस्था न होने के कारण हमें इंतजार करना पड़ा। लगभग सायं 7.30 पर बस आयी और हम लगभग 8.30 रात्रि पर पहुँच गये। उस समय भोजन चल रहा था। हमारे उत्तरते ही हमसे प्रश्न किया कि किसी के पास चाकू, छुरी तो नहीं हैं। यह सुन कर हम सभी हक्के-बक्के रह गये। उसके बाद हम लोगों ने भोजन किया और 10.00 बजे तक सो गये।

28.10.88 (शुक्रवार)

लगभग रात्रि 10 बजे हमारी नींद शोर होने से खुली नित्य कर्म से निवृत्त होकर सुबह होने का इंतजार करने लग। सुबह होने पर टेन्ट की व्यवस्था व जलपान करके परिचय के लिये गये। वापस आकर बताये गये ढंग से टेन्ट की व्यवस्था की तथा विश्राम करने लगे। कुछ समय बाद कुछ को वॉली-वॉल का मैदान बनाने के लिये तथा शेष को परेड स्थल की व्यवस्था करने के लिये बुला

लिया गया। वापस आकर भोजन किया। उसके कुछ देर बाद कुछ को अतिरिक्त लगे टेन्ट उखाड़ने के लिये बुला लिया गया। उसके बाद वॉली-वॉल मैच हुआ आज के दिन हमारा मुकाबला G.I.C. हमीरपुर से था। हनमें से कोई भी अच्छा खेल नहीं पाता था। अतः हमें जीतने की बिल्कुल भी आशा न थी। परन्तु हम 15-2 15-2 से जीत गये। इसका हम सभी को आश्चर्य था। उसके बाद हमने जलपान किया। जलपान के बाद का समय खाली था अतः हम घूमने लगे। उसी समय हमारे साथी कुलदीप ने टी. वी. धारावाहिक के नायक पुंगेरी लाल का अभिनय किया हल्के से परीक्षण के बाद उसे 'स्टिक-अर्दली' के लिये चुन लिया गया। इसके बाद रोल-कॉल अर्थात् हमारी उपस्थिति हुई, जिसमें हमें कल के कार्यक्रम बताये गये। तत्पश्चात्-भोजन करके हम सो गये।

29.10.88 (शनिवार)

आज से हमारी व्यवस्थित दिनचर्या प्रारम्भ हुई सुबह ही हमें लगभग दो किलो मीटर दौड़ाया गया तथा वापस लाकर पी टी करायी गयी। तत्पश्चात् जलपान व टेन्ट-व्यवस्था करके हम परेड के लिये गये। वहाँ मेरा व विद्यालय के दो अन्य छात्रों का 'क्वार्टर-गार्ड' में चयन हो गया। चयनित छात्र अभ्यास के लिये तथा शेष परेड के लिये गये। वापस आने पर भोजन तथा विश्राम किया। उसके बाद मैच तथा जलपान का आनन्द लिया। कुछ देर बाद रोल-कॉल हुई। उसके बाद भोजन करके हम सो गये।

30.10.88 (रविवार)

आज का प्रारम्भ नित्य कर्म के बाद दौड़ व पीटी से हुआ। जलपान करने के बाद बाहर से आये विद्यालयों के छात्र चिड़िया घर देखने चले गये। अतः अभ्यास न हो सका। सबको वहीं बैठा कर थोड़ी देर 'मैच रीडिंग' हुई। उसके बाद भोजन व विश्राम के बाद कैडेटों का P. I. Staff से मैच हुआ, जिसमें हमारे विद्यालय का छात्र 'आशीष मिश्र' खेला। इसमें कैडेट हार गये। इसके बाद जलपान हुआ। आज रोल-कॉल जल्दी हो गयी। इसके बाद हमने भोजन किया तथा फिल्म "कर्मा" देखी। आज लगभग रात्रि 12.00 बजे शयन हुआ।

31.11.88 (सोमवार)

आज सुबह वॉली बॉल टीम ने R.I.C. मौदाहा के साथ मैच खेला तथा शेष दौड़ व पीटी के लिये गये। लौटकर जलपान किया व टैन्ट व्यवस्थित करके परेड करने गये। वापस आकर भोजन व विश्राम किया। शाम को मैच देखने के बाद जलपान किया। रोल कॉल आज भी जल्दी हुई थी। इसके बाद भोजन करके शहं-शाह फिल्म देखकर लगभग रात्रि 11:30 बजे सोये।

1.11.88 (मंगलवार)

आज सुबह ही 3 कि. मी. की क्रॉस कंट्री रेस हुई। इसमें हमारे विद्यालय का सातवाँ स्थान आया। इसके बाद हम जलपान करके परेड करने चले गये। वापस आकर भोजन व विश्राम करके वॉली-बॉल फाइनल मैच देखने के लिये गये जो D: A: U.-52 व R. I. C. मौदाहा के बीच था। इसमें कानपुर का D. A. U.-52 जीत गया। इसके बाद हमने जलपान किया और कुछ देर घूमने के बाद रोल-कॉल में गये। तत्पश्चात् भोजन करके सो गये।

2.11.88 (बुधवार)

आज शाम को हमारी ड्रिल प्रतियोगिता थी। अतः हमें ड्रिल करने की आज्ञा दी गयी। तत्पश्चात् जलपान करके परेड के लिये गये। वहाँ भी आज काफी

देर तक ड्रिल ही चलती रही। शाम को भोजन व विश्राम के बाद ड्रिल कम्पटीशन हुआ। जिसमें हमारा विद्यालय का तृतीय स्थान आया। रोल कॉल व भोजन के बाद थोड़ी देर तक बातें करने के बाद सो गये।

3. 11. 88 (गुरुवार)

आज का प्रारम्भ दौड़ व पीटी से हुआ। वापस आकर जलपान किया और परेड पर चले गये। आज ही कमांडर साहब आये। परन्तु जल्द ही वापस चले गये अतः हमारा परिचय उनसे न हो सका। जब हन परेड करके वापस आये, तो वह जा चुके थे। भोजन के बाद विश्राम का समय आज अधिक मिला क्योंकि आज शाम को कोई कम्पटीशन नहीं हुआ। जलपान व रोल-कॉल के पश्चात् सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये, जिनमें तैयारी न होने के कारण हमने भाग नहीं लिया। तत्पश्चात् विजेताओं को पुरस्कार बाँटे गये। हमारे विद्यालय के तीन छात्रों को भी पुरस्कार प्राप्त हुये। पूरे कार्यक्रम के बाद हम भोजन करके सो गये।

4.11.88 (शुक्रवार)

कैम्प समाप्ति की ओर था। अतः दौड़ पीटी व जलपान के बाद हममें से कुछ को काम के लिये बुला लिया गया, जिनमें मैं भी था। टैन्ट गाड़ी पर लदवाने के बाद मुझे व कुछ अन्य लोगो को गाड़ी के साथ सामान उतरवाने के लिये N. C. C. अफिस भेज दिया गया। वापस आने के कुछ ही देर बाद भोजन किया तथा फिर थोड़ा विश्राम। शाम को मैं पुनः गाड़ी के साथ भेज दिया गया। वापस आने पर शाम का जलपान हो चुका था अतः मैं उससे बंचित रह गया था। रोल-कॉल के बाद फिल्म 'गंगा तेरे देश में' देखी। उसके बाद भोजन किया और दूसरी फिल्म 'पाप को जलाकर राख कर दूँगा' देखकर लगभग 1: 30 बजे सोये।

5.11.88 (शनिवार)

रात में देर से सोने के कारण हम थोड़ी देर

से उठे। कुछ विद्यालय के छात्र जा चुके थे और कुछ जाने तैयारी में थे। हमने भी अपना सामान बाँध लिया और नाश्ते के पैकेट व प्रमाण पत्र लेने गये। कुछ ही देर बाद हमारे आचार्य श्री गया प्रसाद जी आ गये और हम लोग पास ही में उनके घर चले गये। हमारे वापस विद्यालय आने का कोई साधन न था अतः जलपान के बाद हमने पनकी मंदिर जाने का निश्चय किया। इसी समय कुछ साथी अपने अभि-

भावकों के साथ घर व शेष पनकी चले गये। वापस आने पर देखा कि श्री सतीश जी जीप लेकर आ चुके हैं। अतः हम सब उस पर सवार होकर वापस विद्यालय तथा वहाँ से घर आ गये।

इस प्रकार हमारा दस दिन का N. C. C. कैम्प सानन्द व निर्विघ्न समाप्त हो गया।



व्यक्ति और समाज

भारत ने अपने चिन्तन में इसीलिए यह निष्कर्ष निकाला कि व्यक्ति और समाज में विरोध मानना ही भूल है। विकृतियों की, अव्यवस्था की बात छोड़ दें, उन्हें दूर करने भी जरूरी होते हैं, किन्तु मूल सत्य यही है कि व्यक्ति और समाज अभिन्न और अविभाज्य हैं। सुसंस्कृत अवस्था यही है कि व्यक्ति अपनी चिन्ता करते हुए भी समाज की चिन्ता करेगा। दोनों में सामान्य स्थिति है, पूरकता है। समाज का बिगाड़-कर अपनी भलाई करने का विचार जो करेगा, वह गलत सोचेगा यह विकृत अवस्था है। इसमें उसका भी भला नहीं होने वाला, क्योंकि समाज जिस स्थिति में पहुँचे गा उसे व्यक्ति को ही भोगना पड़ेगा।

कैसे सबका मन जीते ?

अक्षेसु अष्टम क,

शिष्टाचार ही वह अनमोल मोती है जो हमें सबका प्रिय बना देती है। समाज के शिष्ट पुरुष जिस प्रकार के व्यवहार को अच्छा मानते हैं, वही व्यवहार उस समाज का शिष्टाचार कहलाता है। हमारे समाज का शिष्टाचार कल्पना पर आधारित न होकर धर्म व दर्शन पर संतुलित है। उसकी आधार भूमि दृढ है। हाँ, यह अवश्य है कि समय एवं परिस्थितियों ने उसे बहुत प्रभावित किया है, परन्तु अब भी उसका स्वरूप अपनी विशेषता लिये हुए मूलरूप में विद्यमान है। यह शिष्टाचार हमारे अभिवादन, आसन, वार्तालाप, अतिथिसत्कार, नित्यकर्म, आदि क्रिया-कलापों में परिलक्षित होता है।

अभिवादन—

जैसे ही हम दूसरे के सम्पर्क में आते हैं, हमारा परस्पर अभिवादन आवश्यक होता है। यहीं से शिष्टाचार का प्रारम्भ होता है। अभिवादन दो प्रकार का हो सकता है—प्रथम, छोटा (आयु में) अपनों से बड़ों को करता है और दूसरा, दो समान व्यक्ति एक-दूसरे को करते हैं।

अपने से बड़े के आगमन पर उसे देखते ही खड़े हो जाना चाहिये और स्वयं आगे बढ़कर उसे प्रणाम करना चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो, उसके उसके समीप आने की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। भारतीय संस्कृति में अभिवादन की सर्वश्रेष्ठ प्रकृति है—साष्टांग प्रणाम। दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुका देना, इस प्रणाम का सांकेतिक रूप है। बिना दोनों

हाथ जोड़े और मस्तक झुकाये प्रणाम नहीं होता। एक हाथ से, हाथ की एक अँगुली से या छड़ी अथवा टोपी से होने वाले प्रणाम भारतीय संस्कृति के अनुसार नहीं हैं।

मनुस्मृति में अभिवादन के महत्व को निम्न शब्दों में व्यक्त किया गया है—

‘अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥’

अर्थात्—

जो गुरुजनों को नित्य प्रणाम करता है तथा उनकी सेवा करता है, उसकी आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि होती है।

आसन—

आगत व्यक्ति को पहले बैठाना चाहिये जो अपने से बड़े हैं, उनके सम्मुख उच्चासन पर नहीं बैठना चाहिये। यदि गुरुजन खड़े तो स्वयं बैठ या लेटे रहना शिष्टाचार के विपरीत है। आसन देकर उसके बैठ जाने पर ही बैठना चाहिये। यदि आने वाला आयु में छोटा है तो स्वयं आसन ग्रहण करके उससे भी बैठने का अनुरोध करना चाहिये। गुरुजनों के सम्मुख तथा सभास्थलों में जहाँ तक सम्भव हो स्थिर बैठना चाहिये। बार-बार आसन नहीं बदलना चाहिये।

वार्तालाप—

शिष्टाचार का सबसे महत्वपूर्ण भाग है

बोलना। इससे व्यक्ति की योग्यता, स्वभाव-सबका आभास मिल जाता है। किसी के साथ बोलते समय स्वयं बोलते रहना उचित नहीं होता है। जहाँ तक सम्भव हो, दूसरे को बोलने का अवसर देना चाहिये। और स्वयं सुनना चाहिये, लेकिन पूर्णरूपेण चुप रहना गर्व और उपेक्षा का सूचक है। अतः जितना आवश्यक है, उतना बोलना चाहिये। बोलते समय ध्यान रखना चाहिये कि वह असत्य न हो, कटु न हो और उससे किसी का अहित न होता हो।

जो कुछ बोला जाय, स्पष्ट हो। न तो इतने धीरे कि सुनने में कठिनाई हो और न ही इतने उच्च

स्वर में हो कि चिल्लाने का बोल हो। शब्द इस प्रकार बोले जाये कि उनसे भाव ठीक-ठीक प्रकट हो सके। परस्पर बातचीत में हमसे बात करने वाला जिस प्रकार की भाषा में बोल रहा हो, यदि सम्भव हो तो उसी या उससे सरल भाषा में हमें बोलना चाहिये। जो व्यक्ति कुछ दिनों के पश्चात् मिला हो उससे कुशल प्रश्न पूछना चाहिये।

शिष्टाचार के इन आयासों को हम अपने जीवन में अपनाकर सभी का ध्यान अपनी ओर निश्चित ही आकृष्ट कर सकते हैं।



रिलीजन यानि मत, पंथ, मजहब है, 'धर्म' नहीं। धर्म तो एक व्यापक चाज है। यह जीवन के सभी पहलुओं से सम्बन्ध रखने वाली चीज है। उससे समाज की धारणा होती है। उससे सृष्टि की धारणा होती है। यह धारणा करने वाली जो चीज है, वह 'धर्म' है।

धर्म के मूलभूत तत्व सनातन और सर्वव्यापी हैं। हाँ, उनका व्यवहार देश, काल और परिस्थिति सापेक्ष होता है।

इन नियमों की सम्पूर्ण संहिता और उसके तात्विक आधार का नाम 'धर्म' है। ये नियम मनमाने नहीं हो सकते। उनसे उस सत्ता की धारणा होनी चाहिए जिसके लिए वे बने हैं तथा वे दूसरी सत्ता के अविरोधी तथा पोषक होने चाहिए।

卐 देश की युवा पीढ़ी के नाम 卐

सुमन दुबे, आचार्य

ओ मेरे यौवन ! अभाव का बोझा तू कब तक ढोयेगा ?
यहाँ पत्थरों का बहुमत है, कब तक तू आँसू बोयेगा ?
ऐसा करो उपाय कि चटाटनों की घेरेबन्दी टूटे ।
क्रूर पर्वतों की बाहों के घेरेसे, रस-धारा छूटे ।
उनकी करो न बात, मर गया है जिनकी आँखों का पानी ।
सुविधाओं के लिये दाँव पर जहाँ लगा दी गई जवानी ।
बचपन पकड़े अँगुली तेरी, सिर पर हाथ बुढ़ापे का है ।
देखें कितना जोश उमर में, इस्तहान यह 'आपे' का है ।
अब जवान हो गईं गलतियाँ, कबतक और सहोगे घातें ।
चंदन-वन में आग लगी है, अब तो करो होश की बातें ।
बरना गलत हवायें पूरी बस्ती को बरबाद करेंगी ।
तुम्हें घिताने सम्बोधन से कल की पीढ़ी याद करेगी ।
यही कहेगी—“पहले की पीढ़ी सचमुच लाचार बहुत थी ।
“अपनी मस्ती में खोई थी, कायर थी, मक्कार बहुत थी ।
“बरना पूरा चमन जल गया फिर भी उसको होश न आया ।
इतना ठंडा रक्त हो गया, सहा सभी कुछ, जोश न आया ।
तूही अगर न समझा खुद को, तो कल के सपने टूटेंगे ।
बेईमान इरादों वाले, खुलकर अपना घर लूटेंगे ।
तू संम्हले तो तय है अंधी संसद सावधान हो जाये ।
बादल तो बादल हैं, पाँवों पर नत आसमान हो जाये ।
तू संम्हले तो बड़ों-बड़ों का अहंकार हो पानी-पानी ।
वहाँ कभी अन्याय न पलता, जहाँ जागती रहे जवानी ।
युग का चारण देता है आवाज तुम्हें अटपटे वक्त में ।

ऐसा वक्त, कि संसद वाली राह हो गई है आबारा ।
 ऐसा वक्त, कि अंगारों को आँख दिखाता है अधियारा ।
 गुमसुम होकर सत्य खड़ा है चौराहे पर आँखें मीचे ।
 ऐसा वक्त, कि धूप छुपाई गई कत्ल गाहों के पीछे ।
 ऐसा वक्त, कि नाग-यज्ञ की करनी ही होगी तैयारी ।
 देश-द्रोहियों के लोहू से करनी ही होगी अग्यारी ।
 जनमत को छलकर सिंहासन हथियाये बेवजह न कोई ।
 देश-विभाजन वालों की हो, इस घरनी पर जगह न कोई ।
 अपने संविधान में हमको, नई शर्त जोड़नी पड़ेगी ।
 'जाफर' की औलादों को यह पुण्य-भूमि छोड़नी पड़ेगी ।
 बलिदानों के क्रम में सबसे पहला नाम तुम्हारा आया ।
 और राष्ट्र के हर संकट में पौरुष काम तुम्हारा आया ।
 हलचल हुई कभी सीमा पर नई उमर ने आहुति दी है ।
 अटका कहीं क्रान्ति का रथ तो युवा बाजुओं ने गति दी है ।
 लेकिन आज हुआ क्या तुमको ? इतने लापरवाह हो गये ?
 तुम बदले तो राजनीति के अगुआ भी गुमराह हो गये ।
 पूरी वस्ती मुलग रही है, तुम्हें नहीं फुरसत सोने से ।
 अंधी हुई निगाह तुम्हारी, जाने किस जादू-टोने से ।
 अँगड़ाई बदचलन तुम्हारे मन पर डोरे डाल रही है ।
 यह यौवन की चाल नहीं है, और किसी की चाल नयी है ।
 यह बदलाव तुम्हारा, युग के कवि से नहीं सहा जायेगा ।
 आज चीखने का मन होता, अब चुप नहीं रहा जायेगा ।
 नये-नये षडयंत्र तुम्हारे खातिर रोज गढ़े जाते हैं ।
 नये-नये अभियोग तुम्हारे सिर पर रोज मढ़े जाते हैं ।
 कथनी से गाँधीवादी, पर करनी से जो पूरे हिंसक ।
 यही चाहते हैं कि तुम्हारा गर्म रक्त हो जाय नपुंसक ।
 आज बता दो उन्हें कि यौवन इतना नहीं गया-बीता है ।
 औरों का मुँहताज नहीं है, अपनी सासों से जीता है ।
 जो न दे सके न्याय सभी को-ऐसा शासन नहीं चाहिये ।
 आदमखोर हो गया है जो, वह सिंहासन नहीं चाहिये ।
 हमको गलत समझने वाली गलत निगाहें नहीं रहेंगी ।
 औरों का अधिकार छीतने वाली बाहें नहीं रहेंगी ।

—•— आचार्य-शिष्य-सम्बन्ध का स्वरूप —•—

हरिनाम सिंह (आचार्य)

प्राचीन भारत में गुरु और शिष्य का आदर्शात्मक सम्बन्ध था। दोनों का सम्बन्ध पिता-पुत्र सा था। यह कहा गया था, कि शिष्य का यह कर्तव्य है कि वह अपने आचार्य को पितृतुल्य और मातृतुल्य माने तथा उसके प्रति द्रोह न करे। यदि शिष्य का यह कर्तव्य था कि वह आचार्य जी की सेवा करे तो आचार्य स्नेह पूर्वक शिष्य से पुत्रवत् प्रेम करे तथा उसकी जिज्ञासाओं का उचित समाधान करे। किसी भी आचार्य हेतु यह उचित नहीं था कि वह शिष्य को अपेक्षित ज्ञान से वंचित रखे।

विद्या प्राप्ति के लिये शिष्य का निष्ठावान तथा जिज्ञासु होना आवश्यक था। यदि विद्यार्थी में ज्ञान प्राप्त करने की प्यास होती थी तो उसे अपनी इस प्यास की तृप्ति हेतु आचार्य के पास जाना पड़ता था। वहाँ, आचार्य के आश्रम में, जो ब्रह्मचारी अपने आचार्य के अनुकरणीय चरित्र एवं पवित्र जीवन से अनुप्राणित होने का सुयोग प्राप्त करता, वहाँ अग्नि, वायु, आकाश, जल के प्रभाव से प्रभावित होते हुए वह कह उठता; 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः—मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ भूमि मेरी माता है।'

आचार्य शिष्य सम्बन्ध का यह आदर्श रूप कृया अब केवल पुस्तकों के पन्नों की शोभा बन गया है ? यदि ऐसा है तो हमें इस सम्बन्ध को पुनः स्थापित करना होगा। आचार्य और शिष्य में सम्बन्ध इतना घनिष्ठ हो जाए कि बालक और

माता की भाँति अन्तेवासी और आचार्य में अभेय प्रतीत होने लगे।

इतना ही नहीं, अपितु माता और पिता दोनों के अभिन्न एकत्व की प्रतिष्ठा आचार्य में हो जाए।

इस प्रकार से शिक्षा प्राप्त करते हुए जब शिक्षा-सत्त सम्पन्न हो, तब आचार्य और अन्तेवासी दोनों सगर्व कह सकें—

'सह नो अवतु, सह नो भुनक्तु, सह वीर्यं करवा वहै । तेज स्व नौ अधीतमस्तु मा विद्विषा-वहै ॥

अर्थात् हम दोनों एक दूसरे की रक्षा करें विद्या प्रसाद का परस्पर मिलकर उपयोग करें, अविद्या रूपी अन्धकार को दूर करने का प्रयत्न करें। हम दोनों के द्वारा अधिगत विद्या तेजस्विनी हो और हम दोनों परस्पर द्वेष न करें। इस श्रुति वाक्य में दिये पाँचों प्रयोजनों को जब आचार्य और शिष्य पारस्परिक व्यवहार में लाने में समर्थ होते हैं तब दोनों की साधना सफल होती है और फिर शिक्षासत्त के पूर्ण होने पर आचार्य की वाणी अपने प्राणप्रिय शिष्य हेतु निम्न-लिखित शब्दों के रूप में व्यक्त होगी—

'सत्यं वद् । धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः ।'



हमारे पूर्व छात्रों के कुछ पत्र

प्राचीन भारत की शिक्षा-प्रणाली गुरुकुल परम्परा के रूप में रही है। तब गुरु-शिष्य के सम्बन्ध का रूप आध्यात्मिक होता था। इसीलिए गुरु कुल में प्रवेश के समय से लेकर जीवन पर्यन्त शिष्य का सम्बन्ध गुरु एवं गुरुकुल से रहता था। शिष्य कहीं भी, स्थिति और रूप में रहे, इसकी प्रेरणा का केन्द्र गुरुकुल रहता था। आज गुरुकुल की परम्परा नहीं रही। विद्यालय शिक्षा के व्यवसाय-केन्द्र बन गये हैं। लेकिन कुछ विद्यालय आज भी ऐसे हैं जो आज के इस आपाधापी के युग में भी, आदर्श शिक्षा-केन्द्र के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान बनाये रखने का प्रयास कर रहे हैं। हमारे विद्यालय का भी यही प्रयास है कि हमारे यहाँ के विद्यार्थी कुछ ऐसे संस्कार लेकर विद्यालय से निकलें कि बाहर रह कर भी हमेशा विद्यालय से जुड़ाव अनुभव करें। उन्हें ऐसा लगे कि इस विद्यालय से मिले संस्कार जीवन के हर क्षेत्र में उन्हें सम्बल प्रदान करेंगे। विद्यालय के हर विद्यार्थी को पुत्रवत् स्नेह देने वाले प्रधानाचार्य ओम शंकर जी इस दिशा में सदैव ही सक्रिय रहे हैं। इसी लिए विद्यालय से अध्ययन पूरा कर के जाने वाले तमाम जागरूक विद्यार्थी उन्हें और विद्यालय को भूल नहीं पाते। ऐसे ही कुछ विद्यार्थियों के द्वारा लिखे गये भावपूर्ण पत्रों के अंश प्रस्तुत हैं—

सम्पादक

श्री राम

C/O श्री विजय गुप्ता

(दस) १०, सिविल लाइन्स, बरेली

८-६-१९८८

परम पूज्य श्री आचार्य जी-सादर चरण स्पर्श !

पूर्ण विश्वास है कि आप समस्त विद्यालय-परिवार सहित आनन्दमय होंगे। एक लम्बा समयान्तराल हो गया जबसे हमारा आपसे कोई सम्पर्क स्थापित न हो सका। आपसे व अपने गुरुजनों व छोटे भाइयों से मिलने को कभी-कभी मन आतुर हो उठता है। पता नहीं अब आपके स्मृति पटल पर मेरी छवि अंकित भी है या नहीं? परन्तु आपके द्वारा प्रदत्त शिक्षार्थ व आशीर्वाद हमें पग-पग पर सहायता प्रदान करते रहते हैं जिससे मेरा मस्तिष्क आप सभी को स्मरण करता रहता है व हृदय धन्यवाद देता रहता है। मैं पं० दीनदयाल विद्यालय में गुजरे समय को अपना सबसे बहुमूल्य समय मानता हूँ। इसी लिए उसकी व उसमें पल्लवित होने वाले पुष्पों व बागवतों के कुशल समाचार व उन्नति के विषय में जानने की बेहद जिज्ञासा रखता हूँ। हमारी आशा व विश्वास परसों का समाचार पत्र पढ़कर वास्त-

विकता में परिवर्तित हो गये, जब हमने अपने प्रिय भाई रंजन का नाम मेरिट लिस्ट में पढ़ा। पं० दीन-दयाल विद्यालय का नाम देखकर हृदय इतना आह्लादित हो गया व मस्तक गौरव से उठ गया—अवर्णनीय है। हमारे विद्यालय का नाम इसी प्रकार रौशन होता रहे। इसके गौरव की पताका हिमालय के शिखर पर लहराये। इसी प्रकार विद्यालय के छात्र विजय व सफलता अर्जित करते रहें। श्री हनुमान जी से यही कामना करता हूँ। हमारी हार्दिक बधाइयाँ कृपया प्रिय रंजन तक अवश्य पहुँचा दें।

अब आपका अधिक समय नष्ट न करते हुये एक बार पुनः पत्र लिखने का अनुरोध कर रहा हूँ।

पूज्य बैरिस्टर साहब का स्वास्थ्य उत्तम होगा। उनको व अपने समस्त गुरुजनों को सादर प्रणाम। प्रिय भाइयों को स्नेह।

शेष शुभ है।

सेवा में

श्री ओम शंकर जी त्रिपाठी

आपका

वारिज अग्रवाल

(भू० पू० छात्र)

११० रुइया छात्रावास
काशी हिन्दू विश्व विद्यालय
वाराणसी

दि० ३१-७ १९५८

भादरणीय आचार्य जी,

सादर चरण स्पर्श

आशा करता हूँ कि आप सब कुशल पूर्वक होंगे।

परिषदीय परीक्षाओं में इस वर्ष विद्यालय के छात्रों ने सफलता के जो नवीन मानदण्ड स्थापित किये हैं उसके लिए आप तथा अन्य सभी आचार्य गण बधाई के पात्र हैं। सम्भवतः यही परीक्षाफल प्रतियोगी परीक्षाओं में भी प्रतिबिम्बित हुआ होगा। कृपया सूचित कीजियेगा।

आज भी आपके द्वारा बतायी गयी बातें अनायास ही याद आ जाती हैं। उन दो वर्षों में आपने मेरे मन में जित नैतिक मूल्यों की स्थापना की हैं उनका गहरा प्रभाव आज भी मस्तिष्क पर छाया हुआ है। किताबी ज्ञान देने वाले अध्यापक तो अयन्त भी मिल जाया करते हैं; परन्तु आपने भले-बुरे को परखने की जो तार्किक तथा वैचारिक विधि सिखायी उसे बताने वाला और कोई न मिलेगा। विश्वास मानिए मेरे विचार अब भी वही हैं।

आपके ग्राम-सेवा कार्यक्रम में चिकित्सकों छात्रों के लिए स्थान हो तो अवश्य लिखियेगा।

शेष सब पूर्ववत्

आपका आज्ञाकारी

अंशुल

मैं यहाँ पर कुशलता पूर्वक रह रहा हूँ। आशा करता हूँ कि आपका स्वास्थ्य ठीक होगा और और आप कुशलता पूर्वक रह रहे होंगे। मेरा पिछला सत्र बीत गया अब नया सत्र २६-७-८८ से प्रारम्भ हुआ। पिछले Semester में मुझे ८०.५% अंक प्राप्त हुए कक्षा में दूसरा स्थान है।

विद्यालय की इस वर्ष की उपलब्धियाँ देखकर, मस्तक गर्व से ऊँचा हो गया, कि मैंने भी इसी संस्था से आदर्श संस्कार पाये हैं। अपने आचार्यों से प्रदत्त ज्ञान का मैं जीवन पर्यंत ऋणी रहूँगा। साथ ही साथ आपके उन प्रवचनों को कभी नहीं भुला सकूँगा जो अब व्यावसायिक शिक्षा के इस दौर में भी अपने व्यक्तित्व के विकास में बड़े ही महत्वपूर्ण सिद्ध हो रहे हैं। यहाँ के Professors के व्यवहार को देखकर बरबस ही याद आ जाते हैं आप तथा अन्य आचार्यों का पुत्रवत् स्नेह व प्यार। याद आती है जागरण की प्रातः कालीन वेला। एकत्रित बैठकर एक साथ भोजन मंत्र करके भोजन करना। अब ये सभी चीजें तो स्वप्न हो गयी हैं। पहले जो बड़ी सहजता से प्राप्य था, अब दुर्लभ हो गया है। परन्तु फिर भी अपने पुराने संस्कारों को ही एकमात्र सत्य मानकर अपने कर्तव्य-पथ पर आगे बढ़ता जा रहा हूँ। समयानुसार प्राप्त अनुभव उसकी सत्यता प्रमाणित करते ही रहते हैं। आपकी ही आज्ञानुसार अपने आत्म विश्वास के बल पर स्वयं निर्णय लेकर कार्य को प्रारम्भ करके अन्तिम क्षण तक उसे न छोड़ने का संकल्प लिया है। जागरण के समय में थोड़ी अस्थिरता है पर व्यायाम प्रति-दिन करता हूँ। कुछ एक छात्र भी प्रभावित होते हैं तो कुछ हँसी करने से भी नहीं चूकते। परन्तु वास्तविकता को वे भी समझते हैं।

आपका स्वास्थ्य कैसा है लिखिएगा। मुझे यह भी पता चला है कि आप इस समय काफी व्यस्त हो सकते हैं। अन्त में पत्र लिखना बन्द करता हूँ। थोड़ा सा समय निकाल कर मेरा मार्गदर्शन कीजिएगा। अन्त में पुनः सादर प्रणाम पत्र में लेखन सम्बन्धी त्रुटियों के लिए क्षमा कीजियेगा।

प्रेषक:- पवन पाण्डेय

आपका शिष्य

गोविन्द बल्लभ पंत विश्वविद्यालय, पटेल भवन

पवन

कमरा नं०-८२ पंतनगर

जि०-नैनीताल, पिन-२६३१४५

परम पूज्य श्री आचार्य जी,

सादर चरण स्पर्श,

पूर्ण विश्वास है कि आप मंगलमय व पूर्ण स्वस्थ होंगे। कल आपका एक पत्र, मेरे शुभकामना पत्र के उत्तर स्वरूप प्राप्त हुआ। एक तो पत्र आपका था, दूसरे उसमें अंकित कुछ वाक्यों में अपनत्व के कारण मेरे हृदय को अपरमित आनन्द की अनुभूति हुई। मैं तो आप जैसे महान् गुरुजनों के सम्मुख अपने आप को एक तिनका मात्र समझता हूँ। परन्तु आप जैसे महान् व्यक्तित्व ने अपनी महानता व उदारता का परिचय देते हुये मुझे पत्र लिखने का कष्ट किया, यह मेरे लिये अत्यन्त प्रसन्नता व हर्ष का विषय है। आपके पत्र ने मुझे अपने जीवन के चार वर्ष पूर्व वाले वातावरण में पुनः ला खड़ा कर दिया है। आज मेरे मस्तिष्क पटल पर पूर्व सुस्मृतियाँ पुनः अंकित हो गयी हैं। आप महानुभावों के सान्निध्य व निर्देशन ने मुझे जो नये जीवन की दिशा दी है, उसको शायद सिर्फ मैं ही समझता हूँ। अपने पूज्य आचार्य राजेश जी, ज्ञानेन्द्र जी, प्रकाश जी, दीपक जी, बिहारीलाल जी, रामतीर्थ जी, महेश जी, जे० पी० जी, श्री नारायण जी, राजकिरण जी इत्यादि सब ठीक होंगे। सबको मेरा सादर प्रणाम।

अब आपका अधिक समय न लूंगा। कृपया अपने विशाल मस्तिष्क पटल पर 'वारिज' एक नाम के लिए स्थान अवश्य बनाये रखें।

शेष अगले पत्र में। कृपया गलतियों को क्षमा करें।

प्रति

श्री ओमशंकर जी टिपाठी

सदैव आपका,
वारिज



कूटुम्ब 'हर आदमी से उसकी क्षमता के अनुसार कार्य और हर आदमी की आवश्यकता की पूर्ति' के आदर्श का प्रतिनिधित्व करता है। परम्परा के कारण सदस्यों के मन में यह भावना संस्कार के रूप में जम गई है। परिवार का 'कर्त्ता' सदस्यों के बोट पर बिभर नहीं करता। उसे यह सिखाने के लिए कि वह कैसे सर्व श्रेष्ठ ढंग से अपने उत्तरदायित्वों को निभा सकता है, कोई प्रशिक्षण वर्ग आयोजित नहीं किया जाता। वह अपने पूर्वजों के मार्ग का अनुसरण करते हुए अन्तःस्फूर्ति से इस दायित्व का निर्वाह करता है। किन्तु सहकारिता में हमें इस नाजुक समस्या का सामना करना पड़ता है कि उत्पादन का वितरण कैसे किया जाए। जब हर तरह की भूमि वाले लोग, बिना भूमि वाले लोग और विभिन्न प्रकार के हक वाले लोग एकत्र हों, तो वस्तुतः उत्पादन का न्याय ढंग से वितरण करना असम्भव है। उसे समान रूप से वितरित किया जा सकता है, पर वह न्याय नहीं होगा।

हमारे विद्यालय का वार्षिकोत्सव

स्वदेश कुमार

राघवेंद्र सिंह एकादश (क)

प्रत्येक विद्यालय का वार्षिकोत्सव उस विद्यालय के लिए वर्षगांठ के रूप में होता है जो वहाँ के छात्रों एवं आचार्यों के मन में अभिनव उत्साह संचरित करता है। प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी हमारा उत्साह दिनांक २५ सितम्बर को शतगुणित ही उठा, जब युग प्रवर्तक पं० दीनदयाल उपाध्याय जी का जन्मोत्सव विद्यालय के वार्षिकोत्सव के रूप में सम्पन्न हुआ।

हमारे विद्यालय का वार्षिकोत्सव एक भव्य कार्यक्रम के रूप में तीन दिवसों तक चला है। इस बार के आयोजन इस प्रकार रहे—मेधावी छात्रों को

प्रथम दिवस—शारीरिक प्रदर्शन एवं पुरस्कार—वितरण

द्वितीय दिवस—रंगारंग कार्यक्रम

तृतीय दिवस—अन्तर्विद्यालयीय वाद विवाद प्रतियोगिता तथा कविगोष्ठी शारीरिक प्रदर्शन एवं पुरस्कार—वितरण—

वार्षिकोत्सव का प्रथम दिन 'पं० दीन दयाल उपाध्याय' का ७३ वाँ जन्मोत्सव एवं विद्यालय का १८ वाँ वार्षिकोत्सव था। कार्यक्रम सरस्वती वन्दना से प्रारम्भ हुआ। इस बार के मुख्य अतिथि थे सुविख्यात विचारक, उद्भट विद्वान, सुविख्यात राजनेता एवं प्रभावी वक्ता प्राध्यापक डा० मुरली मनोहर जोशी। सम्प्रति आप प्रयाग विश्व विद्यालय में भौतिकी के यशस्वी प्राध्यापक हैं। तत्पश्चात् मुख्य अतिथि का स्वागत, तथा औपचारिक परिचय माननीय बैरिस्टर साहब द्वारा दिया गया। उन्होंने बताया कि "माननीय डा० मुरली मनोहर जोशी 'प्रयाग विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञान के प्रवक्ता एवं राजनीति के कुशल ज्ञाता है।"

इसके पश्चात् छात्रों ने विविध शारीरिक प्रदर्शन अपनी अपनी व्यवस्था के अनुसार प्रस्तुत किये जिसमें एन. सी. सी. की परेड, लवकुश दल द्वारा मंदयोग, ध्रुवदल द्वारा द्रुतयोग, एकलव्य दल द्वारा आसन एवं अभिमन्यु दल द्वारा मंदयोग तथा सूर्यनमस्कार विशेष प्रभावी रहे।

शारीरिक प्रदर्शन के पश्चात् प्रधानाचार्य जी ने विद्यालय की वार्षिक आख्या प्रस्तुत की जिसमें विद्यालय प्रारम्भ करने के मूल में निहित भावना तथा उसका अद्यावधि सतत विकास। यह भावना "भारतवर्ष

को भारतीयता से युक्त लाखों-करोड़ों दीनदयाल प्रदान करने की है।" आख्या बड़ी प्रेरक रही।

इसके पश्चात् मुख्य अतिथि महोदय ने विद्यालय के मेधावी छात्रों को पुरस्कृत किया जिनमें हाई-स्कूल एवं इन्टर में प्रदेश में स्थान प्राप्त वे तेरह छात्र भी थे, जिन्होंने अपनी श्रम-साधना से सभी को सुख प्रदान किया है।

इसके उपरांत मुख्य अतिथि जी ने एक अत्यन्त ज्ञान-वर्धक, प्रेरक तथा रोचक भाषण दिया। उस सम्बोधन से ऐसा अनुभाव हुआ कि हम सभी एक गौरव पूर्ण अतीत से अनुप्राणित भारत माता के श्रेष्ठ पुत्र हैं। इसके साथ ही श्री जोशी जी ने १९ वीं शताब्दी का एक चित्र भी हम छात्रों को भविष्य का नागरिक मान कर अपनी अदभुत वक्तृत्व कुशलता से प्रस्तुत किया। मुख्य अतिथि के सम्बोधन के उपरांत माननीय बैरिस्टर साहब का सम्बोधन तथा श्री वीरेन्द्र जी का धन्यवाद ज्ञापन कार्यक्रम भी अत्यन्त रोचक लगा। प्रायः धन्यवाद ज्ञापन नीरस और उबाऊ होते हैं; किन्तु योग्य महानुभाव सभी विषयों को रोचक व प्रेरक बना देते हैं।

राष्ट्रगान के साथ प्रथम दिन का कार्यक्रम समाप्त हुआ और अगले दिन रंगारंग कार्यक्रम की उमंग में हम सभी अपनी-अपनी थकान झूलकर घरों को प्रस्थान कर गये।

द्वितीय दिवस (रंगमंच प्रस्तुति)

विद्यालय की परम्परानुसार सरस्वती वन्दना के पश्चात् मंचासीन अतिथि द्वारा युगद्रष्टा पं० दीनदयाल जी उपाध्याय के चित्र पर माल्यार्पण किया गया। आज के कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री उदयभानु तिवारी थे जिन्हें गणित विषय में 'शांति स्वरूप भटनागर' पुरस्कार से १९८७ में सम्मानित किया गया था। वाय आई० आई० टी०, कानपुर में गणित विभाग के प्राध्यापक हैं।

प्रधानाचार्य जी के औपचारिक परिचय के बाद माननीय मुख्य अतिथि जी ने छात्रों को सम्बोधित करते हुए कहा कि "वर्तमान समय में विद्यालयों को चाहिए कि वे शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं वरन् समाज को सफल नागरिक प्रदान करने की दिशा में भी प्रयास करें। मुझे इस बात की खुशी है कि यह विद्यालय अपने इस उद्देश्य में सफल है।"

इस सम्बोधन के पश्चात् हिन्दी के आचार्य श्री सुमन जी दुबे द्वारा रचित "न्यारा अपना देश है।" अभिनय गीत का आयोजन हुआ। इस गीत के बाद मराठी नाटक का हिन्दी रूपान्तरण 'देश की आन पर' भाव नाटिका का मंचन हुआ। इस भाव नाटिका में सम्पूर्ण दर्शक समूह भावों में बह गया। इसके पश्चात् हास्य नाटिका 'मृत्यु-लोक में यमराज' का मंचन हुआ। इसके पश्चात् राष्ट्रगान के पश्चात् कार्यक्रम समाप्त हुआ।

तृतीय दिवस (कवि गोष्ठी)

आज वार्षिकोत्सव का अंतिम दिन था। आज के दिन दो कार्यक्रम सम्पन्न हुए १. वाद-विवाद प्रतियोगिता २. कवि गोष्ठी।

प्रातः १० बजे से वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन हुआ जिसे दो वर्गों में बाँटा गया प्रथम वर्ग (पष्ठ से अष्टम तक के छात्र) का विषय था "भारत को परामणु बस बनाना चाहिए।"

दूसरा वर्ग, (नवम से द्वादश कक्षा तक के छात्रों का था जिसका विषय था "भारत की राष्ट्रीयता हिन्दुत्व में ही निहित है" इस वाद-विवाद प्रतियोगिता में विजेता विद्यालय 'शीर्लिंग हाउस विद्यालय एवं 'कुमारी उद्यान बालिका' विद्यालय रहा।

सायं ८ बजे से देश के कई प्रतिष्ठित कवियों द्वारा काव्य पाठ किया गया। इस कार्यक्रम ने सभी दर्शकों के चित्त पर एक उत्कृष्ट छाप छोड़ी।

तीनों दिन के कार्यक्रम इतने प्रभावी और प्रेरक रहे कि आज भी मन यही कहता है कि शीघ्र ही फिर से पण्डित जी का जन्मोत्सव आए और हम सभी पुनः कर्म-यज्ञ, ज्ञान-प्राप्ति तथा मानसिक शान्ति का लाभ प्राप्त करें।



'अध्यापन' शिक्षा का सर्वसामान्य साधन है। साधारणतया अक्षर ज्ञान तथा पाठ्य पुस्तकों अथवा तत्सम्बन्धी पठ्य-क्रम का अध्यापन ही इस क्षेत्र के अन्तर्गत समझा जाता है। किन्तु वास्तव में यह क्षेत्र भी बहुत विस्तीर्ण है। मानव के ज्ञान का बहुत ही थोड़ा अंश भाषा के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है और उनमें से भी अंश एक मात्र लिपि-बद्ध है। अतः लिपि-ज्ञान अथवा भाषा-ज्ञान से शिक्षा का पूर्ण उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। अध्यापन के अन्तर्गत वे सब क्रियाएँ आती हैं जिनके द्वारा कोई भी व्यक्ति या व्यक्ति-समूह अपने पास के ज्ञान को दूसरे को देने का चेतनापूर्वक प्रयास करता है। यह प्रयास पाठशालाओं और विश्वविद्यालयों में ही नहीं, घर-घर में तथा खेत-खलिहान, कारखानों, दूकानों, कला-भवनों खेल के मैदानों और मल्लशालाओं में भी चलता रहता है।

पं० दीनदयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय, नवाबगंज, कानपुर

वार्षिक आख्या (१९८८-८९)

आज से २० वर्ष ७ महीने और १४ दिन पूर्व हमारे स्वतन्त्र भारत में एक मर्मन्तिक वेदना उत्पन्न करने वाली दुर्घटना हुई—पं० दीनदयाल उपाध्याय की रेलगाड़ी में हत्या। वैसे तो मानव का स्वभाव ही विस्मरण करना है और विशेषकर हम भारतीय संस्कृति के उपासकों का, किन्तु कतिपय संवेदनाएँ हृदय-विदारक घटना को भुलाना चाहकर भी भूल नहीं पाई। उन्होंने उस हत्या में अपने निजत्व और स्वत्व को ही भस्मीभूत होते देखा। साथ ही उनको ऐसा भी आभास मिलने लगा कि इस प्रकार की पैशाचिक प्रवृत्तियाँ बड़ी द्रुतगति से भारतीय मनीषा को मरोड़ डालने के लिए उतावली हो रही हैं। बस यही चुभन इस विद्यालय की स्थापना के लिए प्रेरणा बन गई। परिणाम स्वरूप २३ फरवरी १९७० को परमपूज्य श्री गुरु जी ने इसके भवन का शिलान्यास किया। १८ जुलाई १९७० (गुरु पूर्णिमा) के दिन इसकी विधिवत् कक्षाएँ आरम्भ हो गईं।

पं० दीनदयाल जी भारत, भारती और भारतीयता के मूर्तिमान स्वरूप थे। अतः उनकी स्मृति में प्रारम्भ हुआ यह विद्यालय इन्हीं आदर्शों को पल्लवित करने के उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया। दृढ़ इच्छाशक्ति-सम्पन्न आदर्श-प्राण पीढ़ी का सृजन ही इसका अभिप्रेत है और इसीलिए हम कह सकते हैं कि यह विद्यालय अंग्रेजी दासता के काल से चली आ रही पब्लिक स्कूलों की चकाचौंध भरी भ्रामक परम्परा में एक स्पष्ट, गतिमान, तेजोद्दीप्त और प्रभावी उपक्रम है।

भवन :

जिस भूमि पर विद्यालय स्थित है वह श्री ब्रह्मावर्त सनातन धर्म महामण्डल के द्वारा प्रदत्त है। महामण्डल की इस उदारता का विद्यालय चिर ऋणी रहेगा। भवननिर्माण का पूर्ण श्रेय स्वर्गीया श्रीमती सुशीला नरेन्द्रजीत सिंह को है, जिनको हम लोग स्नेहवश "बूजी" कहा करते थे। उन्होंने इसके निर्माण का पूरा व्यय बहन करके तथा अपनी देख-रेख में ही इसको बनवाकर अपने अप्रतिम विद्या-प्रेम के साथ-साथ अगाध देश-प्रेम का भी परिचय दिया है। वस्तुतः उनके प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति उनसे सुपरिचित किसी भी व्यक्ति के लिए शब्दातीत है। आवश्यकतानुसार विद्यालय-भवन का और भी विकास हो रहा है। इण्टर कक्षाओं हेतु एक स्वतन्त्र भवन बनकर पूर्णरूपेण तैयार हो चुका है। इसकी लागत रु० १०, १६, ४००/- आई है। इस निर्माण-व्यय में कर्मचारियों के नौ आवास भी शामिल हैं। इस कार्य हेतु लगभग १, १३, ०००/- रुपये दान से भी प्राप्त हुए हैं। भविष्य में आचार्यों हेतु आवास एवं स्वतन्त्र छात्रावास बन सके, इस दिशा में भी हम प्रयासरत हैं। विद्यालय भवन के पीछे की ओर विशाल कक्ष के बराबर, पूर्व की ओर हमने कम से कम ६० छात्रों के लिये भवन का निर्माण प्रारम्भ कर दिया है जो ईश्वर ने चाहा तो अगले सत्र के प्रारम्भ तक तैयार हो जायेगा।

शिक्षण :

यह विद्यालय षष्ठ कक्षा के मात्र २४ छात्रों से प्रारम्भ होकर निरन्तर प्रगति करता हुआ आज पूर्ण विकसित वैज्ञानिक वर्ग में मान्यता प्राप्त विशेष कोटि का इण्टरमीडिएट विद्यालय बन चुका है। प्रत्येक कक्षा में दो अनुभाग हैं और विद्यालय के १४ अनुभागों में इस समय छात्रों की संख्या ६३८ है। इस विद्यालय को शासन के द्वारा विशिष्ट विद्यालय के रूप में कृष्ण विशेषताओं के आधार पर ही मान्यता दी गयी थी, जिनमें छात्रों पर व्यक्तिगत ध्यान प्रमुख है।

शिक्षा विभाग के द्वारा निर्धारित विषयों के अतिरिक्त छात्रों को उनकी अभिरुचि के अनुरूप दरी बुनना, चित्रकला, छायांकन, वक्तृत्व-कला, अभिनय आदि का भी प्रशिक्षण दिया जाता है। पाठ्य-विषयों का स्तर ऊँचा रखने हेतु अष्टम कक्षा तक केन्द्रीय विद्यालय के समान राष्ट्रीय शिक्षा एवं अनुसंधान परिषद (एन० सी० ई० आर० टी०) द्वारा तैयार किये गये पाठ्य-क्रम की उपयोगी पुस्तकों को विद्यालय के पाठ्य-क्रम में रखा गया है।

वेश :

अनुशासन की दृष्टि से निर्धारित वेश में ही विद्यालय आना पड़ता है जिसमें ऋतु के साथ-साथ परिवर्तन भी होता रहता है।

आचार्य :

विद्यालय में पढ़ाने वाले आचार्यों की संख्या प्रधानाचार्य सहित इस समय २३ है। लगभग सभी प्रशिक्षित परास्नातक हैं। अवकाश प्राप्त आचार्य श्री जागेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव भी अपने ज्ञान और अनुभव से हमारे छात्रों को लाभान्वित कर रहे हैं। हम उनके हृदय से आभारी हैं।

परीक्षा-परिणाम :

प्रारम्भ से अब तक परीक्षा परिणाम उत्तम ही रहता आया है। विगत सत्र का परीक्षा परिणाम इस प्रकार रहा-

	हाई स्कूल	इण्टरमीडिएट
कुल छात्र	१०२	८२
प्रथम श्रेणी	६८	७३
द्वितीय श्रेणी	०४	०९
ससम्मान	६०	२८
प्रदेश में स्थान	दूसरा, तीसरा, छठवाँ, दसवाँ, बारहवाँ, चौदहवाँ तथा पन्द्रहवाँ	द्वितीय, चौथा, सातवाँ, दशम, एकादश तथा त्रयोदश
विशेष योग्यतायें	१११	१५६

प्रतियोगी कक्षाएँ	चयनित छात्र
जे० ई० ई० (आई० आई० टी०)	०४
रुडकी	०५
सी० ई० ई० (एम० एन० आर० ई०)	१०
अन्य	०८
मेडिकल	०३

बोर्ड परीक्षा के अतिरिक्त शिक्षा विभाग द्वारा संचालित एकीकृत छात्रवृत्ति परीक्षा में जिसमें स्वीकक्षा के छात्र बैठते हैं, इस बार हमारे ७३ छात्र सम्मिलित हुए जिनमें से ७१ सफल रहे। एक छात्र सुधीर पोरवाल "क" सूची में भी चुना गया। विद्या-भारती द्वारा संचालित अखिल भारतीय संस्कृति ज्ञान परीक्षा में भी हमारे छात्र प्रतिवर्ष बैठते हैं तथा शत प्रतिशत सफल होते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मावर्त सनातन धर्म महा-मण्डल द्वारा संचालित मानस प्रवेश, मानस-किशोर व मानस-प्रवीण व अन्य स्थानों पर होने वाली वाद-विवाद, भाषण प्रतियोगिता आदि में हमारे छात्र उल्लेख्य स्थान पाकर पुरस्कृत होते रहते हैं।

राष्ट्रीय प्रतिभा खोज :

एन० सी० ई० आर० टी० के द्वारा आयोजित यह परीक्षा तीन चरणों में होती है। प्रथम राज्य स्तर पर, द्वितीय राष्ट्रीय स्तर पर तथा तृतीय साक्षात्कार। साक्षात्कार के बाद चयनित विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति उस समय तक मिलती रहती है जब तक वह अपने ही देश में अध्ययन करता रहता है। इस वर्ष अपने विद्यालय के ५२ छात्र राज्य स्तरीय परीक्षा में सम्मिलित हुए जिसमें से राष्ट्रीय स्तर की परीक्षा के लिए २३ छात्र चुने गये। साक्षात्कार हेतु चयनित ०३ में से ०२ छात्रों को सफलता प्राप्त हुई है।

छात्रवृत्तियां :

पिछले परीक्षा परिणामों के आधार पर हमारे ८६ छात्र प्रदेशीय छात्रवृत्ति ४०/- प्रतिमास तथा ३५ छात्र राष्ट्रीय छात्रवृत्ति ६०/- प्रतिमास पाने के अधिकारी घोषित हुए हैं। इस समय विभिन्न छात्रवृत्तियां पाने वाले छात्रों की कुल संख्या ३७० है।

सरकारी छात्रवृत्तियों के अतिरिक्त कुछ दानशील महानुभावों तथा न्यासों से भी हमारे १६ छात्रों को जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है, सहायता मिलती है। इनमें जय नारायण चेरिटेबिल ट्रस्ट, श्री हरि भागव ट्रस्ट, श्री सोमनाथ चोपड़ा, लायन्स क्लब ईस्ट कानपुर तथा श्री मोतहू सिंह भगवान महावीर निर्माण स्मृति ट्रस्ट आदि प्रमुख हैं।

शारीरिक शिक्षा :

मानसिक विकास के साथ-साथ हमारे विद्यालय में शारीरिक कार्यक्रमों की भी विशेष योजना है। सामूहिकता की भावना हेतु योगासन व समता पर हम विशेष ध्यान देते हैं। इसके अतिरिक्त जनपद स्तरीय खो-खो प्रतियोगिता में विगत १३ वर्षों से हम विजेता का पद प्राप्त करते आ रहे हैं। गत पाँच वर्षों से हमारे छात्रों ने कबड्डी में प्रवेश किया है और लगातार जनपदीय विजेता रहे हैं। इन सभी खिलाड़ियों का शैक्षिक स्तर भी उच्च कोटि का है। इसके अतिरिक्त मण्डलीय प्रतियोगिताओं में विद्यालय के ०६ खिलाड़ी चुने गये। अष्टम तक की २४ स्काउट टोलियों ने अपनी पटकूटी बनाकर विद्यालय में ही क्रीड़ा स्थल पर त्रिदिवसीय स्काउट शिविर कक्षानुसार लगाया। जिसमें विभिन्न प्रतियोगितायें हुईं।

एन० सी० सी० :

सुरक्षा सेवाओं में भी हमारे विद्यालय का योगदान रहे, इस दृष्टि से गत सत्र से हमने अपने विद्यालय में राष्ट्रीय कैंडेट कोर की सीनियर इकाई प्रारम्भ कर दी है। एक वर्ष के प्रशिक्षण में छात्रों ने प्रशंसनीय योग्यता प्राप्त की है। इस समय हमारे एन० सी० सी० के कुछ छात्र शिविर में भाग ले रहे हैं। एन० सी० सी० की जूनियर इकाई भी इस सत्र से प्रारम्भ हो गयी है।

पुस्तकालय :

विद्यालय का पुस्तकालय विकासशील है। इसमें लगभग ५०,०००/- रुपये मूल्य की लगभग ७५०० पुस्तकें हैं। विद्यालय के वाचनालय में ५ दैनिक, ५ साप्ताहिक, ३ पाक्षिक, ११ मासिक-पत्र पत्रिकायें आती हैं। मुख्य समाचार, सुभाषित, सामान्य ज्ञान की बातें श्याम-पट्ट पर लिख दी जाती हैं।

पाठ्यक्रमेत्तर गतिविधियाँ :

पाठ्यक्रमेत्तर क्रिया-कलाप भी शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग है। अतः बच्चों में उत्तरदायित्व की भावना के विकास के लिए स्वशासित बाल-भारती (कक्षा ८ तक के लिए) किशोर भारती (कक्षा नवम से द्वादश तक) तथा तरुण-भारती, (पूर्व छात्रों के लिए) गठित की गई है। विद्यालय की संस्थायें पूर्ण रूप से क्रियाशील हैं। तरुण-भारती की सक्रियता भी बढ़ रही है। उनके तत्वाधान में समय-समय पर होने वाले विभिन्न कार्यक्रम जैसे वाद-विवाद, महापुरुषों की जयन्तियाँ, साहित्यिक प्रतिभा के विकास में सहायक होते हैं।

प्रायः प्रतिवर्ष ही हमारे बच्चे दीपावली के अवकाश में देश-दर्शन हेतु बाहर जाते हैं। जिससे न केवल उन्हें देश के भाग विशेष की कुछ व्यवहारिक जानकारी मिलती है वरन् उनके सामान्य ज्ञान में भी वृद्धि होती है। गत वर्ष हमारे छात्र देश-दर्शन हेतु असम तथा गुजरात (दो दलों में) गये थे।

छात्रावास :

विद्यालय के ऊपरी खण्ड में छात्रावास है। इसकी व्यवस्था एक मुख्य अधीक्षक एवं एक सहायक अधीक्षक करते हैं। इस समय छात्रावासीय छात्रों की कुल संख्या १४२ है। छात्रावास अधीक्षक छात्रावास में ही रहकर अनुशासन, स्वास्थ्य, भोजन, पढ़ाई आदि की देख-रेख करते हैं। आवासीय बच्चों में बिहार तथा उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों के छात्र हैं।

नैतिक शिक्षा :

पाठ्य विषयों के अतिरिक्त समय-सारणी में प्रतिदिन नैतिक शिक्षा तथा सदाचार का प्रावधान है। वन्दना के पश्चात अध्ययन प्रारम्भ होने से पूर्व निर्धारित आचार्य नियमित रूप से शिष्टाचार अथवा किसी नैतिक गुण के सम्बन्ध में चर्चा करते हैं अथवा किसी महापुरुष के जीवन पर प्रकाश डालते हैं। साथ ही रामायण, गीता आदि ग्रन्थों से चुने हुए अंश भी कण्ठस्थ कराये जाते हैं। प्रत्येक मंगलवार को रामचरितमानस पर साप्ताहिक प्रवचन होता है।

इस प्रकार हम छात्रों को आदर्श नागरिक बनाने एवं समाजोन्मुखी जीवन यापन करने की प्रेरणा देने का प्रयास कर रहे हैं। ईश्वर से अनुग्रह एवं आपसे सद्भाव बनाये रखने की कामना है।

गत कार्तिक पूर्णिमा की मर्यान्तक घटना का स्मरण आना स्वाभाविक है। अमर हुतात्मा वीर बालक ब्रजेन्द्र कुमार, जिसे राष्ट्रपति द्वारा मरणोपरान्त वीरता पदक दिया गया था, अपने यशः शरीर से अब भी हमारे बीच है उसका और विवरण देना मेरी सामर्थ्य के बाहर है। इसी प्रकार तरुण भारती के अध्यक्ष राजेश पाण्डेय (जो एक वर्ष पूर्व अपने इस कार्यक्रम के संयोजक तथा संचालक भी थे) मात्र २६ वर्ष की आयु में एक बस-दुर्घटना में हम सबको सदा सर्वदा के लिए छोड़ गये। मैं उन असमय मुरझाये सुमनों पर विस्मृति की चादर कैसे डालूँ, समझ से परे है। ईश्वरेच्छा।

❀ जननी जन्मभूमिः च ❀

गिरीश कुमार गुप्त, एकादश (क)

“जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी”

जननी जन्मभूमिः च स्वर्गात् अपि श्रेष्ठतरः अस्ति । अस्माकं जननी जन्मभूमिः च भारत-भूमिः अस्ति ।

अस्माकं प्रियो देशः हिन्दुस्तानः अनुपमेयोऽस्ति । अस्मिन् देशे सर्वत्र नैसर्गिकी सुषमा राजते ।

अस्य उत्तरदिशायाम् स्थितः गिरिः पर्वतराजः अस्ति । अस्य अभिधानं हिमालयः अस्ति । हिमालयस्य हिमश्रवणानि, विविध पुष्प-फलयुक्तानि वनानि च शोभन्ते । अयं पर्वतराजः भारतवर्षस्य उत्तर सीम्नि स्थितः तत् प्रहरी इव सततं शत्रुभ्यः रक्षति ।

भारतस्य दक्षिण भागे विशालः हिन्द महासागरः स्थितोऽस्ति । इदम् महासागरं दक्षिण भागे अस्माकं जननीजन्मभूमिभारतैः चरणानि प्रक्षालयति । इदम् दक्षिण-दिशायाम् भारतस्य प्रहरी अस्ति । इदम् उत्तुंग-तरंगानि धारयति ।

अस्माकं देशे समये-समये च अस्य उत्थानाय, एकता-स्थापनाय, घृणायाः विनाशाय च अनेकाः महा-पुरुषाः जन्मं अप्राप्यत् । भगवान् रामः, श्रीकृष्णः, चन्द्र-गुप्तः महाराणा प्रतापः गुरुगोविन्द सिंहाश्च इत्यादीनि सर्वे अस्माकं गौरवसर्वर्धयन् ।

अत्र धेनुः माता समः पूज्यते । शास्त्रेषु अपि अस्य गौरवस्य वर्णनम् अस्ति । यथोक्तम्,

धेनुः पालनीयैव, स्वकीयैर्वहुभिः गुणैः ।
काव्ये शास्त्रे च सर्वत्र, वर्णितं धेनुगौरवम् ॥
लोके सुखेन जीवन्ति, सदा गोपालकाः जनाः ।
गोपालनेन देशस्य, धनं धान्यं प्रवर्धते ॥

अस्य निवासिनः सम्पूर्णविश्वस्य जनानां भ्रातृ

समः स्वीकारयन्ति कथयन्ति च—

अयं निजः परोवेति, गणना लघुचेतसाम् ।
उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥
सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, माकश्चित् दुःख भाग् भवेत् ॥

अस्माकं देशे विविधाः भाषाः सम्प्रदायः च सन्ति । अस्माकं भारतभूमिः च एका । तस्मात् ये वयं भारते वसामः । ते सर्वे एन भारतस्य सुताः सन्ति ।

ईश्वराः अपि अत्र जन्म प्राप्तुम् इच्छां कुर्वन्ति । यत् शास्त्राणि अपि कथयन्ति । ते अपि भारतस्य गौरवस्य गीतानि गायन्ति ।

गायन्ति देवाः किलगीतकानि,
धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे ।
स्वर्गा पदगास्पद मार्गभूते,
भवन्ति भूयः पुरुषः सुरत्वात् ॥

कला कृतिषु अपि अस्माकं देशः विश्वस्य श्रेष्ठ-तरः देशः अस्ति ।

अस्य महिमा अथ वर्णितम्—
उत्तरं यत् समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणं ।
वर्षं तद् भारतं नाम, भारती यत्र सन्ततिः ॥
धन्ये हि भारतं वर्षं, धन्या भारत संस्कृतिः ।

भारतीयाः जनाः धन्याः, धन्यास्माकं परम्परा ॥
अन्ते अहं ईश्वरेण कामना करोमि यत्—
वयं मातृभूमेः सुताः पुण्यभूमेः,
प्रतिष्ठाऽत्र देशे विदेशे च यस्याः ।
ऋषीणां मुनीनां कवीनां च माता,
भवेत् रक्षकः सृष्टि कर्ता विधाता ॥

॥ वन्देमातरम् ॥

अस्माकं विद्यालयस्य वार्षिकोत्सवः

(पं० दीन दयाल उपाध्याय जयन्ती)

विश्वम्भर दयाल अष्टम (क)

अस्माकं प्रेरणा-स्रोतुः पं० दीन दयाल उपाध्यायस्य द्विसप्तः जन्म-दिवसे २५ तम सितम्बरे, १९८८, अस्माकं विद्यालयस्य अष्टादशः वार्षिकोत्सवः प्रारम्भम भवत् । अयम् उत्सवः त्रिषु दिवसेषु सम्पन्नः भवति ।

वार्षिकोत्सवस्य पूर्वं सकलाः विद्यार्थिनः, अध्यपकाः अन्ये चापि कर्मचारिणः कार्येषु व्यस्ताः आसन् । केचित् छात्राः कक्षां अभूषयन् । मार्जकाः सर्वेषाम् स्थानानाम् मार्जनं कुर्वन् ।

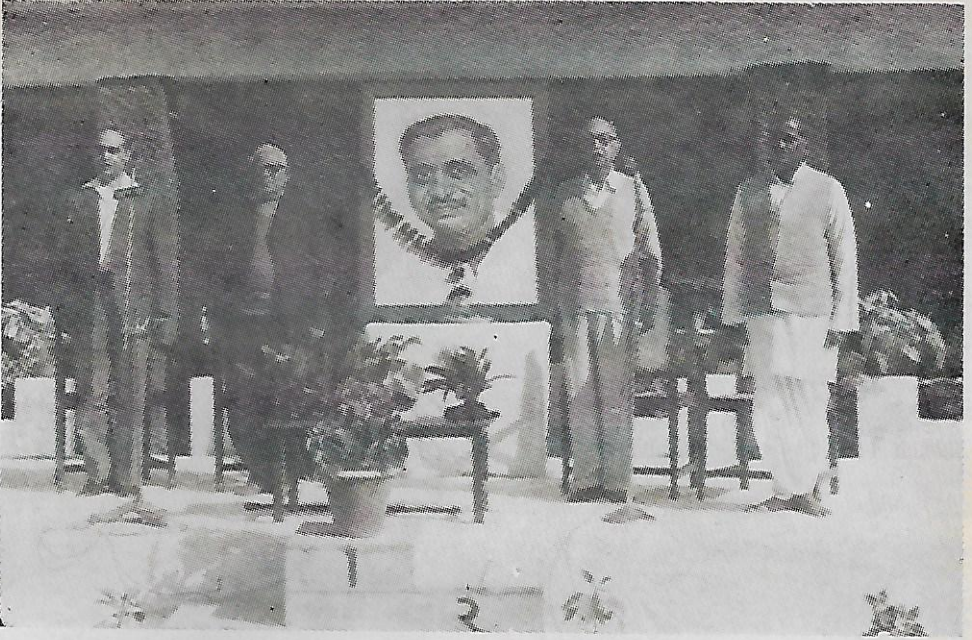
प्रथमः दिवसः

प्रथमे दिवसे अर्थात् २५ तम सितम्बरे अहं सायं कालम् विद्यालये उपस्थितः अभवम् । आकर्षकं द्वारं मंचं च मम चेतः मुग्धः अभवत् । समारोहस्य प्रबन्ध-मतीव शोभानमासीत् । शीघ्रमेव, उत्सवस्य कालः सञ्जातः । अस्य मुख्य-अतिथिः डा० मुरली मनोहर जोशी महोदयाः आसीत् । कार्यक्रमः षट्-वादने प्रारम्भम् अभवत् ।

यदा मुख्य-अतिथिः अन्येचापि गणमान्य-जनाः मंचे आगच्छन् तदा वयम् सकलाः उपविष्टाः छात्राः उत्तिष्ठन् अकुर्वन् । सर्वतः प्रथमं विद्यालयस्य परम्परायाः अनुसारं छात्राः विद्यायाः देवी सरस्वत्याः स्तुतिम् कुर्वन् । तत्पश्चात् मुख्य-अतिथिः अन्ये च गणमान्य अतिथयः पं० दीन दयाल उपाध्यायस्य चित्रे माल्यार्पणं अकुर्वन् । मुख्य-अतिथेः स्वागतार्थं छात्राः पथसंचलनमपि अकुर्वन् ।

“मानसिक-विकासेन सह शारीरिक-विकासमपि आवश्यकम् ।” इति चरितार्थं कियन्तः पृथक्-पृथक् चतुर्णाम् दलानान् छात्राः योगासनानि अकुर्वन् । तदनन्तरम् अस्माकं विद्यालयस्य प्रधानचार्यः श्री ओमशंकर त्रिपाठी महोदयाः वार्षिकं विवरणं प्रस्तुतमकरोत् । सः अकथयत् यत् श्रीमती सुशीला नरेन्द्रजीत सिंह महोदया याम् जनाः स्नेहेन “बूजी” इति कथयन्ति स्म; सा विद्यालयस्य निर्माणमकारयत् । सा च कथयति स्म यत् एकः दीनदयालः अस्मात् संसारात् अगच्छत् तर्हि किमभवत् ? अनेन विद्यालयेन अनेके दीनदयालाः निर्मिताः भविष्यन्ति । तदुपरान्तं केचन छात्राः गीतमगायन् । विद्यालय-प्रबन्धसमितेः अध्यक्षः वै० नरेन्द्रजीत सिंह महोदयेन मुख्य-अतिथेः परिचयम् अकारयत् तदा मुख्य-अतिथिः अस्मान् सम्बोधयत् । मुख्य-अतिथिः अकथयत्—“पुरा पश्चिमी-देशानाम् जनानाम् इयं धारणा आसीत् यत् मनुष्यः मस्तिष्केन पदार्थेन च मिलित्वा निर्मितमस्ति । तत्राधुना मनुष्यः यन्त्राणाम् सेवकः अस्ति । तत्र एकः मनुष्यः अन्यम् मनुष्यम् न बुध्यते । पं० दीन दयाल उपाध्यायः तेषां विगारैः सहमतः नासीत् । सः तु एकात्म-मानवस्य कल्पनामकरोत् ।” अस्य सन्दर्भे मुख्य-अतिथिः अनेकान् उदाहरणान् प्रस्तुतम् अकुर्वन् । तस्य व्याख्यानमतीव ओजस्वी आसीत् । सर्वे छात्राः तस्य व्याख्यानं ध्यानेन आकर्णयन् ।

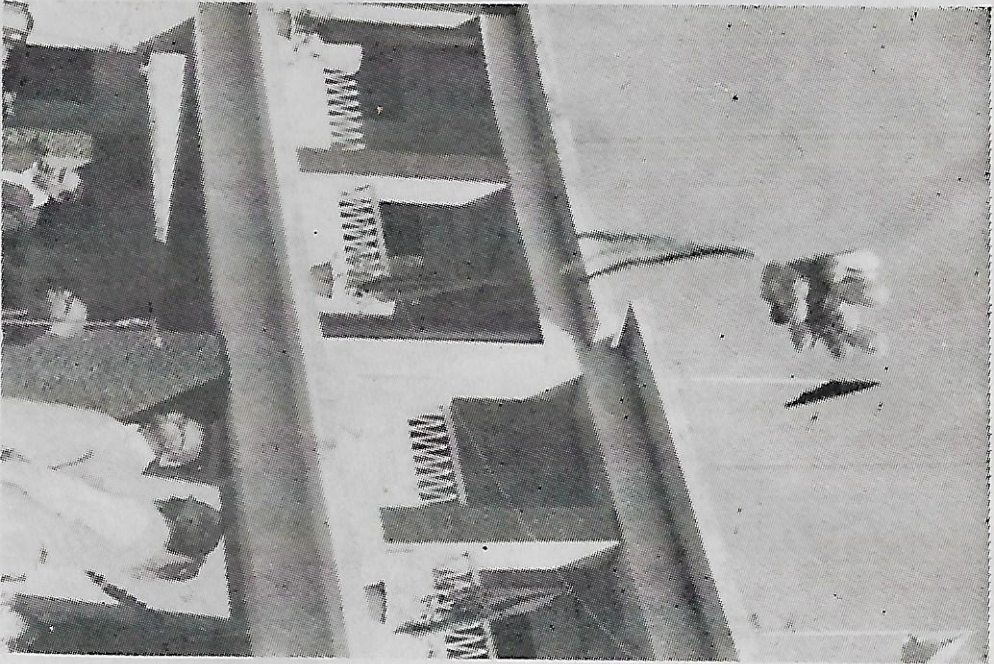
तत्पश्चात् विद्यालयस्य प्रबन्ध-समितेः सचिवः श्री वीरेन्द्र जीत सिंह महोदयः मुख्य-अतिथिं प्रति आभार-प्रदर्शनम् अकरोत् । अन्ते राष्ट्रगानस्योपशान्ते अद्य-दिवसस्य कार्यक्रमाः समाप्ताः अभवन् ।



वार्षिक खेलकूद, प्रारम्भ होने से पूर्व प्रार्थना



वार्षिक खेलकूद समारोह में मंचासीन महानुभाव, बायें से- श्री वीरेन्द्रजीत सिंह जी, श्री शिवशरण जी शर्मा, माननीय बैरिस्टर साहब एवम् प्रधानाचार्य श्री ओम शङ्कर



१८वाँ खेलकूद समारोह गुंबारों के उद्घाटन के

साथ प्रारम्भ ।



वार्षिक खेलकूद का उद्घाटन करते हुए
प्रेरणापुञ्ज-माननीय बैरिस्टर साहब ।

My Pilgrimage to Nagpur

• Chandra Pal Singh
Retd. Principal

Before I narrate my 'Pilgrim's Progress' I think it would be in the fitness of things to tell you why I was deemed fit to join the hallowed company of the pilgrims bound for the holy of the holies of the R. S. S. people.

After my retirement as principal of an intermediate college at Ballia, I offered my honorary services to Rashtriya Swyamsewak Sangh, Thus for all intents and purposes. I became a regular pracharak or whole-time worker in July 1970, when I was put in charge of the then-founded Pandit Din Dayal Upadhyaya Sanatan Dharma Vidyalaya at Kanpur. The foundation stone of the Vidyalaya had already been laid four months earlier by Param Pujaniya Madhav Rao Sadashiv Golwalkar, the second Sar Sanghchalak of the R. S. S. The Vidyalaya started as class six consisting of 24 boys, adding one class of two sections each year till it blossomed into a full-fledged high school in 1975. I was its Principal till July 1976, when during the ill-famed emergency I had to bid good bye to it to take up some other educational work of the Sangh. For a year or so I was sangh-chalak of my tahasil, viz. Firozabad. Then I worked as nirikshak or inspector of Vidya Mandirs of Bharatiya Shiksha Samiti U. P. situated in the Agra, Meerut and Garhwal divisions, upto 1980, when I had to take up the editorship of Vidya Bharati's journal, Vidya Bharati Pradipika. This charge of mine continued till 1984. Owing to cataract developing in my eyes and other infirmities, consequent of old age, I decided to go back to my home in Agra district. But the attachment to my old school and the love and kindness of its present Principal and President drew me to Kanpur, where I have been putting up on the premises of the school for the last four years. I don't know if, when I am on the wrong side of seventy seven, I am of any use to the school, which once I helped to grow.

From Vijaya Dashmi, 1988 to Varsh Pratipada i. e. April 7, 1989 the birth centenary of the founder of the R. S. S. is being celebrated. In this connection a conference of all the old and new pracharaks was held at Nagpur, the Head Quarters of the R. S. S., from 23rd to 25th October's 88. To this get-together I too was invited as an old pracharak.

From Kanpur to Nagpur the distance is pretty long, about 900 kilometres. We were 46 in all and had hired a bus, which was to start at 8 a. m. on the 21st of

October, to reach Jabalpur in the evening for night halt and reach Nagpur in the afternoon of 22nd instant. But as ill luck would have it, we could start only at about 2 p. m. with the result that night had overtaken us before we reached Banda. At a way-side village before we reached Banda and when there was still day-light we were welcomed by the local people and served with batashas and water, as refreshment. The road was so rugged and rocky that even a comparatively new deluxe bus like ours got one of its tyres punctured. The time lost in restarting and getting the tyre repaired could only be made good by continuing the journey at night, but as the onward journey beyond Banda lay through the dacoit-infested territory, dominated by the infamous Dadua, we were advised to halt here for the night. A relation of Dr. Jagannath Gupta, a member of our party, arranged for our night sojourn in a dharam shala and a bellyful tasty dinner.

Next day we woke up at 3 a. m. and finishing our morning ablutions in half an hour we started on our onward journey. Now our way lay through dense forests and over mountainous terrain. We had a thrilling experience as our bus negotiated the circuitous road up and down the Bindhyachal 'ghats' through the shal forests.

We reached Jabalpur at about 1 p. m. Here our hosts had been waiting for us since the the last night. We hurriedly refreshed ourselves, placed the lunch offered by the hosts in the bus and started at about 3 p. m. for Nagpur, where we reached at about 10 p. m. As we had our lunch late in the afternoon, most of us, without helping ourselves with the food made available to us at the camp, retired to bed. It was a vast camp divided into seven nagars, named after some of the distinguished R. S. S. pracharaks, who had passed away, such as, Dada Sahib Parmarth, Din Dayal Upadhyaya, Bhaiyaji Dani etc. The pracharaks from Uttar Pradesh, both eastern and western, were housed in Pandit Dindayal Nagar. Each Nagar was divided into several canvas halls on both sides of a conference hall, in which about one thousand pracharaks could meet. Our beds were made on the floor. Each nagar had its own kitchen, managed by the local swayam se waks. At a safe distance from each nagar there were improvised latrines and urinals. From all over India about five thousand pracharaks had come to participate in the activities and deliberations of the camp.

Next day on the 23rd of October '88 we were required to get up at 4.45 a. m. At 5.30 a. m. we had our tea, after which we were required to assemble on the parade ground in our uniform, ready to move out into the city for route-march in formation. We were divided into four contingents of about 1200 each, sent into the four quarters of the town of Nagpur. Each contingent marched in sixes with playing band in the middle. It was a grand sight as we marched in union to the tune of the band. On both sides of the road we traversed, stood towns folk, men women and children to welcome and greet us with such slogans as 'Bharat Mata ki Jai,' "Kon chale bhai kon chale, Bharat Ma Ke Lal Chale." At some places decorated gates and arches were erected, through which we passed and flowers were showered over us. Was not all this honour shown by the people

of Nagpur enough to make us feel flattered and leonised ? At least old people like me felt much younger than we actually were, as we marched along in military formation.

We came back to our camp at about 8 a. m. and after break-fast we assembled under a big shamiana for the formal inauguration of the camp. Shri H. V. Sheshadri, Sar Karyawah or General Secretary of R. S. S. explained to us the objectives of the Camp and its programme. He was followed by the inspiring oration of Swami Satyamitranand Giri of Vishwa Hindu Parishad who threw light on the dedicated life of Dr. Hedgewar, the founder of R. S. S., and the need of promoting Hindu solidarity and fostering Hindu culture, which was the bed-rock of Indian nation alism. At 11.30 we broke up for lunch. To our surprise we were not served our meals in the usual way as we had been in the Shiksha Vargas or O. T. C. Camps, sitting in rows, some of the campers serving others by turn and all chanting 'bhojan mantras' before beginning to eat. Here we stood in single files with our thalis and cups before tables on which different items of food were placed. Each one of us, as he approached the table partook of the chapatis, rice, dal and vegetable as much as he needed and went to his seat or bed in the tent to eat it. It was a sort of buffet, called Bajirao style of lunch, after the famous Marahtha general, whose equestrian followers used to have their meals on horseback.

After a rest of about two hours we again met in two groups at 2.30 p.m. Our group listened to a brilliant talk by Shri Sudarshanji, the all India Bauddhik Pramukh who enlightened us on the disintegrating forces at work in the narth-east, north-west and tribal areas of our country and the challenge which R. S. S. has to face.

At 4 p. m. we had our tea, which was followed by the open session to which local swayam sewaks had also been invited. It was a massive gathering of about ten thousand people. Prof. Rajendra Singh alias Rajju Bhaiya, Sah Sarkaryawah or Assistant General Secretary of the R. S. S, introduced the dignitaries sitting on the dais. Swami Sanmitranand, Shri Narendra Ranjan Mazumdar, the chairman of the Reception Committee, Shri Bala Sahib Deoras, the Sar Sangh chalak and Shri Sheshadriji, the Sar Karyawah. All of them spoke one by one on the progress and achievements of the R. S. S. over the 63 years since its birth in 1925.

On 24th October after going through our morning routine we assembled at 9 a. m. in the conference hall, where reports of the various ancillary activities of the R. S. S. in the various fields were given. Shri Madan Das revivwed the educational field, where four organisations-Akhil Bharatiya Vidyarthi Parishad, Bharatiya Shikshan Mandal, Vidya Bharati and Akhil Bharatiya Shaikshik Sangh are active. The first deals with students, the second with teachers, the third with schools run by swayamsewaks without Govt. help and the fourth with educational problems.

Shri Madandas was followed by shri Dattopant Thengdi who gave a lucid account of the achievements of the Bharatiya Mazdoor Sangh, which is the second

labour union after the one run by the Congress. It enjoys a larger membership than even the Communist unions. The Bharatiya ideals of B. M. S. viz labourization of Industries, and nationalisation of labour had, according to Thengdiji, impressed even China and Russia and he predicted that in the early dawn of the 21st century the Communist red flag would be replaced by our Bhagwa Dhvaj. He also spoke about the progress lately made by the Bharatiya Kisan Sangh and All India Panchayat which are comparatively new organisations.

After Thengdiji, stepped in Shri Lal Krishna Advani to report on Bhartiya Janata Party, which, he claimed was the only political party which had principled stand all through.

Then came Shri Bhaskar Rao to put before us the progress registered by the Vanavasi Kalyan Ashram since 1952, when it was founded at Jashpur in Madhya Pradesh By starting hospitals, schools and samskar kendras among tribals of Madhya Pradesh and North-eastern region the Ashram has been able to counter-act the proselytising and denationalising activities of the christian missionaries and promote their economic and cultural welfare so as to ensure their integration with the nation.

At the end Rajju Bhaiya told us about the substantial work done under the auspices of the Vishwa Hindu Parishad in making the Hindus, living in India as well as spread the world over, self-conscious and proud of their ancient heritage through such programmes as Ekatomata Yagna. Recently after the mass-conversion of Hindus at Meenakshipuram Hindu Munnani has come into being in the South. It has brought about a great awakening among the Hindus in the South, Then he gave an account of Din Dayal Shodh Samsthan which under the able guidance of Shri Nana Deshmukh has been doing commendable work in the field of rural re-construction. The Samsthan has adopted three districts-Gonda in U. P., Sinhbhoom in Bihar and Beed in Maharashtra, where with the help of dedicated workers experiments in rural development, social service and mass education are being carried on.

Rajju Bhaiya also threw light on a very useful work being done by Bharat Vikas Parishad, a Bharatiya alternative of such international organisations as Lion's and Rotary clubs, which motivate the affluent people to do social service.

In the after-noon after lunch some of the old pracharaks enlightened us with their recollections of their work done in U. P. I had the pleasure of meeting two of them after a lapse of more than 40 years. If they had not introduced themselves I could hardly recognise them in their latest features.

A sprawling exhibition called Sangh Sagar depicting the various activities and statistics of the R. S. S., state wise and category-wise, had been arranged. As we went round it, we found many of its items very educative and informative. We wondered how a small sapling of the R. S. S. planted about 63 years ago had assumed such big and vast dimensions.

On the Reshim Bagh Campus where our conference was held, just in front of the Hedgewar Bhawan, are situated two memorials. One is a life like bronze statue of Dr. Keshav Rao Baliram Hedgewar, the Founder of R. S. S. in sitting posture, on a high pedestal, under a beautiful canopy and the other is an electronic replica of a Havan Kunda with

flashes of light emanating from it, reminding us of the sanyasi's life of the second Sar Sangh Chalak of the R. S. S. Shri Madhav Rao Sadashiv Golwalkar. Who ever watches these memorials is filled with feelings of reverence and admiration for the two great men.

On the 25th, early in the morning we had the privilege of viewing a video film on the life of Dr. Hedgeawar. His whole life had been screened in a realistic manner, The picture was highly inspiring and informative. One could see how a child born in utter poverty but with a patriotic spark, smouldering in his heart since his very infancy, could blow it up into a burning flame, which consuming all his worldly aspirations of a happy married life and a successful medical career led him to dedicate his entire being to the service of his country. He tried all the existing ways to break the shackles of slavery which bound the motherland. Not only he experimented with the revolutionary methods of the bomb and the pistol, but also of constitutional agitation as advocated by Lokmanya Tilak and of non-violent non-cooperation as taught by Mahatma Gandhi. Seeing the failure of all these methods he invented a new technique of organising the Hindus and infusing in them love for their country and culture. In this way the Rashtriya Swayamsewak Sangh came into being. A seed sown on the Vijaya Dashami day has developed into a huge sprawling banyan tree, which is the present day R. S. S. with all its ancillary organisations like the Vishwa Hindu Parishad, Bharatiya Mazdoor Sangh, Bharatiya Janata Party, Vidya Bharati, Vidyarthi Parishad and Vanavasi Kalyan Ashram. Through these organisations the R. S. S. is trying to bring about a silent revolution in all the walks of the national life. The nation after independence was set on a wrong track by its mentors, who thought that India was a nation in making and she must imitate the west in order to be a strong and prosperous nation. They forgot that India was an ancient nation and that mere imitation could never make a nation great. A nation progresses with the help of its own genius or ethos. Our natural development can only be on the basis of Bharatiya or Hindu Culture.

In the after-noon of the 25th after lunch we had our valedictory session, where-in Mananiya Bala Sahib gave us his parting message. He urged us to convey the teachings of Dr. Hedgeawar to every nook and corner of the country and to engage ourselves selflessly in one or the other constructive work so that a wave or resurgence may sweep over the country.

In our return journey we visited the famous Bhedaghat on the Narmada near Jabalpur. Bhedaghat is famous for its multicoloured marble rocks, through which the river flows here. As we reached there early in the morning, when the sun was rising in all its glory, the river as it fell from a height in the midst of a cluster of rocks, presented a magnificent sight, on which we feasted our eyes for a long while. Along the bank there were a few shops which dealt in beautiful artistic articles made of marble such as paper weight, candle stands, rosaries, ear-rings etc. Some of us purchased them. Unwillingly we withdrew ourselves from this bewitching beauty-spot and resumed our journey back to Kanpur. On the way we had darshan of the famous Sharada Devi of Maihar. The temple of the goddess is situated on a hill-top the circuitous route to which could be negotiated by a jeep specially lent to us through local friends. We reached Chitrakut after sunset. So without stopping to pay homage to the holy shrines there we hastened to reach Kanpur by midnight. On the whole it was a very rewarding tour indeed.



Mr. Examination

Rahul Tiwari

Class XII (A)

Oh, my dear Examination,
I am terribly afraid of you.
Kindly tell me what to do
You are early, I am late;
I am daily losing weight.
Go, go and go you must,
Let me learn my lesson first.
Go to the office and leave my room,
Otherwise I will use my broom.
I am awfully tired of you.
I shall adopt a method new.



Raman and his Effect

Anand Shukla

Class XII (A)

It is a curious sociological phenomenon that those who have contributed to the advancement of science have usually been men born in the middle and lower-middle classes. Raman was born in a family of very modest means who for generations had been agriculturists in a village near Ayyampet in Tanjore district of the then Madras state.

It was Tiruchirapalli where Raman was born on the 7th November 1888. Raman's father Chandra Shekhar Iyyar had matriculated, which was a high attainment in the last century in India. He was a teacher at the local English High School in Tiruchirapalli. His mother Parvati Amal, came from a family of Sanskrit scholars. Family discussions on the high intellectual attainments of the sages of India of the bygone centuries could not have been without an effect on the intellectual development of young Raman. Replying to the toast at the dinner following the award of the Nobel Prize on 11th December 1930 in Stockholm, Raman spoke of the glories of ancient India and the great renunciation of Buddha. Raman showed early interest in Physics and there is a story that the father could quieten Raman when he fell ill only by the magical effect of the Leyden jar experiment which Raman fretted to see. In 1900, when Raman was only 12 years old, he matriculated and joined his father's college as a student for two years. After doing his Intermediate Arts at Vishakhaputtanam Raman entered the Presidency College at Madras to pass his B. A. in 1904 and M. A. in 1907, always standing first and carrying away the available prizes. Raman was the brightest student of his college, so all India competitive examination was a challenge that beckoned him. He appeared at the examination for recruitment to the superior service of the India Finance Department in 1907. He stood first and became a servant of His Majesty, the King Emperor of India in June 1907 at the age of 18 years and 7 months before he had legally come of age. He faithfully worked at the post of the Assistant Accountant General and Deputy Accountant General. But he never lost his interest in Physics. In fact he was ardently devoted to physics. Raman's first paper in physics on unsymmetrical diffraction bands due to a rectangular aperture, was published in the Philosophical Magazine of England, while he was still studying for his M. A. degree in Madras. It was quite unusual for an Indian student of about 17 years to get a paper published in this well-known journal, then perhaps the foremost in England. This was a clear proof of the self-confidence of Raman which he showed in abundance throughout his life.

In the year 1919 Raman was selected Honorary Secretary of the Indian Association for the Cultivation of Science. In Calcutta Raman lived behind the laboratory of the Association which he could enter from a back door at any time. Often Raman would work late into the night. Scattering of light was the subject of intensive study at the Association under the leadership of Raman from 1922 to 1927. In a December evening in 1927, Raman was sitting in his office with his brother, when his co-worker K. S. Krishnan rushed in to announce the award of the Nobel Prize in Physics to A. H. Compton for his work on scattering of X-rays. Himself a master of the subject of scattering of radiation Raman brightened up and burst out, "Excellent News ! very nice indeed ! But look here Krishnan, if this is true of X-rays, it must be true of light too. I have always thought so. There must have been optical analogue to the Compton Effect. We must pursue it and we are on the right lines. It must and shall be found. The Nobel Prize must be won."

And in fact he won the Nobel Prize for his strange discovery named after him "Raman Effect" in 1930.

It was the result of his hard work and self-confidence that he could be able to get the Nobel Prize. It is hard to believe that he had booked his sea-passage for Stockholm, two months before the announcement of the award of the Nobel Prize and that he told people about the arrangements made by him in advance.

Prof. R. W. Wood of the U. S. A, a kindred spectroscopist, sent the following excited statement to 'Nature' a well known journal of that time. Prof. "Raman's brilliant and surprising discovery that transparent substances when illuminated by very intense monochromatic light, scattered radiation of modified wave-length was verified. It verified his discovery in every particular field using improved apparatus. It appears to me that this very beautiful discovery, which resulted from Raman's long and patient study of light scattering, is one of the most convincing proofs of the quantum theory of light we have at present."

We may recall the message given by Einstein to a press correspondent at the time of the Silver Jubilee celebrations of the Raman effect in 1953. He said:

"..... C. V. Raman was the first to recognize and demonstrate that the energy of a photon can undergo a partial transformation within matter. I still recall vividly the deep impression this discovery made on all of us who at that time attended the Physics Colloquium in Berlin."

In the Presentation speech Prof. H. Pleijel Chairman of the Nobel committee for Physics of the Royal Swedish Academy of Sciences said at Stockholm on December 11, 1930:

"The Academy of sciences has resolved to award the Nobel prize in Physics for 1930 to Sir Venkata Raman for his work on the scattering of light and for the discovery of the effect named after him. Sir Venkata Raman, the Royal Academy of Sciences has awarded you the Nobel Prize in Physics for your eminent researches on the diffusion of gases and for your discovery of the effect that bears your name. The Raman effect has opened new routes to our knowledge of the structure of the matter and has already given most important results."

There is another reason why Raman's discovery stands out high above the work of many of his contemporary experimental physicists. His experimental equipment was of the simplest and a large part of it he made and assembled himself. He used to recall that it cost him only Rs. 200 to do his main work. It was a pocket spectroscope and a mercury lamp, Alladin's lamp as Raman called it, which sufficed to make the discovery.

Raman's discovery is therefore a rare achievement. We see him as a figure, shining, dark, dignified, tall and turbaned sprung purely from local soil. On the coast line of Indian science, he stood like a lighthouse, and scattered his light wider than any other Indian scientist. There is no doubt that Raman was "one of the truly seminal minds in the history of modern physics" as the Encyclopedia of world Biography acknowledges.

Raman was also the first scientist to be given the highest and exclusive national award of "Bharat-Ratna" on the Independence day August 15, 1954.

No other Indian scientist has been called "Bharat-Ratna."

This great scientist died of heart failure in the morning of 21st November 1970. Prof. R. Dhawan, ex-President of India, in his condolence message said, "Extremely shocked and grieved to hear of the passing away of my dear, good, old friend Raman. It is a personal loss to me. A towering personality, his indomitable spirit in the quest of knowledge inspired generations of Indian scientists."



Dowry—The Curse of our Society

Jyoti Kumar Gupta

(XI B)

The dowry system is a curse of our society. It is a cancer on the body of our social life. It has tarnished the image of our great country. It has become a naked commercial transaction. It has ruined many families. Sometimes girls or seen care-ridden, grief-stricken and disheartened parents, are led to commit suicide.

Dowry is a kind of cash or gift given to the daughter by her parents to help establish her own home. This custom was common in the medieval period. During the British period a terrible twist has been given to this custom. Kanyadan has become an economic punishment for the parents of a daughter. In modern times, even lakhs of rupees are given in dowry. So this custom has practically become a curse to the poor and middle classes.

Dowry has become a status symbol. So people willingly prefer it. They realise that sacrifice of dowry means sacrifice of a luxurious life. As a result, burning of brides in for dowry has been on the increase. Demand of dowry demanding has become a business which prices soar with the higher qualifications or position of the bridegroom.

Human greed knows no bounds. It is only because of man's greed that brides are burnt by sprinkling kerosine oil on their clothes and sometimes they are virtually compelled to commit suicide. Sometimes the parents of daughters take heavy loans to give a dowry and thus their whole remaining life is spent in paying off these debts.

The government has tried its best to rid the society of this evil, but has failed miserably. Everyone knows that the system is wrong, yet today dowry-demanding is going on. Bride-burning cases are increasing year by year. The evil remains unchecked.

Mere laws are not sufficient. We need a change in our out-look. We must create an atmosphere of understanding between young boys and girls. We must free society from inhibitions and false values. Women should be regarded as equal partners of men. We must develop a strong public opinion. We must step ahead to put an end to such a disgraceful custom. A better future can be expected, if only a firm determination to root out this evil persists.

Daughters become a commodity of sale, when dowry is demanded. It is a blot on the fair name of the country. Therefore, this system must be abolished root and branch and it is the need of the hour to do it, the earlier the better.

Work is Worship

• Gaya Prasad Verma

M. A. B. Ed.

In a broad sense, work means a physical or mental effort made for one's survival or improvement. Work is a responsibility or duty entrusted to a person. Hard work is called labour. If we want to achieve our goal, we must perform our duty sincerely. Nothing can be achieved without labour. Labour is key to success. A man expecting something without labour is like a passenger who wants to reach his destination without making a journey. In our Shastras too it has been said,

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः
नहि सुप्तस्य सिद्ध्यत्यस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥

Work is superior to thoughts. All men have laid emphasis on work. Swami Vivekananda, pleaded for the principle of action. He engaged his pupils in the service of society. He did not believe in meditation only. Lokmanya Bal Gangadhar Tilak and Mahatma Gandhi adhered to this principle. They appealed to the countrymen to work hard to solve all the problems facing the country. In our great classic, the Geeta, too the importance of action has been applauded in the following way :-

“नियतं कुरु कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ॥
शरीरयत्नापि च तेन प्रसिद्धयेद् कर्मणः ॥ ४ ॥” (Chapter III)

That is we have to perform our allotted duty, for action is superior to inaction and without action one can not even maintain one's body. Again the necessity of work has been emphasised in these lines :-

यज्ञाथार्त्तिकर्मणोऽयन्त लोकोऽयं कर्मबन्धनः
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्ग समाचर ॥ १ ॥ (Chapter III)

Lord Krishna says to Arjun that man is bound by the chains of action (Karma). The actions done for the good of others do not bind a man. So he should perform his duty for the sake of sacrifice.

Good actions bring peace and pleasure. They lead a person to a noble life. Progress of a country also depends on hard work. A country requires men of action. Behind

every success there is work. Hard work is needed in every walk of life. In student life it is much more important. The duty of a student is to study hard. If he ignores his work he cannot build his career. Hence studying is a kind of worship.

Some people neglect labour, thinking that fate is dominant and it is no use running after work. What is allotted cannot be blotted. Such thinking is based on pessimism. The optimistic outlook does not approve of this theory. Man is the maker of himself. He should not yield to fate so easily. He can improve his destiny by continuous efforts. If one sits idle and leaves every thing to his luck, his down fall is most probable but if hard work is the basis of his life his progress is bound to follow. The earth, the sun, the moon and the stars do their work regularly for the sake of others. Their rest or laziness would cause a great disaster in the world. The importance of labour is undoubtedly universally accepted fact. W. H. Longfellow in his 'Psalm of Life' has said,

'Let us then be up and doing
with a heart, for any fate
Still achieving still pursuing
learn to labour and to wait.

These inspiring lines describe the vitality of labour. The result of good actions is always good. Communion of fate and action has been very well depicted by a saint who says :

'When a man sleeps his fate sleeps,
When he sits his fate sits, when his
yate stands, his fate stands and
When he runs, his fate starts running.'

We should continue striving unmindful of our failures. Our failures also teach us lessons. All the achievements of the world, great classics, magnificent buildings, temples, scientific inventions are the result of hard and continuous labour. Our culture inspires us to dedicate ourselves to selfless work. Without work no dedication is possible. Then why should we avoid work? Let us welcome work taking it as a worship.

Real Education

Arjun Pandey

There is unrest all over the world. Entire humanity is suffering from indiscipline and disorder. There is degradation in human values. So transformation of whole humanity is needed. It is the the work of education. But our education in the present form cannot do it. It needs an education which corrects the tendencies of the mind. Modern education is not man-making, but only literary. In the words of Swami Vivekananda

“Education is the menifestation of perfection already in man.”

In the opinion of Swami ji the basis of true education is Raj yoga. He said “Raj yoga proclaims that it has discovered the laws of personality development. It is the secret of all education.”

This type of education is the need of the hour. But unfortunately we have lost the power of discrimination and literacy has taken the place of education. An educated person may be illiterate like saint Kabir and Ramkrishna Param Hansa. True education should develop both the heart and the mind. Mere literacy develop only mind resulting in attainment of great success in physical sciences. A bird cannot fly with a single wing. Both the wings are necessary to fly. Simiparly perfection of man is based on development of both heart and mind. Our present concept of education as mere collection of informations is wrong. Real education should establish a balance between the heart and the mind. The heart is the working field of the mind. When the link between the heart and the mind is disconnected, it creates dangerous atmosphere. Our internal faculties stop their proper working and we become deaf to the Divine voice.

Intuition is the foundation stone of Rishi Vidya. We recieve intuition from the heart when it is free from the grossness of impressions.

Discrimination develops through intuition. The nation has lost its discrimination. We have to regain it. For this purpose we have to practise Raj yoga. Raj yoga is based on meditation. Meditation is a simple process. To dwell upon a thought is meditation. In this practice we close our eyes to prevent externalisation of the mind. By this process we try to dive deep into the sub-conscious and unconscious mind. Thus our thought is converted in to energy by concentration. Concentration is the result of meditation. We should not try for it. A pious thought eg. presence of the divine light inside the heart purifies our

blood and our tendencies of mind are turned inward. In this way we receive inspiration and develop discrimination. Our ego is reduced and we become receptive to the Divine Grace.

We should introduce meditation as a part of education. Internal divine centres are awakened by this process. We should meditate under the guidance of some experienced person. We have to become introvert to awaken dormant spiritual energy. It is possible by meditation. Super the conscious state is a great gift of meditation.

Inspirations from a higher plane can be received in the super-conscious state of meditation. This is man-making education.

I hope our educational institutions will endeavour to translate these thoughts in to practice. Thus the above will serve the sacred cause of humanity.

The Aims of N. C. C.

Satyendra Tomar
IX 'A'

“One must be strong not to be aggressive but to resist aggression.”

—Lal Bahadur Shastri

Now-a-days a race of armaments is going on among the nations of the world. Peace is in danger. At such a critical juncture every nation must be militarily strong. A Free India has a heavy burden to shoulder. India is not on good terms with some neighbouring countries. so to defend our freedom we have to be alert and prepared. With this end in view, the N. C. C. Act was passed in 1948. The main object of this act is to impart military training to students reading in schools and colleges.

The aims of the N. C. C. are as follows.

- (a) To develop character, comradeship and capacity for leadership in youngmen.
- (b) To build up a reserve of potential officers to enable the armed forces to

expand rapidly in a national emergency.

N. C. C. has two divisions senior and junior. The boys who join the N. C. C. are called N. C. C. cadets. The cadets in senior and junior division are given training in drill, weapons, map reading of field craft and citizenship just like the army. The N. C. C. also has three wings—Infantry, and air, navy. Cadets joining air and navy wings are given specialised training. Those who want to join N. C. C. have to go for a medical examination. They must be physically fit. The cadets wear a special uniform and have regular parade. They are given refreshment after the parade.

N. C. C. has many advantages. It makes the youth of the country disciplined, dutiful and physically fit. So their organizational and administrative capacities develop. They become smart and clear.

The N. C. C. has become very popular. It is a need of the hour. I am a cadet of the N. C. C. in the school. This training has helped me much. I have become all the more smart and disciplined. Every student should join the N. C. C. By doing so he can be worthy not only for the country and the society but for himself also.

विद्यालय परिवार

- १- श्री ओमशङ्कर त्रिपाठी एम० ए० (हिन्दी) बी० एड्०, प्राचार्य
 २- श्री प्रयाग सिंह, एम० एस सी० (गणित) बी० एड्०, उपप्राचार्य
 ३- श्री जागेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव, अंशकालिक, प्रवर आचार्य
 ४- श्री प्रकाश नारायण बाजपेयी, एम० एससी० (जन्तु विज्ञान) बी० एड्०, प्रवर आचार्य
 ५- श्री ज्ञानेन्द्र शर्मा एम० एससी० (भौतिकी) बी० एड्०, प्रवर आचार्य
 ६- श्री राजेश कुमार शुक्ल एम० एससी० (रसायन-विज्ञान) बी० एड्०, प्रवर आचार्य
 ७- श्री रामतीर्थ मिश्र एम० ए० (हिन्दी) बी० एड्०, प्रवर आचार्य
 ८- श्री आनन्द प्रसाद वर्मा आई० जी० डी० (बाम्बे), कला आचार्य
 ९- श्री महेशचन्द्र श्रीवास्तव एम० एससी० (गणित) एम० ए० (समाजशास्त्र) बी० एड्०, आचार्य
 १०- श्री दीपक राजे बी० ए० (इतिहास) बी० एड्०, आचार्य
 ११- श्री सुभाषचन्द्र शर्मा एम० ए० (भूगोल) बी० एड्० आचार्य
 १२- श्री वीरेन्द्र सिंह पाण्डेय एम० ए० (समाजशास्त्र) बी० एड्०, आचार्य
 १३- श्री बिहारी लाल मिश्र एम० ए० (अंग्रेजी) बी० एड्०, आचार्य
 १४- श्री गणेश शंकर बाजपेयी एम० ए० (संस्कृत) बी० एड्०, शास्त्री आचार्य
 १५- श्री गया प्रसाद वर्मा एम० ए० (अंग्रेजी) बी० एड्०, आचार्य
 १६- श्री श्रीनारायण एम० एससी० (रसायन-विज्ञान) बी० एड्०, आचार्य
 १७- श्री रमाकान्त कटियार एम० एससी० (गणित), बी० एड्०, आचार्य
 १८- श्री सतीश चन्द्र गुप्त एम० ए० (प्राचीन इतिहास, राजनीतिशास्त्र) एम० एड्०, आचार्य
 १९- श्री लल्लूराम चन्देल एम० एससी० (गणित) बी० एड्०, आचार्य
 २०- श्री हरिनाम सिंह, एम० एस सी० (रसायन) बी० एड्०, आचार्य
 २१- श्री हेमन्त शुक्ल एम० एससी० (भौतिकी) आचार्य
 २२- श्री महेंद्र प्रताप दुबे, 'सुमन' एम० ए० (हिन्दी दर्शन शा०) बी० एड्०, आचार्य
 २३- श्री अर्जुन पाण्डेय, बी० एस सी०, एम० ए० (हिन्दी) बी० एड्०, शास्त्री (संस्कृत आयुर्वेद) आचार्य
 २४- श्री उमेश चन्द्र तिवारी एम० एस सी० (वनस्पति विज्ञान), आचार्य
 २५- श्री रमेश चन्द्र अवस्थी बी० काम०, एम० ए०, साहित्य रत्न, कार्यालय अधीक्षक
 २६- श्री ओंकार नाथ कार्यालय सहायक
 २७- श्री श्यामलाल कार्यालय कर्मचारी
 २८- श्री रामभजन प्रयोगशाला सहायक
 २९- श्री रामलाल प्रयोगशाला सहायक
 ३०- श्री वैजनाथ पाल प्रयोगशाला सहायक
 ३१- श्री रमेशचन्द्र स्वच्छकार
 ३२- श्री रमाकान्त शुक्ल एम० ए० (हिन्दी), भोजनालय-व्यवस्थापक

पं० दीन दयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय, नबाबगंज, कानपुर

इण्टर मीडिएट के परीक्षार्थी-१९८६

नं०	अनुक्रमांक	परीक्षार्थी	नं०	अनुक्रमांक	परीक्षार्थी
१-	२५८५७०	अखिलेश कुमार तिवारी	२७-	९६	दिवाकर दीक्षित
२-	७१	आलोक सिंह	२८-	९७	गौरव शुक्ल
३-	७२	आलोक अवस्थी	२९-	९८	गिरीश कुमार चतुर्वेदी
४-	७३	अमित कुमार गुप्त	३०-	९९	ज्ञान प्रकाश
५-	७४	अमित गुप्त	३१-	२५८६००	हर निशीथ साहाय
६-	७५	अमित गुप्त	३२-	६०१	हर प्रीत सिंह
७-	७६	अमित बाजपेई	३३-	२	हेमन्त गुप्त
८-	७७	अमित अवस्थी	३४-	३	जितेन्द्र कुमार गुप्त
९-	७८	अमिय कान्त तिवारी	३५-	४	मनीष गंगवार
१०-	७९	आनन्द शुक्ल	३६-	५	मनोज सिंह नेगी
११-	८०	अनूप मिश्र	३७-	६	मयंक वर्मा
१२-	२५८५८१	अनूप गुप्त	३८-	७	मयंक बाबू रस्तोगी
१३-	८२	अंशुल गुप्त	३९-	८	मिलिन्द त्रिपाठी
१४-	८३	अनुराग प्रताप	४०-	९	मुकेश कुमार चतुर्वेदी
१५-	८४	अपूर्व रंजन शर्मा	४१-	१०	मुनीष मेहरा
१६-	८५	अरुण कुमार चतुर्वेदी	४२-	११	नीरज शर्मा
१७-	८६	अरविन्द कुमार शुक्ल	४३-	१२	नीरज कुमार झा
१८-	८७	अरविन्द देव	४४-	१३	नितिन कृष्ण दुबे
१९-	८८	अतुल	४५-	१४	पंकज सिंह
२०-	८९	अविनाश श्रीवास्तव	४६-	१५	पंकज कुमार पाण्डेय
२१-	९०	भारत सुधीर रस्तोगी	४७-	१६	पंकज अग्निहोत्री
२२-	२५८५९१	भुवन सिंह राजपूत	४८-	१७	पवन वर्णोय
२३-	९२	दीपक सिंह	४९-	१८	पीयूष मालवीया
२४-	९३	देवर्षि शुक्ल	५०-	१९	प्रदीप वाजपेई
२५-	९४	धीरेन्द्र कुमार अवस्थी	५१-	२०	प्रशान्त वर्मा
२६-	९५	दिव्यांशु मिश्रा	५२-	२१	प्रशान्त सक्सेना

इण्टर मीडिएट के परीक्षार्थी-१९८६

नं०	अनुक्रमांक	परीक्षार्थी	नं०	अनुक्रमांक	परीक्षार्थी
५३-	२५६६२२	प्रतीक तिवारी	७४-	२५६६४३	सर्वेश कुमार अग्निहोत्री
५४-	२३	श्रवीण कुमार मेहता	७५-	४४	सतीश कुमार सिंह
५५-	२४	राहुल मिठास	७६-	४५	सौरभ भटनागर
५६-	२५	राहुल तिवारी	७७-	४६	शैलेन्द्र कुमार
५७-	२६	राज कुमार श्रीवास्तव	७८-	४७	शलभ कुमार गुप्त
५८-	२७	रजनीकान्त तिवारी	७९-	४८	शरद श्रीवास्तव
५९-	२८	राजीव कुमार	८०-	४९	शशांक पुरवार
६०-	२९	राजीव गुप्त	८१-	५०	शुभेन्द्र सिंह परिहार
६१-	३०	राजेश कुमार राठी	८२-	५१	सुनील निगम
६२-	३१	राजीव सक्सेना	८३-	५२	सुनील मोहन मिश्र
६३-	३२	राजीव कुमार मिश्र	८४-	५३	सूरज खन्ना
६४-	३३	रामेन्द्र कुमार	८५-	५४	विभव कुमार पाण्डेय
६५-	३४	रीतेश कुमार चतुर्वेदी	८६-	५५	विकास गुप्त
६६-	३५	राजीव सारस्वत	८७-	५६	विकास गुप्ता
६७-	३६	रोहित सिंह	८८-	५७	विकास आनन्द
६८-	३७	रोहित दुबे	८९-	५८	विनय कुमार
६९-	३८	संदीप सिंह कश्यप	९०-	५९	विनीत सिंह सेंगर
७०-	३९	सन्दीप अग्रवाल	९१-	६०	विनोद सिंह चौहान
७१-	४०	संजय कुमार श्रीवास्तव	९२-	६१	विपिन चन्द्र शुक्ल
७२-	४१	संजय कुमार चौरसिया	९३-	६२	विवेक ओमर
७३-	४२	संजीव कुमार	९४-	६३	विवेक गुप्त

पं० दीन दयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय, नबाबगंज, कानपुर

हाई स्कूल परीक्षार्थी-१९८९

(प्रथम बैच)

क्रम सं०	अनुक्रमांक	छात्र का नाम	क्रम सं०	अनुक्रमांक	छात्र का नाम
१-	०५३२६३८	अभिषेक श्रीवास्तव	२४-	८६१	दीपक अग्रवाल
२-	८३९	अजय कुमार शुक्ल	२५-	८६२	दीपक दुबे
३-	८४०	आलोक सिंह	३६-	८६३	दीपक अग्रवाल
४-	८४१	अमित गुप्त	२७-	८६४	दीपक मिश्र
५-	८४२	अमित जैन	२८-	८६५	देवेन्द्र कुमार अग्निहोत्री
६-	८४३	आनन्द कुमार शर्मा	२९-	८६६	दिनेश प्रताप सिंह
७-	८४४	आनन्द कुमार शुक्ल	३०-	८६७	गौरी शंकर गुप्त
८-	८४५	संदीप बोडस	३१-	८६८	गोपाल मिश्र
९-	८४६	अनिल वर्मा	३२-	८६९	हर्ष श्रीवास्तव
१०-	८४७	अंशु बड़ौती	३३-	८७०	हेमन्त मिश्र
११-	८४८	अंशुमान शुक्ल	३४-	८७१	जगन्नाथ त्रिवेदी
१२-	८४९	अनूप कुमार	३५-	८७२	जगदीश कुमार त्रिपाठी
१३-	८५०	अनुराग गुप्त	३६-	८७३	जितेन्द्र कुमार त्रिपाठी
१४-	८५१	अनुराग पाण्डेय	३७-	८७४	कमलेश अग्निहोत्री
१५-	८५२	अनुराग सक्सेना	३८-	८७५	कुँवर हिताश्व
१६-	८५३	आशीष कुमार	३९-	८७६	लोकेश चन्द्र पाठक
१७-	८५४	आशीष कुमार तिवारी	४०-	८७७	महेन्द्र पाल सिंह
१८-	८५५	आशीष निगम	४१-	८७८	मनीष शर्मा
१९-	८५६	आशीष श्रीवास्तव	४२-	८७९	मणि कुमार शुक्ल
२०-	८५७	आशु दुबे	४३-	८८०	मनीष बाजपेई
२१-	८५८	आशुतोष सच्चान	४४-	८८१	मनीष कुमार गुप्त
२२-	८५९	अद्वल सिंह	४५-	८८२	मनीष कुमार सिंह
२३-	८६०	भूपेश राय			

पं० दीन दयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय, नबाहगंज, कानपुर

हाई स्कूल परीक्षार्थी-१९८९

(द्वितीय बैच)

क्रम सं०	अनुक्रमांक	छात्र का नाम	क्रम सं०	अनुक्रमांक	छात्र का नाम
१-	०५३२८८३	मनीष निगम	२३-	९०५	राम नरेश राठौर
२-	८८४	मनीष यादव	२४-	९०६	रत्नाकर त्रिपाठी
३-	८८५	मनोज कुमार	२५-	९०७	रवि खन्ना
४-	८८६	मोहित जोशी	२६-	९०८	ऋषेन्द्र मौर्य
५-	८८७	नीरज भारती	२७-	९०९	सलिल श्रीवास्तव
६-	८८८	निहार रंजन पाण्डेय	२८-	९१०	संजय कुमार श्रीवास्तव
७-	८८९	निमल पाण्डेय	२९-	९११	संजीव कुमार श्रीवास्तव
८-	८९०	निवेद शुक्ल	३०-	९१२	सतीश कुमार
९-	८९१	पंकज वर्दी	३१-	९१३	सतीश चन्द्र
१०-	८९२	पंकज कुमार पाण्डेय	३२-	९१४	सौरभ जैन
११-	८९३	पारितोष श्रीवास्तव	३३-	९१५	शैलेश दीक्षित
१२-	८९४	प्रदीप कुमार	३४-	९१६	शरद कुमार सिन्हा
१३-	८९५	प्रदीप सिंह राठौर	३५-	९१७	शिशिर कान्त
१४-	८९६	प्रकाश अवस्थी	३६-	९१८	शिव सिंह
१५-	८९७	प्रशान्त शुक्ल	३७-	९१९	सुधेन्दु बाजपेई
१६-	८९८	पुष्कर कुमार	३८-	९२०	सुधीर कुमार पोरवाल
१७-	८९९	राजेन्द्र कुमार सिंह	३९-	९२१	सुजय सिंह
१८-	०५३२९००	राजर्षि शुक्ल	४०-	९२२	तरुण कुमार अग्रवाल
१९-	९०१	राजेश कुमार वर्मा	४१-	९२३	वीर सिंह कुशवाहा
२०-	९०२	राजीव कुमार राना	४२-	९२४	विकास मिश्र
२१-	९०३	रजनीश कुमार द्विवेदी	४३-	९२५	वित्तय प्रताप सिंह
२२-	९०४	राकेश कुमार मिश्र	४४-	९२६	विनोद कुमार तिवारी

॥ विद्यालय पबंध-समिति ॥

अध्यक्ष : श्री नरेन्द्रजीत सिंह, बैरिस्टर, कानपुर
उपाध्यक्ष: श्री शिवशरण शर्मा, अवकाश प्राप्त प्राध्यापक, कानपुर

॥ विद्यालय पबंध-समिति ॥

मंत्री : श्री वीरेन्द्रजीत सिंह, चार्टर्ड एंकाउन्टेन्ट, कानपुर
सहसंयोजक : श्री नरेन्द्रजीत सिंह, बैरिस्टर, कानपुर
डा० जगमोहन गर्ग, उद्योगपति, गाजियाबाद
मदसुपाध्यक्ष: श्री शिवशरण शर्मा, अवकाश प्राप्त प्राध्यापक, कानपुर
श्री भाऊराव देवरस, सामाजिक कार्यकर्ता, नागपुर
वी. एस. एस. डी. महाविद्यालय, कानपुर

मंत्री : श्री वीरेन्द्रजीत सिंह चार्टर्ड एंकाउन्टेन्ट, कानपुर

सहमंत्री : डा० जगमोहन गर्ग, उद्योगपति गाजियाबाद

सदस्य : श्री भाऊराव देवरस, सामाजिक कार्यकर्ता, नागपुर

प्रो० राजेन्द्र सिंह, सामाजिक कार्यकर्ता दिल्ली

डा० भूषणलाल धूपड़, (प्राध्यापक)

(आई. आई. टी.) कानपुर

श्री राम बालक मिश्र, एडवोकेट, कानपुर

श्री इन्द्रजीत जैन एडवोकेट, कानपुर

श्री प्रेमचन्द्र गुप्त, व्यवसायी, कानपुर

श्री गौरीशंकर भार्गव, एडवोकेट, कानपुर

श्री हरिशंकर शर्मा, अवकाश प्राप्त

अतिरिक्त शिक्षा निदेशक, उ० प्र० कानपुर

श्री ओम शङ्कर त्रिपाठी, प्रधानाचार्य कानपुर

दो शिक्षक प्रतिनिधि

